नागरीप्रच

...गरीप्रचारिणी पत्रिका ।

निज भाषा उन्नति अहै, स...
...रहु विलम्ब न भ्रात अब, उ...
विविध कला शिक्षा अमित...
प्रचलित करहु जहान में, ...

जूलाई और अगस्त १९१३ | संख्या १—२
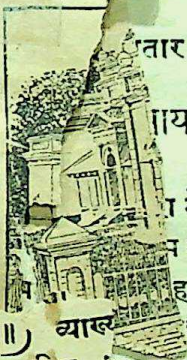
...ावली ।

(...तार पाण्डेय एम० ए०)

...ाय ।

...ा में अपनी त्रिकाल-
...न रहा था और अनेक
...हा था । पुरानी
...श कर जो नई
...क एक करके सब का
...बता चला । इन जातियें
...ा जाय तो दस पाँच
...र भाई शेषजी यदि
...से ऊपर आ जाते
...ा वर्णन कर सकते ।
...ने जो आंगल भूमि
...के अनुयायियें ने

जो सिन्ध के किनारे से सुफेन देश तक अपना राज्य जमाया, उधर महाकरल के राज्य के टुकड़े हो जाने पर शर्मण्य, फरासीसी आदि जो स्वतन्त्र हुए, ईशा की क़बर के लिए जो ईसाई व मुसलमान स्वस्तिक युद्धों के लिए करोड़ों कट गए या वीर लोग जो घोड़ों पर चढ़कर चक्रातुर आदि बड़े बड़े असुरों को मारते गये, शर्मण्यों में सभ्यता के केन्द्रस्वरूप जो महानगर उत्पन्न हुए, क्रमवल ने जो राजा करल की हत्या की, चौदहवें प्रवेश के समय में फरांसीसियों के जो रुपये फूँके गये, कुलम्ब आदि ने जो अमेरिका का पता पाया था, वहाँ जाकर बसे हुए अँगरेज़ आदि ने जो पूर्वी बन्धन तोड़ कर नया प्रजाराज्य स्थापित किया, इधर वस्क महाशय ने भारत का रास्ता खोल कर जो इस पवित्र देश में यूरोप का रोज़गार और शासन जमने का अवसर दिया, जगदेकवीर नयपाल्य ने जो बीस वर्ष तक समूचे यूरोप को कँपाते हुए अपूर्व प्रचण्डता दिखाई, इन बातों का वर्णन मुझ से कैसे हो सकता है। हाल में इधर-देखता हूँ तो और भी अपूर्व घटनाएँ

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग १८, } जूलाई और अगस्त १९१३ { संख्या १—२

मुद्राराक्षस-चरितावली ।

(ले० साहित्याचार्य्य पं० रामावतार पाण्डेय एम० ए०)

१७ वाँ अध्याय ।

मैं इसी प्रकार आकाश में अपनी त्रिकाल-यात्रा के लिये घूम रहा था और अनेक तमाशे देख रहा था । पुरानी सभ्यता का नाश कर जो नई जातियाँ निकलीं उनमें एक एक करके सब का तमाशा मैं कायव्यूह से देखता चला । इन जातियों की उन्नति का वर्णन यदि किया जाय तो दस पाँच महाभारत बन जाँय । भाष्यकार भाई शेषजी यदि फेर किसी के तप से पाताल से ऊपर आ जाते तभी इन जातियों के इतिहास का वर्णन कर सकते । नरमण्डी से जाकर वलियम ने जो आंग्ल भूमि का विजय किया, इधर महामद के अनुयायियों ने जो सिन्धु के किनारे से सुफेन देश तक अपना राज्य जमाया, उधर महाकरल के राज्य के टुकड़े हो जाने पर शर्मण्य, फरासीसी आदि जो स्वतन्त्र हुए, ईशा की क़बर के लिए जो ईसाई व मुसलमान स्वस्तिक युद्धों के लिए करोड़ों कट गए या वीर लोग जो घोड़ों पर चढ़कर चक्रासुर आदि बड़े बड़े असुरों को मारते गये, शर्मण्यों में सभ्यता के केन्द्रस्वरूप जो महानगर उत्पन्न हुए, क्रमवल ने जो राजा करल की हत्या की, चौदहवें प्रवेश के समय में फरासीसियों के जो रुपये फूँके गये, कुलुम्ब आदि ने जो अमेरिका का पता पाया था, वहाँ जाकर बसे हुए अँगरेज़ आदि ने जो पूर्वी बन्धन तोड़ कर नया प्रजाराज्य स्थापित किया, इधर वस्क महाशय ने भारत का रास्ता खोल कर जो इस पवित्र देश में यूरोप का रोज़गार और शासन जमने का अवसर दिया, जगदेकवीर नयपाल्य ने जो बीस वर्ष तक समूचे यूरोप को कँपाते हुए अपूर्व प्रचण्डता दिखाई, इन बातों का वर्णन मुझ से कैसे हो सकता है । हाल में इधर देखता हूँ तो और भी अपूर्व घटनाएँ

देख पड़ती हैं। जापानवालों ने प्राचीन रूस को धक्का देकर भगा दिया है, चीनवालों ने टीक कट-वाकर प्रजा-राज्य स्थापित कर लिया है, मुसलमानों का बुरा हाल है, मिसर ख़तम हो चुका, पारस के उत्तरीय व दक्खिनी टुकड़े दोनों दो ओर लुढ़क रहे हैं। कंसतन्तु पुरी में सुप्रिया के पुराने गिर्जा पर जो कई सौ वर्ष हुए तुर्कों ने अधिकार जमाया था सो डगमगा रहा है। भूत, भविष्य, वर्त्तमान ऐसी गड़बड़ों को देखकर मैंने अपनी त्रिकाल-यात्री आत्मा को तो हेमकूट वाली आत्मा में मिला दिया। हेमकूट वाली आत्मा चिरकाल तक समाधि में पड़ी रही, अपनी बाल्यावस्था के इष्ट बन्ध्यापुत्र जी के विरह में मैं तप रहा था, भविष्य महात्मा विलाकटानन्द सरस्वती आदि सज्जनों के ध्यान से अपने को कृतार्थ करता जा रहा था। कई हज़ार वर्ष तक खपुष्प के काँटों पर सोये सोये असम्प्रज्ञात समाधिनिद्रा में रहते हुए, बिना खाये पीये, बिना शौच आदि गये मुझे जीवन बिताना पड़ा। अन्ततः त्रेतायुग में जो हत्यारे रावण के कारण राम के सीता-वियोग के सदृश मुझे मूँछों का वियोग हुआ था उस वियोग के ताप से मेरे माथे से धूँआ निकलने लगा। इसे देखकर हेमकूट विश्वविद्यालय के चान्सेलर कुलपति कश्यपजी के पास जाकर उनकी धर्मपत्नी दाक्षायणी ने विश्वविद्यालय के लड़कों की ओर से अर्ज़ी पेश की कि वरुणलोकवासी त्रैलोक्य दिवाकर प्रचण्ड प्रकृतिक हिज़ होलीनेस श्री स्वामी मुद्दरानन्द जी आश्रम से न हटा दिये जायँगे तो सारी जंगली झाड़ी जल जायगी और राजनीति में दख़ल देनेवाले व्याख्याताओं के व्याख्यान से जितना हरज होता है उससे बढ़कर विश्वविद्यालय में हरज हो जायगा। इस अर्ज़ी पर बहुत कुछ विचार करने के बाद श्रीमान् कुलपतिजी ने अपने भयानक समाधि-बल से मुझे ज्यों का त्यों उठाकर हेमकूट से त्रिवेणी तट पर फेंक दिया। यहाँ भी मेरी समाधि लगी रही। दैवात् एक दिन आज से प्रायः बारह तेरह वर्ष पहिले, कुम्भ के मेले के समय बन्ध्यापुत्र के वाहन प्रसिद्ध पाँखवाले श्यामश्रुति दरियाई घोड़े की हिन-हिनाहट सी आकाश में सुन पड़ी जिससे मेरी समाधि निद्रा खुली, तो मैं देखता क्या हूँ कि आकाश में घोड़ा आदि कुछ भी नहीं है केवल मुरादाबाद, बरेली, हरिद्वार आदि से आये हुए सनातनी आर्य-समाजी आदि धार्मिक व्याख्याता लोग व्याख्यान दे रहे हैं। समाधि के बाद ऐसे व्याख्यानों में क्या जी लगे। मुझे तो मेले में नागा लोगों के ब्रह्ममय शरीरों के अतिरिक्त और कुछ देखने के लायक़ वस्तु नहीं मालूम पड़ती थी। इनके दर्शन से मायावाद का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। इन लोगों ने वस्त्र तक को माया समझ लिया था। मुझे भी इनके दर्शन से अपना शरीर और जगत् कुछ नहीं सूझता था। कभी केवल निराकार सन्तान सूझने लगता था और कभी हज़ारों अंगुष्ठ मात्र बालखिल्य पुरुष इधर उधर दीख पड़ते थे। थोड़ी देर में मैं ऐसा हो गया कि मैं तो सब को सूझता था पर मुझे "तुसी ब्रह्म असी ब्रह्म" ब्रह्म ही ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझने लगा। प्रिय पाठक! समाधि टूटने के बाद की यह अवस्था है फिर समाधि का आनन्द कैसा हुआ होगा सो क्या कहा जा सकता है। ऋषियों ने कहा हैः—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो,
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न तद्गिरा वर्णयितुं हि शक्यते,
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

—:०:—

१८ वाँ अध्याय ।

मेरी समाधि-निद्रा के भङ्ग का राघव कृत पिनाक-भङ्ग-वृत्तान्त सा अद्भुत वृत्तान्त ब्रह्माण्ड में फैल गया । क्यों न फैले, मेरा आसन टूटते ही पृथ्वी काँप उठी, शेष के सिर दब गये ।

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनिकर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं ।
कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

इत्यादि तुलसीदासजी की कविता का असल अनुभव लोगों को हो चला । मेरे ब्रह्ममय उपदेशों के सुनने के लिये बहुत से लोग हिन्दू, मुसलमान कृस्तान, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बाल, वृद्ध, युवा सभी आ जुटे । कितनेही सखाभाव में थे, कितनेही सखी-भाव में थे, कितने मद्य के प्रभाव में थे, कितनेही होश हवास में थे । मेरा अद्भुत श्याम वर्ण, विना जूते के चरणारविन्द, मोटिया की दुलाई, और चमकता हुआ खासा ताजा सींक का अंगरेज़ी टोप इत्यादि आभरणों से युक्त मनमोहिनी मूर्त्ति देखकर सभी मुग्ध हो जाते थे । थाल के थाल दिव्य हलुआ, पूरी, पावरोटी, लड्डुआ, कचैाड़ी, ॐकार के साथ इश्तहार देनेवाले मेहतर व ब्राह्मण को एक समझने-वाले लोगों की बनाई हुई पवित्र शराब, पवित्र साबुन, घास पार्टीवाले के साग पात और मांस पार्टीवाले के कबाब कोफ्ता आदि देशी विदेशी विलायती रङ्ग बिरङ्गे कपड़े भूषण आदि सभी चीज़ें मेरे सामने रखी गईं । सब लोग अपनी अपनी भेंट के स्वीकार के लिये जैराज, श्रीजी, भगवान् आदि शब्दों से मेरी दुहाई देने लगे, और सभी मेरे पवित्र शरीर के एक बार छूने के लिये हल्ला करने लगे । एक बनारसी रईस चिल्लाते थे कि 'भयवा हम महाराज का चरणारविन्द अभी छुयबे औ भोग लगयबे । नाहीं त हमरी नोकरी चाकरी जैहे त जैहे । हमें बेगैर यह चरण के चैन नाहीं है' । इतना कहकर रईस फूट फूट कर रोने लगे और जैसे रथयात्रा के दिन गैारीशंकर के कूँए के पास रथ के सामने बूढ़े पण्डितजी लोटते थे वैसीही ज़मीन पर लोटने लगे । एक सारन का अहीर नंगे बदन खड़ा था सो बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा 'हटीं सभनी जी तनी हमरो के महराजजी के खुरनारविन्दवा टोये दीं' । इतना कहकर अपनी लाठी घुसेड़ता वह आगे बढ़ा । सब लोग हँसने लगे । रईस जी फूट फूट कर रोते थे वह भी हँसने लगे । इतने में एक मिर्ज़ापूरी गुण्डा आबेरवाँ का दुपट्टा ओढ़े हुए सुनहरी मुट्ठी का चिकना मोटा डंडा चमचमाते हुए बोल उठा—'अरे ई का गुल गड़प्पा करत हैाअ हो, हमरो के गुरु का दर्शन होए दः' एक दुबला बङ्गाली विद्यार्थी चिल्ला रहा था, "कैनो, अत गण्डगोल कैनो । आमा के परमहंसेर दर्शन हवेना' । टोप लगाये एक काला यूरेशियन चिल्लाता फिरता था 'ह्वाय मी गुड सी हिज होलिनेस पट एनी कास्ट । ही इज वन आफ अस ।' इस पर शाहेब शाहेब करते बहुत से स्त्री पुरुष हट गये । एक मारवाड़िन सेठानी रङ्गीन लहंगा पहिने गोद में बच्चा हाथ में मोहनभोग का थाल लिये चिल्ला रही थी । उधर एक मरहट्टे जंटिलमेन अपनी स्त्री को साथ लिये खड़े थे और कुछ कह रहे थे । एक बीभत्स मोटी मेम एक काले लड़के के साथ खड़ी थी, और लड़के से कुछ अवतार की बातें कर रही थी । इतना हल्ला गुल्ला हो रहा था कि मुझसे वरुणलोक के आदमी का इतने हल्ले में इस अपरिचितप्राय पृथ्वी की भाषाओं काल क्या करना मुश्किल था । इस प्रकार हल्ला हो रहा था तब तक मेरे संक्षिप्त उदर में एक अपूर्व विकार

उत्पन्न हुआ और मैंने समीप बैठी हुई एक आज़मगढ़ की भक्तिन के थाल में से कई ठोकुये निकाल कर खा लिये। खाते खाते ब्रह्माद्वैत 'अन्न ब्रह्मेति व्याजानात्' की धारा में श्री दुःखभंजन आदि आधुनिक और भैरवाचार्य आदि प्राचीन कवियों का गुणकीर्त्तन करते हुए अकालजलद के नाती वाल्मीकि, मेण्ठ व भवभूति के अवतार महामहर्षि राजशेखर के देखे हुए—

'रण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्म-दारा,
मज्जं मंसं पिज्जये खज्जये च।
भेक्खा भोज्यं चम्प खण्डं च सेज्जा,
कोल्लो धम्मो कस्सणो होई रम्मो॥'

इस महाब्राह्मणीय सूत्र को पढ़ते हुए जल के बदले एक पूरी बोतल किसी दूसरी ओर बैठे हुए एक विलायत यात्रा के परम विरोधी कल्यपाल जाति के भगतजन के हाथ से छीन कर मैंने गड़गड़ अपनी पवित्र गलरन्ध्र में खाली कर दी। इस प्रकार अकस्मात् भगत-भगतिनों पर कृपा करने के कारण लोग अत्यन्त हर्षित हुए और जय जय ध्वनि से आकाश गूंज उठा। इतने में सन्ध्या हुई। मेरी आँखों पर इधर वारुणी राग चढ़ा उधर भगवान् सूर्य्य भी वारुणी राग से लाल हुए। घनान्धकार आकाश में व मोहान्धकार जनचित्तों में छा गया। नदी तट पर चकवा चकई का विरह आ पड़ा। इधर लोगों के ख्याल में भक्ति और ज्ञान का विरह आ उमड़ा। रात्रि की वृद्धि के साथही साथ बन्ध्या-पुत्र चरितावली की वृद्धि जगत् में होने लगी।

—:०:—

१९ वाँ अध्याय।

हमको अधिक भोजन के कारण कुछ असुविधा सी मालूम पड़ने लगी। एक भगत की ओढ़ाई हुई दुलाई नीचे रखकर हम खड़े हो गये। ब्रह्मनिशा के साथ वारुणी-निशा की मिलावट होने के कारण मुझे यह नहीं ख्याल था कि चिरकालिक समाधि में अपनी होश ठिकाने न थी। अब तो दुलाई व अन्धकार दो ही लज्जा देवी के शरण थे। मैंने एक अकाण्ड ताण्डव आरम्भ किया। बस क्या था, सभी भगत भगतिन नाचने लगे। तब तक कोलाहल हुआ कि प्रसिद्ध पतिव्रता गोबरिकादेवी भगवान् के दर्शन को आ रही हैं। सब लोग अन्धेरे ही में उठ खड़े हुए। धक्कम धुक्की करती हुई गोबरिकादेवी पहुंचीं। मेरे श्री चरणों के समीप आकर उन्होंने थाल आदि रक्खे। पूजा, अर्चा, आत्मनिवेदन, तन, मन, धन समर्पण आदि के बाद उन्होंने मेरी आरती उतारनी चाही, पर दियासलाई न थी। सती लोग चाहैं तो शरीर से आग निकाल सकती हैं पर तपोव्यय के भय से पतिव्रता ने ऐसा न कर आस पास के लोगों से दियासलाई मांगी जिस पर १५, २० लाख रुपये खर्च से बने हुए जातीय स्कूल के एक छोटे दुग्धमुख बालक ने पाकट से दियासलाई निकाल फर से अपनी चुरुट भी बाल ली और पतिव्रता को भी बलती ही दियासलाई दे दी। दियासलाई के प्रकाश से जरासी मेरी अद्भुत झलक लोगों को आई थी, पर पतिव्रता के आरती उतारने के समय तो स्पष्ट ही ऐसा अद्भुत दर्शन हुआ कि कितने ही नये मतवाले इस दृश्य पर कुछ चकचकाये से थे। पतिव्रता लोग मुंह नीचा करने लगीं तब तक विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्म्मा जी ने बड़े उच्चस्वर से शीत्कार किया और बोले "हे प्रियवर व प्रियवरा! क्या कुम्भ के नागा लोगों का धार्मिक दृश्य आप लोग भूल गये? क्या गया, काशीक्षेत्र, हरिद्वार आदि के बड़े बड़े आनन्दान्त स्वामियों का आपको स्मरण नहीं है। आर्य्य सन्तानों की आज भी वही तप में श्रद्धा है, कांटों पर सोने वाले नङ्गे शरीर से शीत आतप आदि में रहने वाले तपस्वियों को देखकर क्या हँसना या क्या मुंह नीचा करना। धिक्कार है आप लोगों को। शोक महाशोक यदि आप लोग ऐसा करें।

सब कोई बोलो 'श्री महाराज की जय।' सब स्त्री पुरुष मुँह ऊपर कर रोमाञ्चित हो गद्गद स्वर से बोले 'श्री बाबा जी की जय'। छोटे बच्चे चिल्ला उठे 'सिलि बाबा की जय।, आरती हुई बाबा का प्रदक्षिण हुआ कितने दर्शकों के पास सस्ते देशी हार्मोनियम, झाल, खंजरी आदि बाजे थे सो बजने लगे। आरती में लोग कपूर आदि देते जाते थे। समीपही हलवाई मण्डी का बाजार था। वहां से दौड़ दौड़ कर लोग कपूर आदि लाते और फेंकते थे कि जिसमें कहीं आरती बुत जाने से फिर श्री जी अदृश्य न हो जायँ। कपूर आदि के लिये श्री खखन देव शर्माजी ने कहा कि एक चन्दा होना चाहिये जिससे आज रात भर जागरण हो। सबने चन्दा दिया पर मगह के आसपास के एक रायबहादुर या राजा बहादुर थे उन्होंने कहा "मैं तो एक धेला चन्दा नहीं दूंगा। मैं .खूब जानता हूं कि स्वामी जी या पतिव्रता जी चाहेंगी तो आरती की आग कभी नहीं बुतेगी। अरे नास्तिको! क्या तुमने नहीं सुना है कि पतिव्रताएं अपने शरीर से आग निकालकर चिता पर पति के साथ अब भी भारत में भस्म होती हैं। और भी नहीं सुना है कि ऋषि लोग अपने मुँह से आग निकाल कर अपनी खिचड़ी अलग पकाते थे। और यह भी ख्याल रक्खो कि आरती बलती ही रहे और स्वामीजी चाहें तो क्या प्राणायाम से चट अदृश्य नहीं हो जायँगे।" इसपर पञ्जाब के एक रहस्यवादी ने कहा, 'अजी! गुरु साहब इस समय अदृश्य भी हो जांय तो भगतजन पर कृपाकर साक्षात् निरङ्कार उनका रूप धारण कर जब तक हम लोग यहाँ हैं तब तक नाचते रहेंगे। फिर स्वामीजी आ जायँगे तो वह चले जायँगे'। इस बात पर सभी भाववाले लोग बहुत प्रसन्न हुए और अपने इष्टदेव के रूप में रामजी के आने का वृत्तान्त कहने लगे। इन बातों पर खखन-देव शर्मा जी ने कहा कि "मैं तो हेतुवादी हूं, मैं .खुदा और वेद के सिवाय और कुछ नहीं समझता यह सब पौराणिकों की बातें मैं नहीं मानता। यह क्या हवाई किला बाँध रहे हो। एक लात दूँगा किला टूट जायगा! अजी राय साहब पाकिट में पैसा हो तो चन्दा दो नहीं तो यहाँ से घर जाओ। हम लोग घी और कपूर का वैदिक होम करें और तुम दर्शन का मज़ा लूटो।" ऐसा कह कर उसने राय साहब को जो गरदनिया दी कि वह एक खां साहब की नाली में जा पड़े और वहाँ से किसी प्रकार भक्ति बल से उठकर कमर पकड़े हुए श्रीराधे श्री वल्लभ कहते हुए फिर आकर उन्होंने दो पैसा चन्दा कहर कर दिया; और अपने दीवान से बोले कि दो पैसे धर्मखाते में लिख देना। मैं तो इन तमाशों को देखता हुआ उमङ्ग में नाचता जाता था और अङ्गरेज़ी फारसी हिन्दी संस्कृत आदि में गीत गाता जाता था, एकाध नमूने ख्याल हैं जिन्हें आपको सुनाता हूं—

जन्मप्रभृत्यशुद्धानां निष्फलोदयकर्मणाम्।
अणुमात्र क्षितीशानां पादुकाभिः खचारिणाम्॥
शैशवे विषयेच्छूनां यौवने क्लीवतायुषाम्।
वार्द्धके परिणेतृणां शौचागारे तनुत्यजाम्॥
खलानामन्वयं वक्ष्ये महावाग्विभवोपिसन्।
तद्दोषः कर्णमागत्य गौरवाय प्रणोदितः॥
कश्चिद्वन्ध्यासुतविरहितः स्वाधिकारप्रमत्तः।
कोपेनास्तंगमितमहिमा कल्पभोग्येन भर्त्तुः॥
मूर्खश्चक्रे चपलविधवा स्नानरम्योदकेषु
रूक्षयोच्छ्रूष्यत्तरुषु वसतिं कामगिर्याश्रमेषु॥

We are Neptunians all,
We are Oh seven and small.
Six are under Railway lines.
I am in the black coal mines,
'Tis the latest fashion in dress,
Straw-hat on the stark nakedness.
The Jogins East and ladies West,
In Me you see all that is the best.

भजन करु भाई भजन करु भाई।
छारि मगरूरि भजन करु भाई॥

यहि भजनिया मे मेवा मलाई।
मरद मेहरारु के सब कर भलाई॥
श्याम वेद से ऋचा सुनाऊँ।
पौराणों से गाऊँ॥
तीन चरण सब कोई लगावें।
मैं एक ग्रौर लगाऊं॥

ऐसी ही कितनी ही भाषाग्रों में कितनी गीतें मैंने गाईं। सबका मुझे ग्राज ठीक स्मरण नहीं है। समाधि क्रियाग्रों से विस्मरण शक्ति कुछ बढ़ गई है। ग्रन्ततः गाते गाते मुझे कुछ उदरशूल सा मालूम पड़ा। ग्रब तो सचमुच ग्रदृश्य होने की इच्छा होने लगी। मैं वहां से त्रिवेणी तट की ग्रोर चला। पीछे पीछे मृदङ्ग ग्रादि बजाते हुए भगत भगतिन ग्रादि भी चले। ग्रन्त को एक दुसाधिन की झोपड़ी के पास मैं ऐसा ग्रदृश्य हुग्रा कि भगत भगतिन सब मेरे विरह में ऐसे विह्वल हुए कि मेरे झाड़ी की ग्राड़ से देखतेही देखते पतिव्रता गोवरिका देवी के हाथ से ग्रारती की थाली छूट गई ग्रौर पहिया सी लुड़कते लुड़कते झोपड़ी की फूस की दीवार से जा मिली ग्रौर झोपड़ी ग्रकस्मात् जलने लगी। सब भगत भगतिन इस भयानक दृश्य को देख भाग चले। गोवरिका देवी ग्रपनी ग्रारती की थाली खोज रही थीं, इतने में पुलीस के पहरेवाले चिल्लाते हुए ग्रा पहुँचे। उनका शब्द सुनतेही थाली का मोह छुड़ाकर वे वहां से भाग पड़ीं।

—:०:—

२० वाँ ग्रध्याय।

प्रातःकाल नगर में बड़ा कोलाहल मचा। दुसाधिन के दो बच्चे ग्रौर उसकी गैया का एक बच्चा रात को झोपड़ी में ग्राग लग जाने से जल गये थे। नगर में खलभली सी मच गई थी। दरोगा लक्करूसिंह ने घोड़े पर ग्राकर सवेरेही बहुतेरों का इज़हार लिया था। थाने में ग्राकर उसने पतिव्रता को बुलवाया ग्रौर ग्राधे घण्टे तक उससे बातें कीं। ग्रन्त को मुझसे महात्मा को भी उसने पकड़वा मँगाया। ग्राधे घण्टे के बाद लक्करूसिंह ने पतिव्रता गोवरिका देवी से सबके सामने पूछा कि सुना है कि तू स्वामी जी की भगतिन है ग्रौर स्वामी जी के साथ झोपड़ी तक गई थी। पतिव्रता ने कहा 'हाँ सरकार।'

'झोपड़ी में ग्राग तेरे सामने लगी?
'हाँ सरकार।'
'कैसे ग्राग लगी?"
'श्री जी कुंज के भीतर गणेश क्रिया करने गये तो वहां से ग्राग की लहर ग्राई।'
'यह थाली किसकी है?'
'मेरी।'
'इस पर नाम किसका है?'
मेरे सिन्दूरदाता का।'
'यह क्यों लाई थी?'
'इसमें स्वामी जी के लिए महाप्रसाद ग्राया था।'
'ग्रच्छा जाग्रो। जमादार?'
हाँ हुजूर।
'स्वामी जी हाजत में हैं?'
'हाँ हुजूर।'

कोर्ट में चलो। कई सिपाही पहरा दें, स्वामी को कोई कुछ मत खिलाग्रो। नहीं तो कमबख्त पाखाना करेगा तो शहर में ग्राग लग जायगी।

इतना कह कर कोतवाल साहब थाने से कचहरी चले। मजिस्टर साहब पहले के हिन्दू थे। इधर विलायत से हो ग्राये थे। स्वामी जी का मुकद्दमा सुनकर लोग कचहरी में भरे हुए थे। इतने में स्वामी जी जमादार के साथ ग्राये। कोर्ट बाबू ने कहा खुदावन्द, फिदवी रिपोर्ट करता है कि श्री १०८ स्वामी मुद्गरानन्द मुजरिम ने शहर के ग्रन्दर पाखाना किया है। मुजरिम हाजत में है।

साहब 'राय चमरूदास जूनियर डिपुटी मजिस्टर के इजलास में १५ तारीख़ को मुद्दई हाजिर हो कोर्ट बाबू—मुद्दालह को हाजत देने का काम नहीं, जामनी पर छोड़ दो।' इस पर कोर्ट बाबू बोल उठे खुदावन्द हुज़ूर ने सब बात बिना सुनेही जामिनी का हुकुम दिया। फिदवी सब कहने नहीं पाया। हुज़ूर मुक़द्दमा सेशन का है। मुजरिम ने सिर्फ़ आग पाखाना किया है जिससे एक दुसाधिन की झोपड़ी जल गई है। और उससे एक बछवा और दुसाधिन के दो बच्चे मर गये हैं। हुज़ूर बड़ा खतरा हो गया है। हुज़ूर हिन्दू हैं। गौहत्या और आदमी हत्यां होगई है। हुज़ूर मजहब और कानून दोनों की रू से ऐसी बात है कि मुकद्दमा सेसन भेजना होगा। जज साहब जो चाहें सो करेंगे। शहर का कोतवाल लङ्कूरूसिंह ऐसीही रिपोर्ट करता है। उसको बुलाकर सब हालात पूछ लिया जाय और स्वामी जी भी हाजिर हैं।' इस पर साहब हँस पड़े और बोले—पेशकार पागलखाने के सुपरडण्ड को मेरी तरफ से लिखो कि थानेदार लङ्कूरूसिंह पागल हो गया है आदमी सर्कारी खैरखाह है। पच्चीस वर्ष तक अच्छी नौकरी की है। आज-अच्छे अच्छे मोलवी आलिम एम. ए. वगैरह भी मेसमेरीज़म, थियासोफी कादियान वगैरह के फेर में पड़े हैं और मुर्दों की चिट्ठी वगैरह मँगाया करते हैं। लङ्कूरूसिंह भी किसी ऐसेही फेर में पड़ा हुआ मालूम पड़ता है। आराम होने पर आधी तनखाह पर पागलखाने में रहेगा। हफ्ते हफ्ते मुझे खबर मिले कि इसका पागलपन घटता है, या बढ़ता है।' इस पर लङ्कूरूसिंह हजूर के सामने आकर लंबी सलाम करके बोला—'हजूर मां बाप हैं। हजूर धर्म के अवतार हैं ऐसी बेइनसाफी नहीं होनी चाहिये, फिदवी पागल नहीं है। स्वामी जी के बारे में जो कुछ कहा गया है सब सही है। हजूर गवाह चाहें तो मौजूद हैं। मुजरिम के जुर्म के एक गवाह बन्ध्यापुत्रान्वेषण समाज के महामहोपदेशक मौनमहोदधि विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्मा जी हैं। और दूसरे गवाह दर्शनरत्न त्रैलोक्यमार्त्तण्ड स्नातक श्री विद्येश्वर जी हैं। दोनों ने आंखों से मुजरिम के जुर्म को देखा है। सनातन धर्म के वार्षिक पिण्डालय और अन्य समाजों के पिण्डालय से हल्ला होने पर बहुत से लोग स्वामी जी के पास आये थे। पिण्डालयों के बलूमटेर कितने ही इस बात के गवाह हैं।" यह सुनकर दर्शनरत्नजी और मौनमहोदधि जी दोनों ही आगे बढ़े। दोनों ही ने कहा 'सरकार! हमन एह बात के जनेऊ कसम कहत हईं कि हमन आँखन देखलीं कि स्वामी जी ऐसन काम कइलेन'। साहब बोले 'Well तुम लोग बिना पूछे क्यों बोल उठा है, तुम लोग अभी सामने से चला जाओ नहीं तो तुम को पागलखाना देगा या झूठी गवाही में जेल देगा। चपरासी! इनको निकालो।' दोनों गरदनियाँ देकर निकाले गए। खखनदेव शर्मा कहते गये कि कल क़िले के मैदान में झगरू पाण्डे को सभापति बनाकर इस अन्याय पर व्याख्यान होगा। दर्शनरत्नजी ने कहा 'मैं हितोपदेश के क़ानून से इसी बात पर व्याख्यान दूँगा। इन लोगों के साथ कचहरी से बहुत लोग निकले। तीन लड़के विश्वबल्लभ, सिपारसदास व हरिकृष्ण नाम के, जो बन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के बलूमटेरों का बैज लगाये थे, बड़े ज़ोर से चिल्लाते गये कि हम लोग गोबरिया, कचरिया, और दही चूड़ा के क़ानून से व्याख्यान देकर अनृत पत्रिका आदि पत्रिकाओं में इन बातों को प्रकाशित कर देंगे और भीतरी बाहरी देशदूषक आदि महात्माओं को भी तार दे देंगे कि आज कैसा अन्याय हुआ। इतने में मैं जो खड़ा था सो भूख प्यास से बेहोश होकर धम से गिरा। साहब ने रोटी शराब मँगा कर देनी चाही पर सब लोग बोले 'स्वामीजी फिर समाधि लेंगे। यह मज़हबी बात है। हजूर इस वक्त खिलाने पिलाने का मौक़ा नहीं है। स्वामीजी ने सत्ययुग में समाधि ली थी सो अब उठे हैं। अब इस भ्रष्टयुग में समाधि लेंगे तो फिर सत्ययुग में उठेंगे। हाकिम लोग बारह लाख वर्ष मुक़द्दमा मुलतवी रक्खें। समाधि के वक्त में मुक़-

क्षमा करना ख़िलाफ़ मज़हब व ख़िलाफ़ शाही हुक्म के है।' थानेदार बोले 'हजूर ने इसे कुछ खिलाया और इसने कहीं पाख़ाना किया तो सारे दफ़्तर में अभी आग लग जायगी।' साहब ने एक की न सुनी। भीड़ हटवा कर ख़ुद पानी का छींटा देकर मुझे होश में लाकर रोटी खिलाई व शराब पिलाई। सो मैं पांच सात गिलास ढाल गया। सर्कारी वकील भगत मुर्गोवीमल्ल हलुआसिया एम० ए०, एल एल० बी० से साहब ने राय लेकर मेरी कम-ज़ोरी देखकर एक दम छोड़ देना चाहा और कहने लगे कि ऐसे ख़फ़ीफ़ जुर्म के लिए एक पगले के कहने पर दूसरे पगले को क्या सतावें। तब तक दो बारिस्टर एक हिन्दू और एक मुसलमान कुछ आपस में बात चीत कर उठे और बोले—"Your honour! मुक़द्दमा असल में सेशन का है। हाई-कोर्ट में रेफ़रेंस (Reference) जाने पर इस कोर्ट की बड़ी शिकायत होगी। हजूर सोच विचार कर काम करें। इस कोर्ट को ऐसे मुजरिम को छोड़ने का कोई हक़ नहीं है। पिनल कोड के मुताबिक़ यह होमीसाइड और आरसन का कसूर है। हुजूर एक और भी बात है। हजूर हाकिम हैं। हजूर को मज़-हबी बातों में दख़ल देने का कोई हक़ नहीं है। मुजरिम के ज़ुर्म को नामुमकिन समझने से सभी मज़हबों में धब्बा लगता है। ख़ास करके हिन्दू मज़हब पर इसका बहुत बड़ा असर होगा। हुजूर इस ज़ुर्म को नामुमकिन समझना पाँचवें वेद महा-भारत के खिलाफ़ जायगा और पुराणों के खिलाफ़ जायगा"। साहब बहुत ताज्जुब में आकर बोले 'क्या आज समूची कहरी में पागलपन छा गया है। आप लोग क्या बोलता है हम कुछ नहीं समझता। हम ऐसी बातों में टाइम ख़राब करना नहीं माँगता। सर्कारी वकील! और कोई मुक़द्दमा है?" Your honour एक भी नहीं' बारिस्टर लोग—'हजूर कोई मुक़द्दमा नहीं है वक्त, आख़िर फ़ज़ूल ही है। हमारी दो बातें हजूर सुन लें।'

'अच्छा कहो।'

'हजूर हिन्दू हैं। महाभारत वग़ैरह अपनी मज़-हबी किताबें हजूर ने देखी होंगी।'

हाकिम—'हम अठारह वर्ष की उमर में विलायत गया संस्कृत नहीं पढ़ा लेकिन दत्त और ग्रिफ़िथ वग़ैरह का तर्जुमा पढ़ा है। मगर महाभारत व इस मुक़द्दमे से क्या तअल्लुक़ है सो समझ में नहीं आता है।' इसी बीच मुझे बोतल का असर आ पहुँचा। मैं नाचने लगा और गाने लगा—

> निपीय यस्य क्षितिभक्षिणः कथां—
> स्तथाद्रियन्ते न खलाः सुरामपि।
> गमिष्यति छत्रित पापमण्डलः
> स राशिरासीत् तमसां मलोज्ज्वलः॥

> I am a Neptunian and come to see poor [earth.
> How she is hypnotised in gay occult [myth.
> Clairvoyance, and planchets and tele- [pathy.
> Why telegraphy, why allopathy why [homeopathy.

सब लोग हँसने लगे हाकिम भी हँस पड़े। बारिस्टर लोगों ने किसी प्रकार खाँसी के द्वारा हँसी दबा कर फिर हाकिम से कहा 'हजूर न्याय शास्त्र में चार सबूत कहे गये हैं। शब्द, अनुमान, उपमान और प्रत्यक्ष। स्वामी जी के जुर्म के बारे में हुजूर के सामने चारों सबूत पेश किये जाते हैं।

(नं १) महाभारत के शब्दों में साफ़ लिखा है कि उत्तङ्क ऋषि ने घोड़े की दुम फूँकी थी तो पाताल में आग लग चली थी। हयवान घोड़े के बदन से आग निकली। महामहर्षि मज़हबी श्री १०८ स्वामीजी के बदन से आग निकलना क्या मुशकिल है?

(नं २) अनुमान से भी यही बात निकलती है। कितने ही मुल्कों में बड़े बड़े लोग भी शौच के बाद काग़ज़ से शुद्धि कर लेते हैं। मगर हिन्दू लोग

लोटा भर पानी लिए जाते हैं। अगर हिन्दुओं को आग लगने की शङ्का न होती तो वे भी आसानी से काग़ज़ लिए जा सकते थे, ख़ास कर के बी० एन. डबल्यु. रेलवे की गाड़ियों में जहाँ कि नालियों में अकसर पानी नहीं रहता है। इससे अनुमान होता है कि हिन्दुओं को नित्य क्रिया के समय ज़रूर आग लगने की शङ्का रहती है।

(नं० ३) इस बात के लिये उपमान प्रमाण भी है। हाल में प्रसिद्ध घोड़दौड़ वाले महाराजा मंझौली और एकतादर्शन के प्रणेता महाशय खण्डेलवाल भी पायु-प्रक्षालनालय में जल कर मर गए हैं।

(नं० ४) अगर हुज़ूर को इन तीनों सबूतों से यक़ीन न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिया जा सकता है। अभी स्वामी जी को जुलाब दिया जाय तो हज़ूर यहाँ देख ले सकते हैं कि अभी हिन्दुस्तान के लोगों के बदन से आग निकल सकती है।

इतने ही में मुझे फिर कुछ उदर शूल सा मालूम पड़ने लगा और मैं अपनी जठर तुम्बिका पर हाथ फेरता हुआ नाचने लगा। अब तो लक्कूरूसिंह के हर्ष का पारावार न रहा। वे चिल्ला उठे कि अगर भगवत्कृपा से इस वक्त श्री जी को दस्त आ जावें तो हाकिम लोगों को यक़ीन हो जावे कि महात्माओं में कितनी ताक़त है। इस पर हाकिम की ओर से हुक्म हुआ कि "हम दफ़्र में गड़बड़ नहीं माँगता। चपरासी! लक्कूरूसिंह को व स्वामी जी को यहाँ से बाहर ले जाओ"। हज़ूर बदबू की बात करते हैं। मैं तो समझता हूँ कि दफ़्र में आग लग जायगी और दफ़्र का बुझाना मुश्किल हो जायगा"। ऐसी बातें बकते हुए लक्कूरूसिंह मेरे साथ कचहरी से बाहर हुए और सलाह हुई कि जब हाकिम बासिकिल पर कचहरी से बँगले जाते रहेंगे तब सड़क के नीचे किसी खरपात के समूह के पास मैं प्रातः क्रिया करता रहूँगा। खर पात में मेरी प्रातः क्रिया से आग लगती हुई देख कर ख़ुद ही हाकिम को अपनी भूलों पर पछतावा होगा।

—:०:—

२

मनोविकारों का विकाश।

(४)

करुणा।

अन्वय व्यतिरेक की शक्ति के उपरान्त जब बच्चे को कार्य्य-कारण-सम्बन्ध कुछ कुछ प्रत्यक्ष होने लगता है तभी दुःख के उस भेद की नीव पड़ जाती है जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले यह देखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना-क्रम के, स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्य्य-कारण-सम्बन्ध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुःख के कारण वा कार्य्य को देख कर उनके दुःख का अनुमान करता है और स्वयम् एक प्रकार का दुःख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब माँ झूठ मूठ 'ऊँ ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं।* इसी प्रकार जब उनके किसी भाई वा बहन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।†

दुःख की श्रेणी में परिणाम के विचार से करुणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिस के प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुःख और आनन्द दोनों की श्रेणियों में रक्खी गई है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुःख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनन्द की श्रेणी में रक्खा है, चाहे कभी कभी और व्यक्तियों वा वस्तुओं को हानि पहुँच जाय

* कार्य्य। † कारण।

पर जिसे जिस व्यक्ति वा वस्तु का लाभ होगा उसकी हानि वह कभी नहीं करेगा। लोभी महमूद ने सोमनाथ को तोड़ा; पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको ख़ूब सहेज कर रक्खा। नूरजहाँ के रूप के लोभी जहाँगीर ने शेर अफ़ग़न को मरवाया पर नूरजहाँ को बड़े चैन से रक्खा।

कभी कभी नम्रता, सज्जनता, धृष्टता, दीनता आदि मनुष्य के स्थायी भाव भी, जिन्हें गुण कहते हैं, तीव्र होकर मनोवेगों का रूप धारण कर लेते हैं पर वे मनोवेगों में नहीं गिने जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है उसके सुख और दुःख का बहुत सा अंश दूसरों की क्रिया वा अवस्था पर निर्भर हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुःख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम जितना व्यापक है उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं। हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दुःख को देख कर भी दुखी होते हैं। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बंद नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है। यह और बात है कि यह जान कर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध वा अत्याचार किया है हमारी दया दूर वा कम हो जाय। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध वा अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी वा अत्याचारी का वर्त्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है। सारांश यह कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देख कर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान् वा चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र वा हितू हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ वा कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इस से प्रकट है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देख कर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रक्खा गया है और न उसमें वेग वा क्रियोत्पादक गुण है। पर दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

जब कि अज्ञात व्यक्ति के दुःख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तब जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दुःख पर हमें अवश्य अधिक करुणा होगी। किसी भोली भाली सुन्दरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बन्धु को दुःख में देख हमें अधिक व्याकुलता होगी। करुणा की यह सापेक्ष तीव्रता जीवननिर्वाह की सुगमता और कार्य्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से इस प्रकार परिमित की गई है।

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता वा दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके सम्बन्ध वा संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होती है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म्म सज्जनता वा दुर्जनता की कोटि में न आवेगा। उसके सब कर्म्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अतः सब के उद्देश्यों को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दुःख का निराकरण वा बचाव हुआ। अस्तु, जिन कर्म्मों से संसार के इस उद्देश्य का साधन हो वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के

लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्म्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन ग्रैार दुःख की निवृत्ति हो वे शुभ ग्रैार सात्त्विक हैं तथा जिस अन्तःकरण-वृत्ति से इन कर्म्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्त्विक है। कृपा वा प्रसन्नता से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है। पर एक तो कृपा वा प्रसन्नता में आत्मभाव छिपा रहता है ग्रैार उसकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। दूसरी बात यह कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दुःख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है।

दूसरे के उपस्थित दुःख से उत्पन्न दुःख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोवेगों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दुख का ध्यान वा अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुःख पहुँचे, शील वा साधारण सद्वृत्ति के अन्तर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता वा मुरौवत ही का भाव समझा जाता है जैसे 'उनकी आँखों में शील नहीं है,' 'शील तोड़ना अच्छा नहीं'। दूसरों का दुःख दूर करना ग्रैार दूसरों को दुःख न पहुँचाना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है पर दुःशीलता वा दुर्भाव का नहीं। ऐसा मनुष्य झूठ बोल सकता है पर ऐसा नहीं जिस से किसी का कोई काम बिगड़े वा जी दुखे। यदि वह कभी बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जँचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार के अनुसार 'सदा सत्य बोलना,' 'बड़ों का कहना मानना' आदि नियम के अन्तर्गत हैं, शील वा सद्भाव के अन्तर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाय। पर मनोरंजन, ख़ुशामद, ग्रैार शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी किसी अवस्था में तो धर्म्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाज़त तक दे दी गई है विशेषतः जब इस नियमभंग द्वारा अन्तःकरण की किसी उच्च ग्रैार उदार वृत्ति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध ग्रैार निःसहाय व्यक्ति अनुचित दण्ड से बच जाय तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील वा सद्वृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं। मनोवेग-वर्जित सदाचार केवल दम्भ है। मनुष्य के अन्तःकरण में सात्त्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करुणा है। इसी से जैन ग्रैार बौद्ध धर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है ग्रैार गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

> पर-उपकार सरिस न भलाई।
> पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

यह बात स्थिर ग्रैार निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किसी रूप में सात्त्विकशीलता ही है। अतः करुणा ग्रैार सात्त्विकता का सम्बन्ध इस बात से ग्रैार भी प्रमाणित होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में ग्रैार किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्षा, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। यह दिखलाया ही जा चुका है कि प्राणियों की आदि अन्तःकरण वृत्ति मन वा मनोवेग हैं। अतः इन मनोवेगों में से जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्त्विकता का आदि-संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य का आचरण मनोवेग वा प्रवृत्ति ही का फल है। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मनोवेग पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य्य में प्रवृत्त हो। कुछ दार्शनिकों ने तो यहाँ तक दिखलाया है कि हमारे निश्चयों का अंतिम आधार

अनुभव वा कल्पना की तीव्रता ही है, बुद्धि द्वारा स्थिर की हुई कोई वस्तु नहीं। गीली लकड़ी को आग पर रखने से हमने एक बार धुआँ उठते देखा, दस बार देखा, हज़ार बार देखा अतः हमारी कल्पना में यह व्यापार जम गया और हमने निश्चय किया कि गीली लकड़ी आग पर रखने से धुआँ होता है। यदि विचार कर देखा जाय तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अन्तःकरण की सारी वृत्तियाँ केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूँढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर कल्पना को और मनोवेगों को तीव्र करनेवाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है वह भी करुणा कहलाता है क्योंकि उसमें दया वा करुणा का अंश भी मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की सम्प्राप्ति किस प्रकार होती है यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिवर्त्तित हो जाता है। अस्तु, प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुःख के परिज्ञान से होती है वही करुणा हमें प्रिय जनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुःख असह्य होता है पर प्रिय जनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चित बात पर सुखी, वा दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है इसी से इस प्रकार के दुःख वा करुणा को किसी किसी प्रान्तिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती हैं—

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौने बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई॥

(—गीत।)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहाँ सब प्रकार का सुख-वैभव था पर यशोदा इसी सोच में मरती रही कि—

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन माँगे दैहै ?
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन छिन आँगो लैहै ?

और उद्धव से कहती हैं—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करिके न्हाते॥
तुमतो टेव जानतिहि ह्वै हौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वै हैं करत सँकोच॥

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं कभी कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है जैसे एक पति-वियोगिनी स्त्री संदेह करती है कि—

नदी किनारे धुआँ उठत है, मैं जानूँ कछु होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय॥

प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश होता है उसे तो मैंने दिखलाया किन्तु ऐसे दुःख का प्रधान अंग आत्मपक्ष-सम्बन्धी एक और ही प्रकार का दुःख होता है जिसे शोक कहते हैं। जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के सम्बन्ध द्वारा व्यक्त होता है।

मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वेही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग वा व्यवहार है। अतः ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके लिए उसके संसार के एक अंश का उठ जाना वा जीवन के एक अंश का निकल जाना है। किसी प्रिय वा सुहृद के चिरवियोग वा मृत्यु के शोक के साथ करुणा वा दया का भाव मिल कर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय वा कुव्यवहार, तथा उसकी इच्छा-पूर्ति के निमित्त अपनी त्रुटियों को स्मरण कर और यह सोच कर कि उसकी आत्मा को सन्तुष्ट करने की सम्भावना सब दिन के लिए जाती रही बहुत अधीर और विकल होते हैं।

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिये करुणा का प्रसार आवश्यक है। समाज-शास्त्र के पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्म्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देनेवाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्थ परिणाम पर दृष्टि रख कर नहीं की जाती बल्कि मन की प्रवृत्तिकारिणी प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी सम्भावना है इस बात वा उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक, विशेष कर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विस्तृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और परस्पर भिन्न वस्तु के भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज-रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी यह समाज-शास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वहीं तक होता जहाँ तक ये समाज-शास्त्र के वक्ता बतलाते हैं तो हमारी दया मोटे, मुसंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहज लोगों पर नहीं जिन से समाज को उतना लाभ नहीं। पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दुखी व्यक्ति जितना ही अधिक असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही वा पहलवान को पिटते देख नहीं। इससे स्पष्ट है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनका धारण करनेवाला मनुष्य का छोटा सा अन्तःकरण नहीं विश्वात्मा है।

दूसरे के थोड़े क्लेश, वा दूसरे की करुणा पर जो वेगरहित दुःख होता है उसे सहानुभूति कहते हैं। शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्रायः इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है। सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म-शिष्टता मनुष्य के व्यवहार से सच्चाई के अंश को क्रमशः निकालती जा रही है।

पहले दिखलाया जा चुका है कि करुणा अनावर्त्ती मनोवेगों में से है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करनेवाले पर भी करुणा नहीं करता (जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है) बल्कि कृतज्ञता, श्रद्धा वा प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखलाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करनेवाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। उद्वेगशील बंगाली उपन्यासलेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान वा उपलब्ध ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लाँघता हुआ अपना देश और काल-संबन्धी विस्तार बढ़ाता है। उपस्थित विषय के संबन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोवेगों की उपयुक्तता कभी कभी इस विस्तार पर निर्भर रहती है। किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बड़े बड़े अपराध कर चुका है इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि केवल मनोवेगों के सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे मनोवेगों के लिए विषय उपस्थित करते हैं। ये कभी तो आप से आप विषयों को मन के सामने लाते हैं। कभी किसी विषय के सामने आने पर ये उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्य्यकारण-संबन्ध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं जो कभी तो सब के सब एक ही मनोवेग के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को तीव्र करते हैं, कभी भिन्न भिन्न मनोवेगों के विषय हो कर प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को परिवर्त्तित वा धीमा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग वा प्रवृत्ति को मंद करनेवाली, स्मृति, अनुमान, वा बुद्धि आदि कोई दूसरी अन्तःकरण वृत्ति नहीं है, मन की क्रिया वा अवस्था ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग वा प्रवृत्ति ही में है। नीतिज्ञों और धार्म्मिकों का मनोवेगों को दूर करने का उपदेश घोर पाखंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर शान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हें परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थों के साथ उनके उपयुक्त संबन्ध-निर्वाह पर ज़ोर देते हैं। यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकलता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध वा घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की भी मुहँ पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन-निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ के कारण उसे दूसरे के दुःख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुःख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य हृदय को दबा कर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है--उसकी भावुकता का नाश होता जाता है। पाखंडी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बना बना कर कहने लगे हैं—"करुणा छोड़ो, प्रेम छोड़ो, क्रोध छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ और पैर हिलाओ, काम करो"।

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार क्रिया करना और बात, पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी पर जब बार बार उस पर दया का कोई अनुसारी परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा।

बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा

सकता पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसारी परिणामों का विरोध प्रायः तीन वस्तुओं से होता है—१ आवश्य, २ नियम और ३ न्याय। हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढा और कार्य्य करने में अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया तो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफ़सर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य्य करने की कौन कहे उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते। अब नियम को लीजिए। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रुपया देकर लोग कोई कार्य्य करने पावें तो जो व्यक्ति रुपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे हीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी दुखिया स्त्री होती तो राजा हरिश्चन्द्र के उस नियम-पालन का उतना महत्त्व न दिखाई पड़ता, करुणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती। करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अपना दुःख नहीं। आत्मीय जनों का दुःख एक प्रकार से अपना ही दुःख है इससे राजा हरिश्चन्द्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करुणा से नहीं।

न्याय और करुणा का विरोध प्रायः सुनने में आता है। न्याय से उपयुक्त प्रतीकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे १०००) उधार लिए तो न्याय यह है कि वह हमें १०००) लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि १०००) लेने के उपरान्त उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई तो न्याय पालने के विचार का विरोध करुणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता गिड़गिड़ाता है और कान पकड़ता है और पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करुणा करने का सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रुपया चाहिए वा जिसका अपराध किया गया है उसको न्यायकर्त्ता वा तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के १०००) अलग किए, वा अपराध द्वारा जो क्षति-ग्रस्त हुआ विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करुणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्त्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक् रूप से कर सकता है, जैसे ऊपर लिखे मामलों में वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हज़ार पाँच सौ अपने पास से दे दे वा दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करुणा का द्वार खुला है।

—:०:—

कनफूची।

(ले० बाबू रामचन्द्र वर्म्मा)

आदि पुस्तक का दूसरा ग्रन्थ सूकिंग एक संग्रह है। चीन के प्राचीन इतिहास का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें चीन राज्य के स्थापनकाल से कनफूची के समय तक का सविस्तर वर्णन है। हमारे पुराणों की भाँति इस ग्रन्थ में भी धर्म्मनीति के उपदेश हैं। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में से मुख्य और आवश्यक अंशों का संग्रह करके कनफूची ने यह ग्रन्थ बनाया था। आदि पुस्तक के तीसरे ग्रन्थ सीकिंग में काव्य और संगीत है। उसका कुछ अंश कनफूची की रचना और कुछ संगृहीत है। इसमें की कविता और गीतों को चीनी प्रायः कण्ठ करते

हैं। इस पुस्तक में संगीत-शास्त्र पर कनफूची के लिखे हुए कई प्रबन्ध भी हैं। इस पुस्तक से चीनियों की रीति नीति और आचार व्यवहार का अच्छा पता चलता है।

कनफूची का लीकिंग चौथा ग्रन्थ सबसे बड़ा है। इसके विषय,—स्मृति और व्यवस्था हैं। इसमें धर्म्म-कर्म्म की विधि और व्यवस्था वर्णित है। अभी इस बात का कोई निर्णय नहीं हो सका है कि इस पुस्तक का मूल अंश कनफूची की रचना है या और किसी की। पाँचवें ग्रन्थ चुगुछिऊ में कनफूची की जन्मभूमि लू-राज्य का प्राचीन इतिहास है। चुंग शब्द का अर्थ बसन्तकाल और छिऊ शब्द का अर्थ शरत्काल है। कनफूची ने इस पुस्तक का लिखना वसन्तकाल में आरम्भ किया था और शरत्काल में उसे समाप्त किया था; इसी लिए उसका नाम चुंकछिऊ रक्खा गया। यह उनकी वृद्धावस्था की रचना है। इसमें ईम से लेकर गई तक के राजत्वकाल (चौदह वर्ष) का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ समाप्त कर चुकने पर कनफूची ने उसे अपने शिष्यों के हाथ में देकर कहा था कि "यदि मेरी रचना से मेरी कुछ यशोवृद्धि होगी तो इसी ग्रन्थ से होगी।" इस पुस्तक में ईश्वर या अध्यात्म-सम्बन्धी कोई उपदेश नहीं है। यह पुस्तक प्रश्नोत्तरी स्वरूप है। प्रत्येक विषय की प्रशंसा में उन्होंने कार्य्य-कारण का सम्बन्ध दिखाया है। एक स्थान पर प्रश्न किया गया है—मृत्यु क्या है? और उसका उत्तर दिया गया है—जब हम यही नहीं जानते कि जीवन क्या है, तो हम मृत्यु की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं।

ईसा से ४४१ वर्ष पूर्व कनफूची के एक मात्र पुत्र ली का देहान्त हो गया। कनफूची की जीवनी में उनके पुत्र का कोई विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। उसमें केवल एक घटना का उल्लेख है जिससे मालूम होता है कि वह अपने पुत्र को किस प्रकार उपदेश दिया करते थे। एक बार कनफूची के किसी शिष्य ने ली से पूछा—"जितने विषयों की शिक्षा हम लोगों को दी गई है, उनके सिवा तुमने और भी किसी विषय की शिक्षा पाई है या नहीं?" ली ने उत्तर दिया—"नहीं, मुझे किसी और विषय की शिक्षा नहीं मिली है। एक बार पिता जी ने मुझसे पूछा था कि तुमने गीतों की पुस्तक पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा—नहीं। इस पर वे बोले कि यदि तुम वह पुस्तक न पढ़ोगे तो कथोपकथन करने के योग्य न हो सकोगे। इसी प्रकार और एक बार उन्होंने मुझसे पूछा था कि तुमने आचार-व्यवहार-सम्बन्धी मेरा ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं, पर मैंने वह ग्रन्थ भी नहीं पढ़ा था, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा कि यदि तुम वह ग्रन्थ न पढ़ोगे तो तुम्हारा चरित्र कभी ठीक न रह सकेगा। इस पर उस शिष्य ने ली से कहा—"हम लोगों से भी येही दोनों बातें कही गई हैं। इसके सिवा एक बात और अधिक कही गई है और वह यह है कि विज्ञ लोग कभी अपने पुत्र के लिए किसी विशेष शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते।"

ली की मृत्यु के एक वर्ष बाद कनफूची के इयेन-हिऊ नामक शिष्य का देहान्त हो गया। इस दुर्घटना से कनफूची को बहुत अधिक दुःख हुआ। एक वर्ष बाद, एक बार की-कंग शिकार करने गया और वहाँ से सींगवाला एक अद्भुत जीव पकड़ लाया। अब कोई उसका नाम न बतला सका तो कनफूची की बुलाहट हुई। कनफूची ने आकर कहा कि इसका नाम की-लिन है। लोग कहते हैं कि कनफूची के जन्म से पूर्व वह जानवर एक बार एक पर्वत पर उनकी माता को स्वप्न में दिखाई दिया था, और उनकी माता ने उसके सींग के एक फीता बाँध दिया था। वह फीता उस समय भी उसके सींग में बँधा हुआ मिला। उस पशु को देख कर कुछ लोग अमंगल की आशंका करने लगे। उस अवसर पर प्रसंग पड़ने पर कनफूची ने कहा था—"किसी महात्मा का नाम कभी लुप्त नहीं होता; लेकिन मेरे उद्देश्यों का प्रचार उचित रूप से नहीं हुआ इसलिए मैं नहीं कह सकता कि भविष्य में लोग मुझे किस दृष्टि से देखेंगे।"

एक दिन प्रातःकाल कनफूची अपने मकान के दरवाजे पर टहलते हुए, संसार के नश्वर होने के सम्बन्ध में एक गीत गा रहे थे। इतने में जीकिंग वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कनफूची ने कहा —इतने दिनों बाद एक व्यक्ति आ रहा है, जिसे मैं गुरु बनाऊँगा। अब मेरा अन्त समय निकट आ गया है।" इतना कह कर वह अन्दर अपने बिस्तर पर लेट गये और सात दिन बाद उनकी मृत्यु होगई।

उनके शिष्यों ने बड़े समारोह से उनकी अन्तिम क्रिया की। मृत्यु के बाद चीन-वासियों को उनका अभाव मालूम होने लगा; इसलिए उनकी मृत्यु के कारण बहुत दिनों तक देश में शोक छाया रहा। उनके बहुत से शिष्यों ने उनके समाधि-स्थान पर कुटियाँ बनाईं और उसी में वे लोग बहुत दिनों तक निवास करते थे।

क्यू-फो नगर के बाहर कं-वंश का समाधि-स्थान था। वहीं पर कनफूची की भी समाधि बनाई गई। उसके पासही एक बहुत ऊँचा स्तम्भ है जिस पर कनफूची की संगमरमर की मूर्त्ति बनी हुई है। इस समय उसके चारों ओर सुन्दर लताएँ और कुंज हैं। मूर्त्ति के नीचे स्यांग राजवंश की ओर से पत्थर पर खुदा हुआ एक लेख है जिसमें लिखा है कि ये बड़े बड़े ज्ञानियों में अग्रगण्य, सर्वविद्यानिपुण और सर्व्वज्ञ सम्राट् थे।

उस स्तम्भ के दोनों ओर दो और छोटे स्तम्भ और समाधियाँ हैं। एक समाधि ली की और दूसरी उसके पुत्र की है। पास ही वह स्थान भी है जहाँ उनके शिष्य शीकिंग ने अपने गुरु के शोक में पागल होकर अपने जीवन के शेष छः वर्ष बिताये थे। समाधि-स्तम्भ पर बनी हुई मूर्त्ति से मालूम होता है कि कनफूची बड़े हृष्ट पुष्ट और अच्छे डील डौल के थे। उनका मुखमण्डल पूर्णता-प्राप्त और मस्तक वृहत् था। इसके सिवा उनके शरीर में ४९ विशेष चिह्न थे।

कनफूची जिस समय राजसभा में राजा या शून्य सिंहासन के पास जाते थे, उस समय उनकी स्वतन्त्रता मानों नष्ट सी हो जाती थी। उनका गला रुँध जाता था और शरीर काँपने लगता था। आवश्यकता पड़ने पर जब कभी उन्हें राजचिह्न आदि धारण करने पड़ते थे, उस समय उनका शरीर बिलकुल बेबस सा हो जाता था। यदि कभी वे बीमार पड़ते और राजा तथा उनके परिवार के लोग उन्हें देखने के लिए आते तो वे उसी समय सब उचित वस्त्र आदि पहन कर तैयार हो जाते थे। दुर्भिक्ष आदि के लिए प्रति वर्ष जो उत्सव हुआ करते थे, उनमें वे बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। वे सदा बड़े संयम से रहते थे और खाने पीने में दूसरी किसी तरह की बदपरहेज़ी न करते थे और भोजन के समय बातें अधिक करते थे। कभी कभी वे थोड़ी मदिरा भी पीते थे। जहाँ तक हो सकता वे भूखों तथा दीन दुःखियों की सहायता किया करते थे। मार्ग में वे बड़ी नम्रता से लोगों का अभिवादन करते थे, और सब छोटे बड़ों का समान रूप से आदर करते थे। तात्पर्य्य यह कि वे लोगों को केवल उपदेश देना ही न जानते थे, बल्कि वे स्वयं आदर्श-पुरुष थे।

संगीत से उन्हें बहुत प्रेम था और उसमें वे बहुत निपुण भी थे। उनका मत था कि बिना संगीत की सहायता के मनुष्य के हृदय में कभी जागृति नहीं हो सकती। नीति के अवलम्बन से चरित्र-गठन अवश्य होता है, लेकिन बिना संगीत के वह गठन अपूर्ण रह जाता है। कहीं गाना या उनका ज़िक्र सुनते ही कनफूची पागल से हो जाते थे; और यदि किसी को उनके विरुद्ध कुछ करते हुए देखते तो उससे झगड़ने और तर्क करने लग जाते थे।

कनफूची सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। उनके उपदेशों में दर्शन और विज्ञान-सम्मत व्यवहार-नीति, समाज-नीति और राज-नीति ही रहती थी। धर्म्म, कर्म्म या मत और विश्वास के सम्बन्ध में वे अधिक नहीं कहते थे। सर्वसाधारण के लिए उन्होंने एक व्यवहार-शास्त्र भी बनाया था। उसका नाम है लीकिंग। उसमें मनुष्य-जीवन के मुख्य कर्त्तव्यों की विवेचना की गई है। उसमें पिता, माता

तथा बड़ों के साथ व्यवहार करने और उत्तम जीवन व्यतीत करने के नियम दिये गये हैं। उनके मत से परिवार एक जाति का छोटा स्वरूप था, जिस प्रकार पिता का अधिकार समस्त परिवार पर होता है, उसी प्रकार एक राजा का अधिकार समस्त जाति या देश पर होना चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने सारी समाज और राजनीति की स्थापना की थी। आज तक भी इन नियमों में भी चीनवालों ने बहुत ही कम परिवर्त्तन किया है।

किसी किसी के मत से कनफूची नास्तिक थे और वे ईश्वर की सत्ता नहीं मानते थे। लेकिन अपने दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में वे लिख गये हैं कि वास्तविक शून्य से किसी चीज़ की उत्पत्ति सम्भावित नहीं है। अवश्य ही अनादि अनन्त काल से कोई मूल पदार्थ वर्त्तमान है। वह मूल या कारण अनन्त, अक्षय, असीम, सर्व्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है। उस शक्ति का केन्द्रस्थल नील आकाश है और वहीं से सब कारणों का कार्य्य आरम्भ होता है। वहीं से समस्त संसार में वह शक्ति फैलती है।

उनके मत से मनुष्य का शरीर दो प्रकार के तत्त्वों से मिलकर बना है। एक तत्त्व सूक्ष्म, अदृश्य और ऊर्ध्वगामी है और दूसरा स्थूल, इन्द्रिय-ग्राह्य और अधोगामी। जब ये दोनों तत्त्व एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो सूक्ष्म अंश आकाश की ओर चला जाता है और स्थूल अंश पृथ्वी में मिल जाता है। उनके मत से मृत्यु कोई चीज़ नहीं है। स्थूल शरीर तो मिट्टी में मिल कर नष्ट हो जाता है पर सूक्ष्म शरीर आकाश में सदा वर्त्तमान रहता है और कभी कभी इस पृथ्वी पर अपने पूर्व निवास-स्थान पर भी आ जाता है। यदि उसके परिवार के लोग उसका पूजन आदि करें तो वह प्रसन्न होकर उनका मंगल करता है। इसी लिए चीन में मृतक पितरों के लिए मन्दिर बनाने और उनके उत्सव मनाने का नियम है। ऐसे अवसरों पर वे लोग इतनी अधिक श्रद्धा और भक्ति दिखलाते हैं कि देखनेवालों को बहुत आश्चर्य्य होता है।

कनफूची या उनके शिष्य ईश्वर का कोई आकार नहीं मानते थे और न उसके किसी अवतार या प्रतिमा की ही कल्पना करते थे। वे अदृष्टवाद स्वीकार करते थे। उनके कुछ मुख्य उपदेश ये हैं:—

(१) जिन लोगों के हृदय में किसी प्रकार की अशान्ति न हो, वे ही पूरे धार्म्मिक हैं।

(२) मनुष्य का सबसे पहला लक्ष्य विश्वास और दृढ़ता पर होना चाहिए।

(३) इस बात का दुःख न करना चाहिए कि लोग हमें नहीं जानते, बल्कि दुःख इस बात का होना चाहिए कि हमने ही लोगों को नहीं जाना।

(४) बिना मनोयोग के विद्याध्ययन के लिए परिश्रम करना बिलकुल व्यर्थ है; इसी प्रकार बिना विद्या के मनोयोग भी व्यर्थ है।

(५) ज्ञानियों की बातें छोटी और व्यवहार बड़े होते हैं।

(६) ईश्वर को सदा सम्मुख उपस्थित समझकर उसकी आराधना करनी चाहिए। यदि आराधना में मन न लगे तो उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

(७) धर्म्मभ्रष्ट होने पर जो धन और भाव मिलता है वह नीरस और व्यर्थ होता है।

(८) ज्ञानी जो कुछ ढूँढते हैं वह अपने आपमें और अज्ञानी दूसरों में ढूँढते हैं।

(९) जो उत्तम बात सीखो उसके अनुसार कार्य्य करो। प्रति दिन कोई न कोई नई बात सीखो।

(१०) मनुष्य बलपूर्वक किसी सत्कार्य्य में लगाया जा सकता है, लेकिन बलपूर्वक उससे हटाया नहीं जा सकता।

(११) जो व्यक्ति ईश्वर का अपराधी है, उसे कहीं शरण नहीं मिल सकती।

(१२) जो राजा धार्म्मिक होता है, वही न्याय और युक्तिपूर्ण कार्य्य और साहस से बातें कर सकता

है। जो धार्म्मिक नहीं होता वह केवल सतर्क और सावधान होकर ही बातें कर सकता है।

चाहे कनफ़ूची में कितने ही दोष क्यों न हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे एक आदर्श व्यक्ति थे। उनके उपदेशों और आज्ञाओं का पालन चीन में आज तक होता आ रहा है। इस समय प्रत्येक ग्राम, बल्कि प्रत्येक घर में उनकी मूर्त्ति और मन्दिर वर्त्तमान हैं। सम्राट और उनके मन्त्री तक उनकी मूर्त्ति का पूजन करते हैं। और उसके सामने फल, फूल, सुगन्धि-द्रव्य तथा अन्य उत्तमोत्तम पदार्थ रखते हैं।

कनफ़ूची ने भूत, भविष्य पर-काल, सृष्टि-तत्त्व, वस्तु-तत्त्व आदि विषयों की मीमांसा करने की कभी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सदा वर्त्तमान और इहजीवन की उन्नति और अवनति पर ही विचार किया था। उन्हीं के उपदेश से चीनवासी भी अब तक वर्त्तमान की उपासना में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

—:०:—

रामायण और भारत का समय।

[ले०—पंडित बालकृष्णभट्ट]

वैदिक ऋषि निरामिष और सीधे थे पर रामायण और भारत के समय के भांति भांति के यज्ञों से पता लगता है कि लोगों में मांस का भरपूर प्रचार हो गया था। छान्दोग्य उपनिषद में यज्ञों का बड़ा विधान लिखा है। जो पशु यज्ञ के बलि में प्रधान रहता था उसी के नाम से यज्ञ का नाम पड़ता था। लोग सोमपान के बड़े रसिक होते थे। बहुत से गुण सोमपान के लिखे हैं। समस्त वेद वेदांग में जो पारंगत हो जाता था उसे स्नातक कहते थे। १२ वर्ष ब्रह्मचारी रह गुरुकुल में नियमपूर्वक विद्याभ्यास कर गुरु से विदा हो जब स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था उस समय उसका बड़ा स्वागत किया जाता था, उसके लिये बड़ा उत्सव मनाया जाता था। बिना स्नातक हुये विवाह नहीं होता था। विवाह की कई एक रसमों में बर को पहिले मधुपर्क दिया जाता है। "गौर्गौर्मातादित्यानां दुहिलवसूनाम्" ऐसे ऐसे दो एक मंत्र उस समय पढ़े जाते हैं और खर के एक टुकड़े को दूसरे टुकड़े से तोड़ दोनों टुकड़ों को फेंक देते हैं। कन्यादान करने वाला तीन बार "मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्" कह बर को देता है। वर "प्रतिगृह्णामि" कह उसे ले लेता है और ओठ में उसे छुला पात्र पृथ्वी पर रख देता है। बाल्य विवाह की कुरीति चल जाने पर अब यह सब निरा फार्स या नाटक का एक तमाशा सा हो गया है। स्नातक का नाम कोई नहीं जानता तब गुरुकुल का विद्याभ्यास कहां रहा।

वैदिक समय से हर एक बात में उन्नति करते करते वाल्मीकि के समय समाज परम उन्नति की सीमा तक पहुँच गया था। बड़े राजाओं की राजधानी तथा राजसभा विद्या और विज्ञान की सिद्ध-पीठ थी। दूसरे देश के विद्वान् राजसभा में बुलाकर रक्खे जाते थे और उनका यथावत् आदर सत्कार किया जाता था। विदेह राजा जनक की सभा विद्वानों का समूह थी। दूर दूर के विद्वान् विदेह की सभा में आकर अपने अनेक प्रश्नों का उत्तर पा सन्तुष्ट हो जाते थे। न केवल ऐहिक बातों का विचार होता था किन्तु पारलौकिक बातों का विचार भी वहां होता था जैसे प्राण-विसर्जन के उपरान्त मनुष्य की क्या दशा होती है? आत्मा क्या है? देह से अलग हो जाने पर आत्मा का क्या होता है? किस दशा में रहती है इत्यादि। ऐसे ही राजा दशरथ की सभा में भी वसिष्ठ वामदेव जावालि आदि बड़े बड़े विद्वान् सदा राजसभा को सुशोभित किये रहते थे। राजा लोग बिना इन विद्वानों की सलाह के अपने मन से कोई काम नहीं कर गुज़रते थे। प्रत्येक राजा की राजसभा में विद्वान् ब्राह्मणों की एक परिषद रहती थी और वही प्रजा के हर तरह के झगड़े तै

करती थी। कृषि करनेवालों के सुख और आराम का विशेष ध्यान रहता था। राजा लोग प्रजा से उपज का छठा हिस्सा लेते थे। खेती करनेवाले ब्राह्मण छठा भाग छोड़ खेती काट लाते थे। राजकर्मचारी उस राजभाग वा षष्ठांश का सब प्रबन्ध करते थे। विद्वान् ब्राह्मण राजसभा में रह राज्य में विद्यावृद्धि के अनेक उपाय सोचते थे। किसी बड़े यज्ञ या उत्सव में दूर देश देश, शहर तथा गाँव के रहने वाले विद्वान् पण्डित आते थे और अनेक जुदे जुदे विषयों पर वाद विवाद करते थे। उनके वाद विवाद का निष्कर्ष छः दर्शनों की बुनियाद हुई। केवल राजाओं ही के दरबार में ऐसा हो सो नहीं विद्यावृद्धि के लिये ब्राह्मणों के परिषद रहते थे। श्वेतकेतु पांचाल के परिषद में विद्या पढ़ने गया था। परिषदों में कम से कम २१ ब्राह्मण रहते थे जो दर्शन, पुराण और धर्मशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता होते थे। पराशर ने लिखा है कि २१ न मिलें तो ३ या ४ ब्राह्मणों के भी परिषद बन सकते हैं जो षडंग वेद को अच्छी तरह पढ़े हों और अग्निहोत्र करते हों। इन परिषदों के अतिरिक्त बहुत सी अलग अलग ऐसी पाठशालाएँ होती थीं जिनमें द्विजाति मात्र के लड़के पढ़ते थे और गुरु की सेवा को अपना मुख्य काम मानते थे। १२ वर्ष तक गुरुकुल में रह विद्याभ्यास के उपरान्त गुरु को दक्षिणा दे विदा हो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। १० हज़ार विद्यार्थियों को जो पढ़ाता था उसे कुलपति की पदवी दी जाती थी। गृहस्थाश्रम के उपरान्त तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का रक्खा गया है। किसी वन में कहीं एकान्तस्थान में बहुधा नदी के तट पर जहाँ का जल वायु अति स्वच्छ हो वहाँ जा बसते थे। कन्द मूल खाते थे और विद्यार्थियों को एकत्र कर उन्हें विद्यादान देते थे। पूर्ण विद्वान् के लिये यहाँ तक लिख दिया गया है कि वह अन्त में ब्रह्म में मिल जाता है, जिससे सिद्ध है कि पुरानी या नई किसी सभ्य जाति में कदाचित् विद्या की ऐसी उन्नति सहस्रों वर्ष तक नहीं रही जैसी हिन्दुओं में वैदिक समय में थी। जाति पांति बिलकुल न थी सब लोग एक जाति के थे और हंस कहलाते थे। जाति पाँति का विभाग रामायण और भारत के समय अच्छी तरह स्थिर हो गया। जो जिस पेशे का था वह उसी से न्यायपूर्वक अपनी जीविका करता था, लोगों में मत्सर और डाह का कहीं लेश न था। सच बोलना सच्चा बर्ताव प्रजा मात्र में सब ठैार प्रचलित था। माता, पिता, गुरु, आचार्य्य की सेवा सुश्रूषा सब लोग अपना कर्तव्य समझते थे। "मातृ देवोभव" "पितृदेवो भव" इत्यादि उपदेश उपनिषदों में ठैार ठैार दिये गये हैं। सबके ऊपर उस समय मातृ भूमि का प्रेम एक एक मनुष्य में व्याप्त था। "इमेदवा असपत्नम्"। "आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्" इत्यादि कई ऋचाये हैं जिनमें देश-प्रेम जल में डूबी सा उतरा रहा है। परमेश्वर से यज्ञ के अन्त में ऋत्विज लोग प्रार्थना करते हैं। ब्राह्मण हमारे यहाँ के ब्रह्म वर्चसी, क्षात्र धर्मनिपुण शूरवीर और बाण-विद्या में प्रवीण महारथी, शत्रु को अत्यन्त व्यथा पहुँचाने वाले हों, गायें ये बहुत दूध देने वाली हों। बैल बड़ा बोझा ढोनेवाले घोड़े बड़े वेगगामी हों। देश में स्त्रियाँ सदा अति पुत्रवती रहें। क्षत्री विजयी और रथ पर चढ़ने वाले शत्रु को जीतते रहें। हमारे इस यजमान के वीर पुत्र पैदा हो। मेघ समय समय पर पानी बरसें अकाल वृष्टि न हो। ओषधि, अन्न आदि बहुत फलें और पुष्टि वर्द्धक हों। देश में योग क्षेम अर्थात् जो अपने को अप्राप्त है उसके पाने का यत्न और जो प्राप्त है उसकी पूरी रखवारी रहे।

ऐसा ही यजुर्वेद में "आशुशिक्षावो" १७ ऋचाओं का एक अध्याय है जिस में ईश्वर से शत्रु पर विजय की प्रार्थना है, बाण या बरछी आदि शस्त्रों के चलाने के बड़े उत्तेजक मंत्र हैं, जिरहबख़्तर आदि पहिनने का कई प्रकार और मंत्र है उदाहरण के लिये दो एक यहाँ पर हम लिखते हैं—"उद्धर्षय मघवन्नायु धान्युत्सत्वानां मामकानां मनांसि" इन्द्र से प्रार्थना करता है "हे मघवन्! हमारे आयुधों को घोड़े, हाथी आदि सेना में समवेत जानवरों को तथा हमा
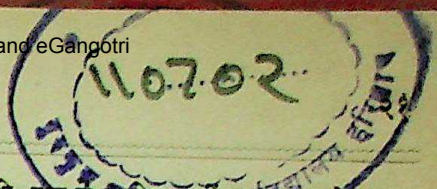
योद्धाओं को उद्धर्षित करो अर्थात् उनका उत्साह बढ़ाते रहो–

> अवसृष्टा हरापतं शरव्ये ब्रह्मशंसिते।
> नच्छाभित्रा अपद्यस्यमामीषां कंचनोच्छ्रियः॥

हे सखे! तू वैदिक मंत्रों से तीखी ग्रैार बाढ़ीदार कर दी गई है शत्रुग्रों पर जा गिर। उनमें से एक को भी न बचा रखना इत्यादि। इससे सिद्ध है कि कहाँ तक अपनी मातृभूमि को स्वाधीन रखने का उनको ध्यान था, प्रत्येक मनुष्य स्वाधीनता के बड़ा प्रेमी था अब के समान मुसलमान शासन में बहुत दिन तक रह स्वात्माभिमान ग्रैार आत्मगौरव सर्वथा मनु ने स्पष्ट लिखा है "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" प्रजा के शासन या हुकूमत करने का एक एक छोटे राजा को उत्साह था। चाहे वे एक ही दो ग्राम के स्वच्छन्द अधिकारी क्यों न हों। पाण्डवों ने कौरवों से सन्धि करने के वादे पर ५ ही गाँव माँगे ग्रैार कृष्णचन्द्र बिचवाई थे। पर दुर्योधन ने उसे भी स्वीकार न किया। उसे मालूम था कि पाण्डव बड़े प्रबल ग्रैार शासन में प्रवीण हैं सब का सब निगल बैठेंगे, युधिष्ठिर ने जिसे सम्राज बनाने का उत्साह था कहा है–"गृहेरहिराजानः स्वस्वियप्रियंकरऽस्तस्व सम्राजमासास्ते सम्राट् शब्दोहि कृच्छ्रभाक् अपने मन के माफिक शासन तथा अपना जिस में भला है ऐसे राजा तो घर घर में हैं। सम्राट् हो एकछत्रा पृथ्वी का शासन अति कठिन है, सम्राट् छोटे छोटे राजाओं को जीतने पर उन्हें सर्वथा नहीं निगल बैठता था वरन् उनसे एक बार कुछ कर की भाँति लेकर उन्हें अपने राज्य में फिर बहाल कर देता था, राजा जो युद्ध में मारा जाता था तो उसके पुत्र को उसके स्थान पर राजा कर देते थे, जरासन्ध के मारने पर उसके पुत्र सहदेव को कृष्ण ने राजतिलक किया था, यही कारण है कि राजधानी हस्तिनापुर के पास ही काशी कोशल विदेह चेदी सूरसेन पंचाल मत्स्य वृष्णि-भोज मालवा मद्र केकय गान्धार सिन्धु सौबीर कनौज कुशीनर आनर्त आदि बहुत से छोटे बड़े राज्य थे ग्रैार सब के सब अपने अपने राज्य में स्वच्छन्द शासन करते थे, इस में सन्देह नहीं रामायण के समय से भारत का समय बड़ी उन्नति का था ग्रैार जुदे जुदे राजाओं में अपना अपना बाहुबल था, वे अटूट संपत्ति के अभिमान में चूर थे, महाभारत के युद्ध में कौरव ग्रैार पाण्डव में किसी एक का पक्ष ले कट मरे।

राजा लोग बहुधा अपने मन से कोई काम नहीं कर डालते थे। किसी नई बात को राज्य में चलाने के लिये परिषद इकट्ठा करते थे ग्रैार राजधानी में माननीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की एक बड़ी सभा कर उनसे सलाह लेते थे, दशरथ ने जब रामचन्द्र को युवराज करना चाहा तो वशिष्ठ, जाबालि आदि ऋषियों को ग्रैार अयोध्या के महत्तरजन को एकत्र कर उनसे पूछा था। इस से सिद्ध है कि शासन में प्रजा की भी सम्मति ली जाती थी, दशरथ की मौत ग्रैार रामचन्द्र के वनवास पर फिर लोग इकट्ठे किये गये कि अब क्या करना उचित है।

कभी कभी अपने मन से लोग राजा चुनते थे वेणु जो बड़ा अन्यायी था उसे ऋषियों ने शाप दे मार डाला ग्रैार दस्युगण जब उपद्रव करने लगे तब पृथक लोगों ने राजा चुना तो सिद्ध हुआ कि राज-काज में प्रजा को पूरा अधिकार था। हम समझते हैं महाभारत का युद्ध न हुआ होता तो हिन्दुस्तान समस्त संसार का एकाधिपत्य रखता ग्रैार सभ्यता की अन्तिम सीमा को पहुँच जाता।

—:o:—

विवाह का इतिहास।

(ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा)

संसार में जीव दो प्रकार के मिलते हैं एक वे जो अंडे से उत्पन्न होते हैं दूसरे वे जो सदेह माता के पेट से निकलते हैं। पहिले को अंडज ग्रैार दूसरे को जरायुज वा पिंडज कहते हैं। अंडा एक प्रकार का अपूर्ण गर्भ कहा जा सकता है जिसमें बच्चे की प्रकृति रहती है ग्रैार जो कुछ काल तक

स्वाभाविक वा कृत्रिम उष्णता पाकर जन्तु की आकृति में परिणत हो जाती है। इन के प्रधान दो भेद होते हैं। किसी किसी जन्तु के अंडे तो स्वाभाविक सूर्य्य ऋतु आदि के कारण परिपक्क हो जाते हैं, और फिर उनमें से बच्चे स्वयं वा माता के तोड़ने से बाहर निकल आते हैं। ऐसे जंतुओं के भरण पोषण का भार उनकी माता पर कम रहता है। दूसरे वे जिनके अंडों को माता पिता कृत्रिम उष्णता पहुँचा कर उनमें से बच्चे निकालते हैं। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार प्रायः उनके माता पिता के सिर रहता है। जरायुजों की जरा वा आँवल भी एक प्रकार का अंडा ही है पर इसमें और अंडे में भेद इतना ही है कि इसके भीतर परिपक्क बच्चा और अंडे के भीतर बच्चों की प्रकृति होती है। जीवतत्त्व-वेत्ताओं का मत है कि आँवला अंडे ही का एक अवान्तर रूप है। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार उनके पिता पर नहीं होता, माता पर होता है।

संसार में जीवों की पर्य्यालोचना करने से इस बात का अनुमान होता है कि सिवाय उन जन्तुओं के जिन की माताओं को अपने बच्चों के भरण पोषण के लिए किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता पड़ती है और जन्तु दम्पति वा जोड़े के रूप में नहीं रहते। ऐसे जन्तुओं में स्त्रियों के कोई निश्चित पति नहीं होते किन्तु ऋतुकाल में कितने ही पुरुष उनसे समागम करने के लिए परस्पर लड़ते भिड़ते हैं और स्त्रियाँ भी स्वेच्छानुसार किसी को थोड़ी देर के लिए ग्रहण कर लेती हैं और फिर दोनों अपनी राह लेते हैं। फिर स्त्री काल पाकर बच्चे वा अंडे देती है। ऐसे जन्तुओं में स्त्री और पुरुष में विशेष प्रेम नहीं होता और जाति में दोनों का समान अधिकार होता है। समस्त पशु कीट पतंगादि, केवल कुछ पक्षियों को छोड़, इसी कोटि के अन्तर्गत हैं। ऐसे जन्तुओं को अदाम्पत्यक कहते हैं। दूसरे वे जन्तु हैं जिनमें स्त्री और पुरुष परस्पर प्रेम पूर्वक रहते हैं। स्त्री अंडे देती है और दोनों पति पत्नी उसे बारी बारी से लेते हैं। बच्चे निकलने पर वे दोनों केवल उनके बड़े होने तक उनका भरण पोषण करते हैं। ऐसे जन्तुओं में पति की सहायता बिना स्त्री अपने बच्चों का पालन पोषण करने में असमर्थ होती है। कबूतर, मैना पंडुक आदि पक्षी इसी कोटि के जन्तु हैं। इन्हें दाम्पत्यक कहते हैं।

दाम्पत्यक और अदाम्पत्यक जन्तुओं के भी बच्चों की संख्या के विचार से कई भेद हैं। एकवत्सक, द्विवत्सक और बहुवत्सक। द्विवत्सक और बहुवत्ससक यद्यपि अंडज और पिंडज दोनों में मिलता है तथापि एकवत्सक जन्तु पिंडजों के अतिरिक्त अंडजों में नहीं मिलते। यद्यपि कभी कभी एकवत्सक जन्तुओं की भी स्त्रियाँ दो वा दो से अधिक बच्चे दे देती हैं तथापि ऐसा बहुत कम हुआ करता है। एकवत्सक जन्तु गाय, भैंस, बंदर मनुष्य आदि हैं। इनमें मातायें अपने बच्चों का भरण पोषण बिना पति की सहायता के करती हैं।

इससे प्रकट हुआ कि मनुष्य भी अदाम्पत्यक और एकवत्सक जन्तुओं की कोटि के अंतर्गत है और उसकी स्त्री पति की सहायता के बिना शिशु पालन कर सकती है। यह अनुमान की बात नहीं किन्तु प्रत्यक्ष की बात है कि कितनी विधवाएँ अपने बच्चों को पति के मर जाने पर तथा सहस्रों वेश्याएँ अपनी संतति को (जिनके पिताओं का उसी तरह पता नहीं चल सकता जैसे कि गाय के बच्चे वा कुत्ते के बच्चे के पिता का) पति की सहायता के बिना ही पालती पोसती हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह कहने का साहस होता है कि बहुत पूर्वकाल में मनुष्यों में दाम्पतिक प्रथा नहीं थी।

मनुष्य की साम्प्रतिक सभ्यता उसे विवेकपूर्वक ग्रहण और त्याग-शक्ति द्वारा प्राप्त हुई है। यह सभ्यता किसी ऐसी भूमि से चली है जिसमें मनुष्य अपने सवर्गीय जन्तु बंदर आदि के समान ही था। पीछे अपने विवेक से उस भूमि से उन्नति करता

हुआ इस भूमि पर पहुँचा है जिस पर आज हम उसे देखते हैं ।

मनुष्य जब अपनी आदि भूमि पर था तब उसमें स्त्री-संवरण की प्रथा वही थी जो अन्य अदाम्पतिक पशु पक्षियों में अब तक पाई जाती है । अर्थात् वह जोड़े वा दम्पती के रूप में नहीं रहता था । केवल काम के वेग में वह स्त्रियों से समागम करता था जिसके पीछे उसका उस स्त्री से कोई संबन्ध नहीं रह जाता था । वह कामान्धता की दशा में माता भगिनी पुत्री आदि का विचार नहीं करता था और न स्त्रियाँ ही पिता पुत्र भाई आदि से समागम करने में हिचकती थीं । ऐसी दशा में कभी कभी पुरुष स्त्रियों पर आक्रमण भी करते थे उन्हें नोचते और दाँतों से काटते भी थे अर्थात् जिस प्रकार होता था अपनी पाशव वासना तृप्त करते थे । स्त्रियाँ भी अपने बचाव के लिये कभी कभी उन पर प्रहार भी करती थीं ।

यह प्रथा अब तक कितनी ही वन्य और असभ्य जातियों में पाई जाती है । चिपेवायन (Chippewayan) बुशमैन (Bushman) एसकिमाक्स (Esquimaux) अलेउट (Aleut) आदि असभ्य जातियों में अब तक दाम्पत्य धर्म का अभाव है । चिपेवायन जाति में स्त्री के लिये कुत्तों की तरह लड़ाई होती है, जो सबको मार गिराता है वह उसके साथ समागम करता है । बुशमैन लोगों में यह बात देखी जाती है कि सभी पुरुष परस्पर अनुमति करके संभोग करते हैं । फिर यदि उसी बीच कोई दूसरा पहुँचा तो वह बलपूर्व उसे छीन लेता है । इसकिमाक्सों में पशुवत् बर्ताव है । आज एक स्त्री एक के पास है तो कल दूसरे के पास और परसों तीसरे के पास । यही अवस्था अलेउटों की भी है । किसी किसी जाति में बहुत सी स्त्रियों में एक पति हथनियों के झुंड में एक हाथी की तरह रहता है । टूपिस आदि में यह प्रथा अब तक मिलती है । चेपेवायन, कादियाक (Kadiak) आदि जातियों में अपनी माता भगिनी और कन्या से संभोग करने की प्रथा है ।

अभ्यास अवस्था में यही प्रथा प्राचीन आर्यों में थी, महाभारत में स्पष्ट खोलकर कहा गया है:—

पुराणमृषिभिर्दृष्टं पुरा धर्म्मविमहात्मभिः ।
अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने ॥
कामाचारविहारिण्या अतन्त्राश्चारुहासिनी ।
तासां व्युच्चरमानानां कौमारात्सुभगे पतीन ॥
नाधर्मोभूद्वरारोहे सहि धर्मः सनातनः । आदि १२३ अ०

अर्थात् "प्राचीन काल में स्त्रियाँ नंगी रहती थीं वे स्वतन्त्र और कामाचार-विहारिणी होती थीं और बिना व्याह ही अनेक पुरुषों से समागम करती थीं । उनका यह कृत्य उस समय अधर्म नहीं माना जाता था" वेदों में भी देखते हैं तो हमें इस वाक्य की पुष्टि मिलती है । ऋग्वेद में एक स्त्री का वाक्य इस प्रकार है:—

उपोपमे परामृष मामेदभ्राणि मन्यथ ।
सर्वाहमस्मि लोमशा गांधारीणामिवाविका ॥

आवो आवो मेरे साथ परामर्श करो मुझ में कोई न्यूनता न समझो मैं गांधार की भेड़ की तरह सब बालों से ढकी हूँ ।

ऋग्वेद मंडल दश के यमयमी सूक्त तथा 'यत्र-पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' इत्यादि वाक्यों से चाहे वे उपमा वा रूपक ही क्यों न माने जायँ कम से कम इस बात का पता तो अवश्य चलता है कि आर्य्यों की अवस्था किसी न किसी समय में ऐसी थी जिसे हम पाशव कह सकते हैं ।

मनुष्यों की सभ्यता का मूल मन्त्र 'योग' है जिसके लिये वेदों में सैकड़ों जगह साहकारी क्षेम के साथ 'योगः क्षेमो न कल्पंताम्' इत्यादि प्रार्थना की गई है । उपयोगी वस्तुओं को कालांतर में उपयोग में लाने के लिए संग्रह करना 'योग' कहलाता है । बरसात आदि के दुर्दिनों में जब लोगों ने देखा कि कई दिन बिना अन्न रहना पड़ता है तब उन्होंने वस्तुओं का संग्रह करना प्रारंभ किया । इसी संग्रह

के लिये उन्हें घर बनाने की आवश्यकता पड़ी और अपने गृह कार्य्य की सहायता के लिये उन्हें किसी अन्य की आवश्यकता पड़ी। ऐसे काम के लिये उन्होंने किसी स्त्री को चुनना प्रारंभ किया, स्त्रियों को भी इसमें उतना ही सुबीता था। पर कभी कभी लोग किसी स्त्री को फुसला कर बलात् उठा लाते वा लड़ कर छीन भी लाते थे और वह तब तक उनके साथ रहती थी जब तक कोई दूसरा आकर उसे छीन नहीं ले जाता था। धीरे धीरे इन लोगों की सभ्यता बढ़ती गई और गृह-कार्य्य के लिये स्त्री का होना परमावश्यक माना जाने लगा। अतः यह प्रथा चली कि एक स्त्री किसी पुरुष के घर रहा करे पर स्त्री की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। महाभारत में इस प्रकार के कितने ही उदाहरण मिल सकते हैं। दीर्घतमस ऋषि का उदाहरण इसके लिये एक अच्छा प्रमाण है जिसका हाल ऋग्वेद मंडल १ में लिखा है। उस समय आर्य्यों में वर्णधर्म स्थापित हो चला था और यही गृह-प्रबंध बढ़ते बढ़ते प्रजापतित्व तक पहुँच गया। ये लोग गो आदि पशु पालना तथा दूध, दही, मक्खन आदि बनाना जान गये थे। कन्या को ये लोग संभुक्त स्त्री की अपेक्षा घर में लाना अच्छा जानते थे। अतः प्रायः कन्या के लिये ये लोग मार पीट भी करते थे। अथर्ववेद में इस प्रकार के झगड़ों का निबटेरा इस प्रकार लिखा है—

उत यत्पतयो दश स्त्रियाश्चेदब्राह्मणाः।
ब्रह्म चेद्धस्तमग्रभीत्स एक पितुरेकधा॥

यदि किसी स्त्री के लिये दश अब्राह्मण पुरुष पति होने के लिये विवाद करते हों और ग्यारहवाँ ब्राह्मण पति हो तो ब्राह्मण ही अकेला उसके पति होने का अधिकारी है।

(शेष आगे)

—:०:—

गोस्वामी तुलसीदास।

[ज्येष्ठ १९६९ की मर्यादा में श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण ने हिन्दीनवरत्न पर अपने विचार प्रगट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवनसम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक निर्धारित बातों में बहुत उलट फेर कर देती हैं। यह आशा थी कि इस लेख पर हिन्दी के विद्वानों और गोस्वामी जी के भक्तों का ध्यान जायगा और इस विषय पर विचार कर सिद्धांत स्थिर किए जाँयगे परन्तु अभी तक किसी महाशय ने इस सम्बन्ध में कहीं कुछ लिखने की कृपा नहीं की है अतएव उस लेख का वह अंश जो गोस्वामी जी की जीवन-घटनाओं से संबन्ध रखता है पुनः नीचे प्रकाशित किया जाता है और यह आशा की जाती है कि इन में दी हुई बातों पर विशेष रूप से विचार किया जायगा।

सम्पादक।]

गोस्वामी तुलसीदास जी।

गोस्वामी जी रचित अलौकिक ग्रन्थों में अनेकानेक विषय समन्वित हैं। प्रथम "रामचरितमानस" ही को देखिये, इसमें कैसे कैसे गूढ़ विषय सन्निवेशित हैं। ग्रन्थकार का वचन है—

श्लोक।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा,
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

चौपाई।

रघुपति "महिमा अगुन" अबाधा।
बरनव सोई बर बारि अगाधा॥
"राम सीय जस" सलिल सुधा सम।
"उपमा" बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइन सघन चारु "चौपाई"।
जुगुति मंजु मति सीप सुहाई॥

"छन्द' 'सोरठा' सुन्दर दोहा।
सोई बहु रङ्ग कमल कुल सोहा॥
'अरथ' अनूप सुभाव 'सुभासा'।
सोइ पराग मकरन्द सुबासा॥
सुकृत पुञ्ज मंजुल अलि माला।
'ज्ञान विराग विचार मराला॥
धुनि 'अवरेव' 'कवित' 'गुन' 'जाती'।
मीन मनोहर ते बहु भाँती॥
'अरथ' 'धरम' 'कामादिक' चारी।
कहब 'ज्ञान' 'विज्ञान' विचारी॥
'नवरस' 'जप' 'तप' 'जोग' 'विरागा'।
ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम 'गुन गाना'।
ते विचित्र जल विहँग समाना॥
संत सभा चहुँ दिसि अँवराई।
सरधा रितु बसन्त सम गाई॥
'भगति निरूपन' विविध विधाना।
'छमा' 'दया' 'दम' लता बिताना॥
'सम' 'जम' 'नियम' फूल फल ज्ञाना।
हरि पद रति रस वेद बषाना॥

पुनः

चैापाई।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बषानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥
'भगति' 'ज्ञान' 'विज्ञान' विरागा।
पुनि सब बरनहु सहित विभागा॥
ग्रैारो राम रहस्य अनेका।
कहहु नाथ अति विमल विवेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहि होई।
सोउ दयाल राषहु जनि गोई॥

ग्रन्थकार-रचित मानस की आरती में लिखा है—

चारों वेद पुरान अष्ट दश,
षट् सास्त्र सदग्रन्थन्ह को रस।
मुनिजन धन सन्तन को सर्वस,
सार अंस संमत सबही की।

सारार्थ यह कि रामचरितमानस नाना पुराण, वेद, शास्त्र ग्रैार रामायणादि-कथित सिद्धान्त ग्रैार विषयों से विभूषित हैं तथा अन्यत्र से भी इसमें अनेकानेक विषय सन्निवेशित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित विषय विशेषतर कथित हैं—

साहित्य—भाषा, छन्द, अर्थ, उपमा, धुनि, अवरेव, काव्यगुण, जाति, नवरस, युक्ति, अलंकार, भावादिक।

दर्शन—ज्ञान, विज्ञान, तत्त्वविचार, भक्ति, कर्म, योग इत्यादि।

चतुर्वर्ग—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।

चरित—सगुण, निर्गुण, लैाकिक, अलैाकिक।

पुनः उपर्युक्त वचनों के अनुसार यह रामचरितमानस चारों वेद, छग्रों शास्त्र, अठारहों पुराण तथा अनेकानेक सद्ग्रन्थों का सारतत्त्व है। इसी कारण यह मुनिजनों का धन ग्रैार सन्तों का सर्वस्व है। इसके अतिरिक्त इसमें राजनीति, साधारण नीति, देशभक्ति, पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृभक्ति, पतिभक्ति, चरित्र-कथन इत्यादिक अनेकानेक विषय विभूषित हैं। श्रीगोस्वामीजी रचित अधिकांश ग्रन्थों में ये विषय व्यास समास रीति से आवश्यकतानुसार कथित हैं। अब आगे चलकर देखिये इन विषयों की समालोचना कहाँ तक यथेष्ट अनुसन्धानपूर्वक मिश्र महाशयों ने की है ग्रैार कहाँ तक इस अलैाकिक ग्रन्थ की अलैाकिकता प्रतिपादन की है। आरम्भ में मिश्र महाशयों द्वारा लिखित गोस्वामीजी के जीवनचरित की ग्रोर ध्यान दीजिये। इस विषय में डाकृर ग्रियर्सन ने जो कुछ अपने "नोटस् ग्रान तुलसीदास" नामक अँगरेज़ी निबन्ध में लिखा है उसी को नागरीप्रचारिणी सभा के महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी प्रभृति पाँच सदस्यों द्वारा सम्पादित रामचरितमानस की भूमिका में दोहराया गया है ग्रैार उसी आधार पर मिश्र महाशयों ने भी संक्षिप्त जीवनी इस निबन्ध में लिखी है। इस विषय

में अनुसन्धान करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ में हुआ था (पृष्ठ २) परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। डाकृर ग्रियर्सन ने लिखा है—

"The most trustworthy account states that he was born in Samvat 1589 (A. D. 1532) so that he must have been 42 years of age when he commenced writing the Ramayana.

तात्पर्य्य यह है कि अत्यन्त विश्वसनीय कथाओं से ज्ञात होता है कि उन्होंने (गोस्वामीजी ने) संवत् १५८९ में जन्म लिया था इससे वह ४२ वर्ष के रहे होंगे जब उन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया परन्तु किस आधार पर यह संवत् निश्चय हुआ सो कुछ नहीं लिखा। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी की सुनी सुनाई कहावतों से संवत् १५८९ है जिसे डाकृर ग्रियर्सन ने भी लिखा है....................इसलिए जन्म संवत् १५८९ प्रायः ठीक जान पड़ता है"। इन्हीं कही सुनी कहावतों के अनुसार मिश्र महाशयों ने भी वही संवत् लिख मारा, वास्तविक बात का ज़रा भी अनुसन्धान नहीं किया।

श्रीगोस्वामीजी की शिष्य परम्परा के चैाथे पुश्त में काशीनिवासी विद्वद्वर श्रीशिवलाल पाठकजी हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत-भाष्य तथा व्याकरणादि विषय पर भी अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी "मानस-मयंक" नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा हैः—

दोहा।

मनँ ऊपर शरँ जानिये, शर पर दीन्हें पंक।
तुलसी प्रगटे रामवत, राम जन्म की टेक॥

सुने गुरू ते बीच शर, सन्त बीच मनँ जान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

अर्थात् १५५४ सं० में गोस्वामीजी प्रगट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरु से कथा सुनी। पुनः चालिस वर्ष की अवस्था में सन्तों से भी वही कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस की रचना आरम्भ किया। उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था १६३१ संवत् में थी और १६८० संवत् में परमधाम सिधारे। एवं प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३१ संवत् हुआ। संवत् १५५४ वाँ साल मिला कर अठ-हत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामीजी की थी जब मानस आरम्भ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामीजी परमधाम सिधारे।

मिश्र महाशयों ने जो यह अनुमान किया है कि दस-बारह वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी ने राम-कथा गुरु से सुनी होगी सो सर्वथा अमूलक और अमाननीय है क्योंकि स्वयं ग्रन्थकार कहते हैंः—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

दस-बारह वर्ष की अवस्था अचेत नहीं कहलाती, इस अवस्था में सर्व प्रकार सचेतत्व बना रहता है सो अचेत की कैान कहे मूल में तो अति अचेत लिखा है, अतः १०, १२ वर्ष की अवस्था कदापि माननीय नहीं।

मिश्र महाशय कहते हैं कि "इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु वैरागी होने पर इनका नाम तुलसीदास हुआ। दूसरी आपत्ति में मुझको यह कहना है कि आप लोगों ने कैसे जाना कि गोस्वामी जी का विवाह पाठकों के यहाँ हुआ था? यह आपत्ति तो जान बूझ कर बुलाई गई है।

गोस्वामी जी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुबरदास जी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम "तुलसीचरित" है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं (१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा। इनमें भी अनेक

उपखण्ड हैं। इस ग्रन्थ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है "चौ० एक लाख तैं तीस हज़ार, नौसै बासठ छन्द उदारा" यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवनचरित विषयक मुख्य मुख्य वृत्तान्त नित्य प्रति के लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीरामचरितमानस के टक्कर की है और यह "तुलसीचरित" बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहद् ग्रन्थ के 'अवध खण्ड' में लिखा है कि जब श्रीगोस्वामी जी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में एक रघुनाथ नामक पण्डित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहाः—

गोस्वामीजी का वचन :—

चौपाई।

काल अतीत यमुन तीरिनी के।
रोदन करत चलेहुँ मुष फीके॥
हिय विराग तिय अपमित बचना।
कछ मोद बैठो निज रचना॥
खींचत त्याग विराग बटोही।
मोह गेह दिसि कर सत सोही॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाही।
स्पन्दन वपु खेत बन माही॥
तिनिहुँ दिशा अपथ महि काटी।
आठ कोस मिसिरन की पाटी॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला।
बैठेहुँ देषि भूमि सुविसाला॥
पण्डित एक नाम रघुनाथा।
सकल शास्त्र पाठी गुण गाथा॥
पूजा करत डरत मैं जाई।
दण्ड प्रनाम कीन्ह सकुचाई॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना।
बैठि गयऊँ महितल भय माना॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा।
गृह वृत्तान्त पूछब मन भावा॥

* * * *

जुवा गौर शुचि गढ़नि विचारी।
जनु विधि निज कर आपु सँवारी॥
तुम विसाक आतुर गति धारी।
धर्मशील नहि चित्त विकारी॥
देखत तुम्हहिँ दूरि लगि प्रानी।
अद्भुत सकल परस्पर मानी॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे।
किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाही।
किधौं मूढ़ पुर वास सदाही॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा।
चले भागि तुम तजि वह ठामा॥
तब यात्रा विदेश कर जानी।
विदरि हृदय किमि मरे अयानी॥
चित्त वृति तुव दुष मह ताता।
सुनत न जगत व्यक्त सब बाता॥
मोते अधिक कहत सब लोगा।
अजहुँ जुरे देखत तरु योगा॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी।
तुम्हहिं धाय नहि गहे अनारी॥
जाति पांति गृह ग्राम तुम्हारा।
पिता पीठि का नाम अचारा॥

दोहा।

कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गद गद हृदय, सात्विक भयो महान।
भुवि नष रेष लग्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

चौपाई।

दया शील बुधवर रघुराई।
तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बटु तोष देवाई।
बिसे बीस सुत मम समुदाई॥

लखौं चिन्ह मिश्रन सम तोरा ।
बिसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा ॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा ।
मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा ॥
धीरज धरि मैं कथन बिचारा ।
पुनि बुध कीन्ह विविध सतकारा ॥
परशुराम परपिता हमारे ।
राजापुर सुख भवन सुधारे ॥
प्रथम तीर्थयात्रा मह आए ।
चित्रकूट लखि अति सुख पाए ॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनि वासा ।
फिरे सकल प्रमुदित गत आसा ॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई ।
रहे रैनि तहँ अति सुख पाई ॥
परशुराम सोये सुख पाई ।
तहँ मारुतसुत स्वप्न देषाई ॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा ।
उत्तर भाग सुभूमि ललामा ॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका ।
तप समूह मुनि जन्म विवेका ॥
दम्पति तीरथ भ्रमे अनेका ।
जानि चरित अद्भुत गहि टेका ॥
दम्पति रहे पक्ष एक तँहवाँ ।
गये कामदा शृङ्ग सु जँहवाँ ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई ।
सीतापुर नृप के ढिग आई ॥
राजापुर निवास हित भाषा ।
कहे चरित कुछ गुप्त न राखा ॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी ।
मिश्र परशुरामहिं नृप आनी ॥

दोहा ।

अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु ।
बहु सन्माने भूप तँह, कहि द्विज मूल निवासु ॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार ।
राज मंझवली जानिये, कसया ग्राम उदार ॥
राजधानि ते जानिये, क्रोश विंश त्रय भूप ।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यो बौध स्वरूप ॥

चौपाई ।

बौध स्वरूप पेंड ते भारी ।
उपल रूप महि दीन बलारी ॥
जैनाभास चल्यो मत भारी ।
रक्षा जीव पूर्ण परिचारी ॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पण्डित ।
क्षत्री धर्म सकल गुण मण्डित ॥
मैं पुन गाना मिश्र कहावा ।
गणपति भाग यज्ञ मंह पावा ॥
मम बिनु महावंश नहि कोई ।
मैं पुनि बिन सन्तान जो सोई ॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा ।
तिमि सम पत्नि जानि मति भ्राजा ॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका ।
तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका ॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा ।
प्रगट स्वप्न बहु विधि दरसावा ॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई ।
राजापुर निवास की ताई ॥
निर्धन बसब राजपुर जाई ।
वृक्ष कलिन्दि तीर सचुपाई ॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी ।
बसब न होहि जहाँ परितापी ॥
अति आदर करि भूप बसावा ।
बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा ॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी ।
जिनके प्रगट शम्भु गिरिवासी ॥
परशुराम काशी तन त्यागे ।
राम मन्त्र अति प्रिय अनुरागे ॥
शम्भु कर्णगत दीन सुनाई ।
चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई ॥
तिनके शङ्कर मिश्र उदारा ।
लघु पण्डित प्रसिद्ध संसारा ॥

दोहा।

परशुराम जू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन॥
वचन सिद्धि शङ्कर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भये शिष्य मति लीन॥
शङ्कर प्रथम विवाह तें, बसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निशि दिन ज्ञान प्रसन्न॥

चौपाई।

जोषित मृतक कीन अनु व्याहा।
तातें मोरि साख बुध नाहा॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता।
रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह मंह जाई।
लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी।
प्रथम पुत्र को नाम मुरारी॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता।
मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा।
तातें लघु महेस गुण धामा॥
कर्म काण्ड पण्डित पुनि दोऊ।
अति कनिष्ठ मङ्गल कहि सोऊ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा।
तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे।
जन्म पत्र मम देखि विचारे॥
हस्त प्रास पण्डित मतिधारी।
कह्यौ बाल होइहिं व्रतधारी॥
धन विद्या तप होय महाना।
तेजरासि बालक मतिमाना॥
भरतखंड एहि सम एहि काला।
नहि महान कोउ परमति शाला॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुबाई।
बचन सिद्ध खलु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सितदेहा।
बुध मङ्गल भाग्यस्थल गेहा॥

तातें यह विदेह सम जाई।
अति महान पदवी पुनि पाई॥
पञ्चम केतु रुद्र गृह राहू।
जतन सहस्र वंश नहि लाहू॥

दोहा।

राज योग दोउ सुख सुपहि, होंहि अनेक प्रकार।
अद्वै दया मुनीस कोउ, लियो जन्म बरबार॥

चौपाई।

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी।
तुलारोह तिय कहि अभिलाषी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी।
कीन व्याह सुन्दरी विचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे।
पिता मातु मम सहित निसारे॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा।
षोडस मनुज रहे एक साथा॥

☼ ☼ ☼ ☼

बानी विद्या भगिनि हमारी।
धर्म शील उत्तम गुण धारी॥

☼ ☼ ☼ ☼

दोहा।

अति उत्तम कुल भगिनि सब, व्याही अति कुशलात।
हस्त प्रास पण्डितन्ह गृह, व्याहे सब मम भ्रात॥

चौपाई।

मोर व्याह द्वै प्रथम जो भयऊ।
हस्त प्रास भार्गव गृह ठयऊ॥
भई स्वर्गवासी दोऊ नारी।
कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी॥
तृतिय व्याह कञ्चनपुर माही।
सोइ तिय वच विदेश अवगाही॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई।
मात भ्रात परिवार छोड़ाई॥
कुल गुरु कथन भई सब सांची।
सुख धन गिरा अवर सब कांची॥
सुनहु नाथ कञ्चनपुर ग्रामा।
उपाध्याय लछिमन अस नामा॥

तिनकी सुता बुद्धिमति एका ।
धर्मशील गुनपुञ्ज विवेका ॥
कथा-पुराण-श्रवण बलभारी ।
अति कन्या सुन्दरि मति धारी ॥

दोहा ।

मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह ।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम व्याह ॥

☼ ☼ ☼ ☼

चौपाई ।

निज विवाह प्रथमहि करि जहवां ।
तीन सहस्र मुद्रा लिय तहवां ॥
षट् सहस्र लै मोहि विवाहे ।
उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तरभागस्थ सरवार देश में मधौली से तेइस कोस पर कसेयां ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था और यहीं के वे निवासी थे। एक बार वह तीर्थ यात्रा के लिए घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे, वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारे चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर के परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रान्त के राजा के यहाँ गये और हनुमानजी की आज्ञा को याथातथ्य राजा से कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान जान कर अपने साथ तीखनपुर अपनी राजधानी में ले आये और बहुत सम्मानपूर्वक राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुआ इससे वह बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और राजापुर लौट आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर इन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रगट की परन्तु राजा ने इनके मत का अनुयायी हो कर बड़े सम्मानपूर्वक इनको रक्खा और भूमिदान दिया परन्तु इन्होंने ग्रहण नहीं किया। इनके शिष्य मारवाड़ी बहुत थे उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अन्तकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए जिनको वाकसिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्याएं हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए (१) सन्त मिश्र, (२) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महा पुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे (१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल।

यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्तचुड़ामणि गोस्वामी जी हैं। इनके कुल गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहिनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या थीं।

गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा व्याह कञ्चनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ, इस विवाह में इनके पिता ने छः हज़ार मुद्रा लिये थे। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए।

अब तो यह निश्चय हुआ कि गोस्वामी जी सरवरिया ब्राह्मण गाना के मिश्र थे, इनके पिता का नाम मुरारी मिश्र था और इनका नाम तुलाराम था और ये अभुक्त मूल में नहीं जन्मे थे, इनके पिता माता इनके विरक्त होने के समय जीवित थे। मिश्र महाशयों का यह कथन कि ये दाने दाने को विल-

बिलाते फिरते थे बिलकुल बेबुनियाद है। न मालूम मिश्र महाशयों पर क्या तीसरी आपत्ति आई जिससे विवश होकर वे कवितावली के इस पद के सहारे ज़बरदस्ती दरिद्रता गोस्वामी जी के माथे मढ़ते हैं—

"बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हैं चारि फल चारिहुं चनक कों"।

गोस्वामी जी ने गीतावली में भी कहा है—

"हुतो ललात कृस गात खात मोद पाइ, कोदो कनै"—वहाँ चने के चार दाने' चारों फल सदृश कहा, यहां कोदो के कण ही से मोद प्राप्ति कही—भला यह तो विचारिए, इन दोनों वचनों में सत्य कौन है? पारमार्थिक ऐश्वर्य की अपेक्षा संसारी ऐश्वर्य सर्वदा तुच्छ है। इसी कारण गोस्वामी जी ने संसारी ऐश्वर्य को चने का चार दाना और कोदो के कण सदृश कहा है, ये पद उनकी दरिद्रता के बोधक नहीं हैं। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था और तारक नामक पुत्र भी हुआ था। पर वह बचपन ही में स्वर्गवासी हुआ, यह बात भी असार सिद्ध हो ही चुकी। प्रायः सभी इस सोरठा के आधार पर "बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि" गोस्वामी जी को नरहरिदास जी का शिष्य कहते हैं परन्तु यह बात सत्य नहीं है गोस्वामीजी श्री रामदासजी के शिष्य थे।

देखिये, जोवनचरित में लिखा है:—

चौपाई।

तब गुरु रामदास पहचानी।
राम यज्ञ बिधि श्रुति मत ठानी॥
द्वादस दिन फलहार कराई।
दिये मौनव्रत मेरी तांई॥
राम बीज जुत मन्त्र जपावा।
कष्ट साध्य सब नियम करावा॥
बीज मन्त्र तुलसी के याना।
लिखि त्रिकाल प्यावत हित झाना॥

इन्हीं श्री रामदास जी से गोस्वामी जी ने विद्या भी प्राप्त की।

चौपाई।

पुनि भारती यज्ञ मम हेता।
किया परम गुरुदेव सचेता॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रंथा।
वसु अध्याय शब्द कर पंथा॥
दीक्षित ग्रन्थ समग्र विचारी।
पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी॥
कौस्तुभादि मह भाष्य विचारा।

❊ ❊ ❊ ❊

बरष एक मह शब्दहिं जोई।
पुनि षट्शास्त्र वर्ष मह गोई॥
सकल पुरान काव्य अवलोकी।
तीन वर्ष मँह भयो विशोकी॥

—:०:—

अफ़गानिस्तान।

(ले० श्रीमती हेमंत कुमारी देवी।)

अफ़गानिस्तान—इसके उत्तर में रूस राज्य, पश्चिम में जुलफ़कर और पूर्व में लेक विक्टोरिया है। यही अफ़गानिस्तान का उत्तर सीमान्त है, पूर्व सीमान्त प्रदेश चित्राल से लगा हुआ है। दक्षिण में बिलूचिस्तान है।

अफ़गानिस्तान में कई पर्वत हैं जिनमें हिन्दूकुश, कोह बोबा और सफ़ेद कोह प्रधान हैं। आक्सस हेलमंद और काबुल नदी अफ़गानिस्तान में होकर बहती हैं। अफ़गानिस्तान में नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं जिनमें से देवदारु, बादाम और अखरोट के पेड़ सब स्थानों में देख पड़ते हैं। झाऊ, तूत, एप्रिकाट, सेव, नाशपाती, शफ़ालू के वृक्ष भी बहुत होते हैं। व्याघ्र और चीते, हरीरुद और मुर्गाब जंगलों में मिलते हैं। व्याघ्रों की संख्या कम है परन्तु

चीते बहुत अधिक हैं। लकड़बग्घा, हैना, और सियार प्रत्येक स्थान में देख पड़ते हैं। प्रत्येक नदी में ऊदबिलाव पाये जाते हैं। कन्धार में फ़ारस का लिंकस भी देख पड़ता है। जंगली गधे भी बहुत होते हैं। धूसर वर्ण के रीछ और जंगली कुत्ते हिन्दूकुश में बहुत हैं और यहाँ काले रीछ, मारखोर, उड़ियाल आदि विचरते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में साँपों की संख्या अधिक है। डेढ़ फ़ुट लम्बे एक प्रकार के विषविहीन नीलवर्ण साँप देख पड़ते हैं। ये चीटियाँ खाकर जीवन धारण करते हैं। रेगिस्तान में हाइयर नामक एक प्रकार का विषैला सर्प होता है जिसके सींग होते हैं। उसका काटना प्राणघातक होता है। सुतरमार नामक एक प्रकार का स्लेट के रंग का सर्प होता है जिसका काटना भयानक होने पर भी उतना घातक नहीं है। गोखुरा अथवा फनारी साँप अफ़ग़ानिस्तान के उष्ण प्रदेशों में मिलता है।

अफ़ग़ानिस्तान शीत प्रधान देश है। ग़ज़नी में सरदी के तीन महीने में ७२८० फ़ीट बर्फ़ गिरती है। उस समय निवासी अपना घर बार छोड़ दूसरी जगह चले जाते हैं। हज़ाराजात में भी ऐसी ही सरदी पड़ती है। हिरात में इससे कम सरदी होती है। ग्रीष्म ऋतु में गरमी भी अधिक होती है। गरमियों में काबुल की उष्णता ९०°। १००° और कन्धार में ११०° तक होती है।

इतिहास।

सिकंदर के युद्ध का हाल सब पर विदित है। इसके मरने पर सिल्यूकस निकेटर पूर्व प्रदेशों का राजा हुआ। इस समय काबुल अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त के अधिकार में था। इसके पीछे पार्थियन और शकों का आविर्भाव हुआ। तब यूची नामक एक जाति ने आकर यूनान और पार्थियन राज्य पर आक्रमण कर उन्हें हरा दिया। इस समय कुशन वंशी कनिष्क का राज्य पूर्व में बनारस और दक्षिण में मालवा तक फैला हुआ था। कनिष्क बौद्धधर्मावलम्बी था और उसने अनेक स्तूप बनवाये थे। कनिष्क की मृत्यु के पीछे उसका राज्य लुप्त हो गया। तब तुर्की लोगों ने काबुल पर अधिकार जमाया। चीनी यात्री हुएनशांग ने तुर्कों को बौद्धधर्मावलम्बी पाया था। तुर्कों के अनन्तर काबुल पर हिन्दू राजाओं का अधिकार हुआ। ग़ज़नवी की लड़ाई में विजयलक्ष्मी ने हिन्दुओं का साथ छोड़ दिया।

नेहावंद की लड़ाई में अरबों ने विजयी होने पर अशिनद लोगों का फ़ारस का राज्य नष्ट हो गया और अरबों ने अफ़ग़ानिस्तान की पश्चिमी सीमा तक दख़ल जमा लिया। फ़ारस के सफ़ारिद लोगों ने हिरात और बलख़ में राज्य स्थापित किया। फिर सामाजिक गणों का अभ्युदय हुआ। ये लोग भी ग़ज़नी के तुर्कों से पराजित होकर भाग गये। ग़ज़नवियों के प्रधान का नाम महमूद था। यह ९९८–१०३० ई० तक अफ़ग़ानिस्तान का राजा रहा। भारत भी इसके आक्रमण से नहीं बचा। ग़ज़नी में इसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया और दान से मुग्ध होकर फ़िरदोसी आदि कविगण उसके राज्य में आये। इसी के राजत्वकाल में ग़ज़नी क़िला, उच्चअट्टालिकाएं मसजिद और उत्तम उत्तम मार्गों से शोभित हुई थी। महमूद के मरने पर अफ़ग़ानों के विप्लव से उसका राज्य नष्ट हो गया।

अब ग़ोरी वंश का अभ्युदय हुआ। इसमें प्रसिद्ध राजा शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी था। इसने भारत की उत्तर सीमा पर अधिकार कर दिल्ली में मुसलमानों का राज्य स्थापित किया। इसकी मृत्यु के अनन्तर इसके तुर्क प्रतिनिधि ने अपने को स्वाधीन बनाया। इसका राज्य 'गुलाम' नाम से ख्यात है। थोड़े दिनों पीछे मोग़लों ने चंगेज़ख़ाँ के सेनापतित्व में आकर ग़ुलाम घराने पर हमला किया। तदनन्तर नरपिशाच तैमूरलंग आया। दिल्ली का ध्वंस इसने किया। इसके मरने पर इसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया। इसके वंशधर इस समय हिरात, बलख़, ग़ज़नी, काबुल और कन्धार में राज्य करते थे। बदख़्शाँ काबुल और कन्धार का राजा बाबर तुर्कों

और अफ़गानों को लेकर भारत में आया और दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को पानीपत में पराजित कर दिल्ली का अधिकारी बन बैठा। बाबर अधिक दिन तक राज्य न कर सका। उसका लड़का हुमायूं शेरशाह से हार कर भागा। बाबर के पोते अकबर ने १५५६ से १६०५ ई० तक शासन कर मोग़ल राज्य को सुदृढ़ कर दिया। अब अफ़गानी लोग किसी गिनती में न रहे। इसके बाद उज़बग लोगों ने बदख़शाँ पर अधिकार कर लिया। फ़ारस वंशी शर्फ़ावद लोगों ने हिरात और कन्धार पर अधिकार किया। गज़नी और काबुल मुग़लों के हाथ में आए।

१७०८ ई० में कन्धार के गिलज़ाइयों ने फ़ारसियों को पराजित किया और कई वर्ष बाद फ़ारस के शरफ़ाबद लोगों को भगा दिया। अबदाली (दुरानी) हिरात और खुरासान के शासक बन गये। उक्त दोनों जातियों को नादिरशाह ने फ़ारस से भगा दिया। सारा अफ़गानिस्तान और मुग़ल साम्राज्य अब नादिरशाह के हाथ में आया। इसने दिल्ली में भयानक क़त्ल-आम किया। १७४७ ई० में नादिरशाह गुप्त शत्रु के हाथ से मारा गया। इस समय अफ़गानिस्तान अबदाली वंश की सादोज़ाई जाति के नेता अहमद-शाह की अधीनता में स्वतंत्र हो गया। अहमदशाह का राज्य खुरासान, कश्मीर, सिंध और पंजाब तक विस्तृत था। १७६१ ई० में अहमदशाह ने पानीपत में मरहट्टों को हराया। इसी पराजय से मानों अँगरेज़ी राज्य का सूत्रपात हुआ।

अहमदशाह की मृत्यु के पीछे उनकी तैमूरवंशी सन्तान सिंहासनारूढ़ हुई। इसने २० वर्ष तक राज्य किया। इस समय पुराने राज्य के बलख़ और अफ़गान-तुर्किस्तान के और और स्थान भी स्वाधीन हो गये और दुर्रानी लोग उन स्थानों का राज्य खो बैठे। खुरासान और कश्मीर में भी इस समय विद्रोह फैला। १७९३ ई० में तैमूर का देहान्त हुआ। उसका पुत्र जमान राज्याधिकारी हुआ। उसके राजत्व में पंजाब का पूर्व प्रदेश राज्य से निकल गया। १७९९ ई० में तैमूर के महमूद नामक एक दूसरे पुत्र ने राज्य पर अधिकार जमा लिया। १८०३ ई० में उसके भाई शुजा मिरज़ा ने षडयंत्र रच के राज्य को अपने हस्तगत किया। यह 'शाह शुजा उलमुल्क' नाम से ख्यात हुआ। १८०९ ई० में फ़ारसः में नेपोलियन के षडयंत्र के कारण स्टुअर्ट एलफ़िनस्टन शाह शुजा के निकट प्रतिनिधिस्वरूप भेजे गये परन्तु उनसे कुछ नहीं बन पड़ा। इस समय अफ़गानिस्तान अन्तरविप्लव से पूर्ण था। शाहशुजा का शासन कोई पसन्द न करता था। कश्मीर में भी विद्रोह दमन के लिये शाहशुजा को लड़ाई लड़नी पड़ी। उपयुक्त समय देख राज्यच्युत महमूद शाह ने शाहशुजा पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में शाहशुजा पराजित होकर भाग गया। महमूद फिर राजा हुआ। ६ वर्ष पीछे शाहशुजा लुधियाने में अँगरेज़ों की शरण आया। महमूद ने ९ वर्ष राज्य किया परन्तु वह नाम मात्र को राजा रहा। राज्य का सब भार मन्त्री फ़तेहख़ाँ पर था। फ़तेह ख़ाँ ने ईरानियों को हराकर ईरान पर अधिकार कर लिया। १८६७ ई० में महमूद ने फ़तेहख़ाँ की आँखें निकलवा लीं। फ़तेहख़ाँ के भाई दोस्त मुहम्मद और मुहम्मद अज़ीम ने भी बदला लेने के लिये महमूद के साथ युद्ध किया। उसका फल यह हुआ कि महमूद काबुल से भगा दिया गया।

कई वर्ष तक अफ़गानिस्तान में कोई राजा न रहा। मुहम्मद अज़ीम राज्य-कार्य चलाते थे परन्तु वे न तो राजा ही थे और न अमीर। अतः अन्यान्य शासनकर्ता उनकी बात का तिरस्कार करने लगे। क्रमशः गड़बड़ पड़ने लगा। हिरात हस्तच्युत हुआ, अफ़गान, तुर्किस्तान और बदख़शां भी हाथ से निकल गये और रणजीतसिंह कश्मीर मुलतान, डेरागाज़ी ख़ाँ और अटक के अधिकारी बन बैठे। १८२३ ई० में नौशेरवां की लड़ाई में रणजीतसिंह ने अफ़गानों को हरा कर पेशावर पर अधिकार कर लिया। इसी समय मुहम्मद आज़िम का देहान्त हुआ। १८२६ ई० में दोस्त मुहम्मद ने काबुल और ग़ज़नी पर अधिकार किया। क्रमशः जलालाबाद भी उसके हाथ में आगया। १८२६ ई० में शाहशुजा अपने गये राज्य को फिर

पाने के लिये अफ़गानिस्तान में आया परन्तु युद्ध में हार कर भाग गया। १८३५ ई० में दोस्त मुहम्मद ने अपने को अमीर बना कर इस बात की घोषणा कर दी।

१८३६ ई० में रणजीतसिंह और अमीरों में सख्यभाव स्थिर रखने के लिये अँगरेज़ मध्यस्थ हुए। अमीर चाहते थे कि अँगरेज़ रणजीतसिंह के विरुद्ध उनकी सहायता करें। अँगरेज़ सर्कार उसमें सहमत नहीं हुई। इस समय कैप्टिन कूच नामक एक रूसी सेनानायक को अमीर ने नौकर रक्खा। अँगरेज़ों ने उसे हटाने की प्रार्थना की। अमीर के इस पर राज़ी न होने पर शाहशुजा को अफ़ग़ानिस्तान का राज्य दिलाना अँगरेज़ी सर्कार ने निश्चित किया। अँगरेज़ों ने रणजीतसिंह से मिलकर अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई की। दोस्त मुहम्मद मारा गया और शाहशुजा राज्याधिकारी बनाया गया।

१८४० ई० में दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण किया और वह भारतवर्ष में लाया गया। १८४१ ई० में फिर विद्रोह हुआ। वर्न और अन्यान्य अँगरेज़ कर्मचारी मार डाले गये। विपद पर विपद आती गई। दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबरख़ाँ के परामर्श से सर विलियम मेकनाटन मार डाले गये। छठी जनवरी १८४२ ई० को अँगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान छोड़ने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये। इस समय अँगरेज़ी सेना की संख्या ४६०७ थी जिसमें ६९० यूरोपियन थे। ये लोग मै बारबरदारों के भारत को आने लगे। इस समय जाड़ा बहुत पड़ता था। सेना वालों को अधिक शीत के कारण अत्यंत क्लेश उठाना पड़ा। अफ़ग़ानों ने सुअवसर देख सेना पर आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि अँगरेज़ी सेना नष्ट हो गई। केवल १३ सैनिक १३वीं जनवरी को गेंडामांक में जीवित लौटे। जिन लोगों ने काबुल छोड़ा था उनमें से डाकृर ब्राइडन मात्र ही घायल और अर्धमृत अवस्था में जलालाबाद लौट कर आये। बाद को ९२ आदमी शत्रु के हाथ से छुड़ाये गये। ग़ज़नी की अँगरेज़ी सेना ने अफ़ग़ानों को आत्मसमर्पण किया। किन्तु सेनापति नाट कन्धार में सेना-सहित ठहरे हुए थे। सेनापति सेल जलालाबाद को लौट आये।

अब अँगरेज़ सर्कार ने बदला लेने का संकल्प किया। १८४२ ई० के अप्रैल मास में सेनापति पोलक खैबर पास से जलालाबाद में जा पहुँचा और सितम्बर में उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। सेनापति नाट ग़ज़नी को ध्वंस करके उससे आ मिले। बामियान में जितने क़ैदी थे सब छोड़ दिये गये। काबुल का बाज़ार भी नष्ट कर दिया गया। बदला लेने के पीछे दिसंबर सन् १८४२ में अँगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान छोड़ दिया। इसी समय शाहशुजा गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया। दोस्त मुहम्मद खां अँगरेज़ी राज्य छोड़ काबुल में गया और १८६३ ई० तक राज्य करता रहा।

१८४८ ई० में सिक्ख युद्ध के समय सिक्खों ने दोस्त मुहम्मदख़ाँ को पेशावर लौटा देने का लोभ देकर अपने में मिला लिया। दोस्त मुहम्मद ने सिक्खों से मिल कर अटक पर अधिकार कर लिया परन्तु अँगरेज़ों के पेशावर पर अधिकार जमा लेने पर अफ़ग़ानों की आशा नष्ट हो गई।

१८५० ई० में दोस्त मुहम्मद ने बलख़ छीन लिया १८५५ ई० में अँगरेज़ों से इनकी सन्धि हुई। कन्धार भी इस समय दोस्त मुहम्मद के अधिकार में आ गया। १८५६ ई० में ईरानियों ने हिरात पर दख़ल कर लिया। १८५७ ई० में अमीर ने पंजाब के चीफ़ कमिश्नर सर जान लारेंस के साथ पेशावर में भेंट की। इस समय अँगरेज़ सर्कार ने अमीर को ईरानियों से बचाने के लिये अस्त्र शस्त्र दिये।

१८६३ ई० में दोस्त मुहम्मद ने हिरात ले लिया पर १३ दिन पीछे उसकी मृत्यु हो गई। उसका लड़का शेरअली गद्दी पर बैठा परन्तु भ्रातृविरोध आरंभ हुआ। अनेक लड़ाइयों के पीछे शेरअली राज्य में प्रविष्ट हुआ। १८६९ में शेरअली ने लार्ड म्यो के साथ अम्बाले में मुलाक़ात की और सख्यता बनाए रखने की प्रतिज्ञा की। इस समय मित्रता

दिखाने के लिये अँगरेज़ों ने बाक़ी रुपया अमीर को दे दिया। अँगरेज़ों ने १२००००) पौंड देना अंगीकार किया था। इस समय वह सब चुका दिया गया। इसके पीछे कभी कभी रुपया और अस्त्र-शास्त्र भारतसरकार शेरअली को देती रही।

१८७८ ई० के जुलाई मास में रूस मिशन काबुल में आया। शेरअलीख़ाँ ने उन लोगों को तो आने दिया परन्तु अँगरेज़ी मिशन के काबुल जाने में आपत्ति की। अँगरेज़ों ने उन्हें बहुत समझाया कि उसकी सख्यता अँगरेज़ों से है रूस से नहीं, परन्तु उसने एक न मानी अतः अँगरेज़ों को हथियार उठाना पड़ा। अमीर पराजित होकर भाग गया और ३ महीने पीछे उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र याक़ूबख़ाँ अमीर हुआ। १८७९ ई० में याक़ूबख़ाँ अपनी इच्छा से गेंडामांक में आया और उसने अँगरेज़ों से संधि की। अँगरेज़ों ने प्रसन्न हो उसको कुर्रमघाटी और पेशीन लौटा दी। अमीर काबुल में एक रेज़ीडेंट रखने पर राज़ी हुए। मेजर सर लुइस कैवगेनरी रेज़ीडेण्ट नियुक्त हुए परन्तु वे भी अफ़गानों के हाथ से मारे गये। सेनापति रावर्ट्स ने जो अब लार्ड रावर्ट्स नाम से ख्यात हैं १८७९ ई० में काबुल को जीता। याक़ूबख़ाँ क़ैद करके भारत में भेजे गये। तब से वह भारत में ही रहने लगे। दोस्त मुहम्मद के पौत्र अब्दुर्रहमान को अँगरेज़ो ने अमीर बनाया। १८८० ई० के अगस्त मास में अँगरेज़ काबुल से लौट आये। उस समय सरदार शेरअलीख़ाँ को अँगरेज़ों ने कन्धार में स्वाधीन अधिकारी स्वीकार किया। जुलाई में याक़ूबख़ाँ के छोटे भाई सरदार मुहम्मद अयूबख़ाँ ने हिरात से ससैन्य आकर अँगरेज़ों से मैवंद और कन्धार छीन लिया। सेनापति रावर्ट्स ने कन्धार का पुनः उद्धार किया। शेरअलीख़ाँ अपने स्थान पर दृढ़ न रह सका अतः वह पेंशन देकर भारत को भेजा गया। आयूबख़ाँ ने हिरात से आकर अमीर अब्दुर्रहमान की सेना को पराजित कर कन्धार पर फिर अधिकार कर लिया परन्तु विजयलक्ष्मी बहुत दिन तक उसके आश्रित न रही। सितम्बर १८८१ ई० में अमीर अब्दुरहमान ने उसे हटा कर कन्धार पर फिर से अधिकार कर लिया।

अँगरेज़ों ने पहिले अब्दुर्रहमान को केवल काबुल का अमीर बनाया था परन्तु अब कृपा कर कन्धार और हिरात भी उन्हें दे दिया। उनके साथ अँगरेज़ों की यह सन्धि हुई कि उनकी स्वाधीनता पर अँगरेज़ राज्य हस्तक्षेप न करेगा परन्तु अन्य राज्यों के सम्बन्ध के लिये उन्हें अँगरेज़ों की राय लेनी होगी। अमीर इस पर राज़ी हुए। १८८३ ई० से अँगरेज़ उनको १२ लाख रुपये साल देने लगे। यह रुपया अमीर की सेना के व्यय के लिये और अफ़ग़ानिस्तान की दक्षिण पश्चिम सीमा दृढ़ करने को दिया गया।

१८८४ ई० में रूसियों के मर्व पर अधिकार करने पर अफ़ग़ानिस्तान का उत्तर सीमान्त ईरान से आक्सस तक स्थिर करना उचित समझा गया। अँगरेज़ और रूस सरकार में पत्र व्यवहार होकर अमीर की राय से सीमा स्थिर करने के लिये एक कमीशन बैठाई गई। शरक नामक स्थान में दोनों कमीशनों के बैठने का निश्चय हुआ। अँगरेज़ कमिश्नर सर पीटर लैंसडोन सीमान्त प्रदेश में उपस्थित हुए परन्तु रूस कमीशन आई ही नहीं। १८८५ ई० के मार्च में जब दोनों राज्य सीमा स्थिर करने में लगे थे तब रूसी सेना ने अफ़गानों को पांजदे नामक स्थान पर आक्रमण कर पराजित किया। परन्तु इस समय अमीर भारत में थे इसलिये युद्ध विग्रह नहीं हुआ। जून १८८६ में अफ़ग़ान सीमा स्थिर हो गई। इस समय जुलफिकार से डुगची के मध्यवर्ती स्थान तक सीमान्त स्तंभ स्थिर किया गया। १८८८ ई० के जुलाई मास में कमीशन का कार्य समाप्त हो गया।

अमीर के अत्याचार से पीड़ित हो गिलज़ाई जाति १८८७ ई० में विद्रोही हुई किन्तु अन्त में परास्त हुई। विद्रोही लोगों ने अधीनता स्वीकार की।

१८८४ ई० में अमीर अब्दुर्रहमान का भतीजा मुहम्मद इशाकखाँ जो अफ़गान-तुर्किस्तान में अमीर का प्रतिनिधि स्वरूप था विद्रोही हुआ। यद्यपि पहिले अमीर की पराजय हुई परन्तु अन्त में अमीर विजयी हुआ। ग़ज़नी की लड़ाई में मुहम्मद इशाकखाँ का भाग्यसूर्य अस्त हो गया। वह बुख़ारा भाग गया और रूस राज्य का पेंशन भोगी होकर वहीं रहने लगा। १८९० ई० में फ़ीरोज़-कोही स्थान के सिनवारी लोग विद्रोही हुए। यद्यपि अमीर विजयी हुआ परन्तु विद्रोह दमन करने में २ साल लग गये। १८९१ ई० में ईरान और अफ़गानिस्तान का सीमान्त मेजर जनरल सी० एस० मेकलीन द्वारा स्थिर हो गया। १८९३ ई० में पामीर और अफ़गानिस्तान सीमान्त विषय पर अँगरेज़ और रूसियों में जब मीमांसा हो गई, तब भारत सरकार के वैदेशिक मंत्री सर मार्टियर डुरंड ने मिशन लेजाकर अमीर को पूरा मामला समझा दिया। अमीर ने सन्तुष्ट होकर आक्सस नदी का बाहरी भाग जिस पर उसने अधिकार कर लिया था छोड़ दिया और उसके बदले में दरवाज़ प्रदेश उनको मिला। इस समय अँगरेज़ और अफ़गान सीमान्त भी स्थिर हुआ। अँगरेज़ सरकार अपनी बन्धुता दृढ़ करने के लिये अमीर को १८ लाख रुपया देने लगी। अमीर भी वृत्ति बढ़ने से अँगरेज़ों के कृतज्ञ हुए। १८९६ ई० में अमीर ने काफ़िरस्थान को जीत कर उसे अपने अधिकार में कर लिया।

२१ साल राज्य करने के अनंतर अमीर अब्दुर्रहमान अक्टूबर सन् १९०१ ई० में काबुल में मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके पुत्र हबीबुल्लाखाँ सिंहासनारूढ़ हुए। अमीर अब्दुर्रहमान अत्यंत अत्याचारी होने पर भी राज-कार्य में विशेष दक्ष थे। उनके राज्य-काल में अफ़गानिस्तान ने जिस भाँति शांति उपभोग की पहिले वैसी शांति उसे कहीं नहीं मिली थी। सैन्य बल के भी नये भाव से गठित होने के कारण उसमें नया जीवन आ गया।

हबीबुल्ला सिंहासन पर बैठते ही नई नई उन्नति करने लगे। देश में शांति का राज्य हुआ। राज्यकर घटा दिया गया और सैन्य-विभाग की उचित उन्नति हुई।

हेलमन्द नदी की गति बदलने पर १९०३ ई० में अफ़गान ईरान सीमान्त सर ए० एच० मैकमोहन ने स्थिर किया। १९०४ ई० के दिसम्बर मास में सरदार इनायतुल्लाखाँ कलकत्ते में बड़े लाट के साथ भेंट करके काबुल लौट गये। १९०५ ई० के मार्च मास में काबुल में एक मिशन भेजा गया। अमीर के पिता के साथ अँगरेज़ों की जो सन्धि थी वह उन्हें भी मान्य है, यह उन्हें भली भाँति समझा दिया गया। अमीर भी सम्मत हुए। इस कमीशन के नेता सर लुइ डेन थे। १९०७ में अमीर स्वयं भारत में आये।

अफ़गानिस्तान का पुरातत्त्व देखने से ही प्रतीत होगा कि ईरानी, ग्रीक, हिन्दू, बौद्ध और मुसलमान अपनी अपनी शक्ति के चिह्न वहां छोड़ गये हैं। काबुल के उत्तर हैदामन नामक स्थान में सिकन्दर की प्रचलित अनेक मुद्राएं मिली हैं। मुसलमानों ने हिन्दू और बौद्ध अट्टालिकाओं को तोड़ डाला। कोहे काबू के उत्तर काबुल प्रदेशांतर्गत बौद्ध स्तूपादि अब भी देख पड़ते हैं। चंगेज़खाँ ने जो देशध्वंस किया उसके भी चिह्न देख पड़ते हैं। ग़ज़नबी महमूद ने जो क़बरें, प्रासाद और मसजिदें बनाईं थीं काल के प्रभाव से आज उनका ध्वंसावशेष देख पड़ता है। पुलकी, किलाएफ़तेह, नादाली, चकन शूर, जहीदान, दूशाक, पेशावरन और सामूर के ध्वंसावशेष आज भी तैमूर की विजय का परिचय दे रहे हैं। तख़ते रूसन में जनरल मेटलैंड ने १८८६ ई० में बौद्ध स्तूप का पता लगाया था।

अफ़गानिस्तान में भिन्न भिन्न जातियों का समावेश हुआ है। यद्यपि धर्म सूत्र से सब एक में बँधे हैं तथापि शिया और सुन्नी दल प्रथक् होने से धर्म

बन्धन और जाति-बन्धन में दृढ़ता नहीं है। किर्तिजलवासी और हज़ारावासी शियाधर्मावलम्बी और अल्प संख्यक होने के कारण सुन्नी लोगों से सताये जाते हैं। अमीर के अधीन कितने पुरुष बसते हैं यह निश्चय करना कठिन है क्योंकि आज तक वहाँ मर्दुमशुमारी हुई ही नहीं। अनुमान से ५ लाख पुरुष होंगे। पुराकाल के प्रासाद आदि देख कर यही अनुमान होता है कि जनसंख्या पहिले बहुत थी और पुरातन नगर की शोभा के सामने आधुनिक काबुल किसी गिनती में नहीं है।

यहाँ के लोगों को दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं (१) अफ़ग़ान, (२) अन-अफ़ग़ान। प्रथम संख्या में अधिक न होने पर भी शक्ति में बड़े हैं। अफ़ग़ान अपने को बनीसराइल कहते हैं। पैलेस्टाइन से मिडिया में नीबूकटनीज़ार जिन लोगों को बलपूर्वक पकड़ लाये थे अफ़ग़ान उन्हीं के वंशधर हैं।

दुरानी अथवा अब्दाली जाति राजा की जाति है। गिलज़ाई लोगों की संख्या डेढ़ लाख है। कन्धार प्रदेश कन्धार और हिरात का मध्यवर्ती स्थान है। अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण की भूमि में दुर्रानी लोग निवास करते हैं।

गिलज़ाई और सिनवारी लोग अफ़ग़ानों में अति शक्ति-शाली और साहसी हैं। ये लोग कन्धार के उत्तर के प्लैटो, सुलेमान पर्वत के पूर्व और पश्चिम, एवं काबुल नदी के उत्तर में वास करते हैं। ये लोग हिरात, काबुल और फ़री में देख पड़ते हैं। अनेक लोगों का अनुमान है कि गिलज़ाई जाति तुर्कों के ख़िलजी वंश से हैं। ग़ज़नी के महमूद के पिता सुबुक़्तगीन इन लोगों को जैकज़रटिज़ प्रदेश से लाये थे। परन्तु अफ़ग़ान अपने को 'गलज़ो' वंश का बतलाते हैं। 'गलज़ो' का अर्थ चोर है। ईरान के ग़ोरी वंशोद्भव शाकहुसेन के साथ क़ैस अब्दुलरसीद की नतिनी बीबी मतो की अविवाहितावस्था में जो सन्तान हुई थी अफ़ग़ान उसी के वंशधर हैं। अफ़ग़ानों में ताज़िकों की संख्या अधिक है। ये लोग लग भग १ लाख हैं। इनका मुख्य निवासस्थान हिरात है परन्तु ये अफ़ग़ानों के साथ मिलकर वास करते हैं। येही प्राचीन ईरानी जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। ये लोग कृषक हैं। किसी भी राजकार्य में ये लोग भाग नहीं लेते। शहर में ये लोग कारख़ानों में काम करते हैं क्योंकि अफ़ग़ान कारख़ानों में काम करना ये पसन्द नहीं करते।

इसके बाद हज़ारा जाति है जिनकी संख्या लगभग ½ लाख है। ये लोग मुग़ल जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। हज़ाराजात में इनका निवास है। ये शिया हैं। परिश्रमी होने के कारण भारतीय सेना में भी ये भरती किये जाते हैं।

हिरात प्रदेश में जमशेदी, फ़ीरोज़कोही, तैमूरी और ताइमानी जातियाँ देख पड़ती हैं। ये चहार ऐमक कहलाते हैं। इनकी संख्या १८०००० है। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। बहुत से तैमूरी अब खुरासान में आकर बसे हैं।

उज़बक जाति की संख्या प्रायः ३ लाख है। ये लोग अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में रहते हैं। इनकी तिहाई संख्या कन्धार में है।

इज़ील बासियों की संख्या लगभग ५० हज़ार है। ये तुर्क जाति के हैं। नादिरशाह इन लोगों को १७३७ ई० में अफ़ग़ानिस्तान में लाया था। इनका वासस्थान काबुल है। ये लोग डाक्टर और लेखक होते और अमीर के दफ़्तरों में मुहर्रिरी का कार्य करते हैं। यद्यपि ये लोग शिया हैं तथापि अमीर इनको ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत करते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में हिन्दू जाति की संख्या प्रायः ३५ सहस्र है। यद्यपि ये लोग सताये नहीं जाते तथापि इन्हें कुछ राजकर देने पड़ते हैं जो औरों को नहीं देने पड़ते।

अन्य जातियों में शफ़ी, कश्मीरी, लघमाती, अरब, सैय्यद, पराच और काफ़िर हैं। ये लोग काफ़िरस्तान के निवासी हैं। जलालाबाद के उत्तर में काफ़िर स्थान है।

अफ़ग़ान जाति की भाषा पश्तू है। अन-अफ़-

गान फ़ारसी बोलते हैं। अफ़गानों में भी फ़ारसी का प्रचार होने लगा है। दफ़्तर का काम सब फ़ारसी ही में होता है। हिन्दूकुश के उत्तर में जो लोग निवास करते हैं वे तुर्की बोलते हैं। बदख़शाँ में फ़ारसी बोली जाती है। आक्सस नदी के ऊपरी भाग में अनेक भाषायें प्रचलित हैं। लघमन और जलालाबाद के अनेक स्थानों में लघमानी भाषा में बात चीत की जाती है। ये लोग भी अन-अफ़गान है। काफ़िर स्थान में कई भाषायें बोली जाती हैं। अफ़गानिस्तान के दक्षिण पश्चिम में बलूची भाषा प्रचलित है।

स्वात का विजय इतिहास पश्तू भाषा का अति प्राचीन ग्रन्थ है। शेखमाली नामक एक इशुफजाई सेनापति इसका प्रणेता है। अफ़गान पुस्तकें पद्य में लिखी जाती हैं। अब्दुर्रहमान सर्वोत्तम कवि था। यह १७ वीं शताब्दी में हुआ था।

अफ़गान देखने में सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। दाम्भिकता इनका जातीय गुण है। बाल्य काल से ही ये लोग रक्तपान में अभ्यस्त होते हैं, मृत्यु से ये नहीं डरते, आक्रमण करने में ये बड़े ही साहसी हैं परन्तु हारने पर शीघ्र ही इनका दिल टूट जाता है। ये लोग विश्वासघातक और बदला लेनेवाले होते हैं। अपनी जान देकर भी ये लोग अपना उद्देश साधन करते हैं। दोष के लिये कठिन दण्ड पर भी ये डरते नहीं। सामान्य सी बात के लिये भी ये गुरुतर पाप कर बैठते हैं। स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दरी होती हैं। युवावस्था में ये गुलाब के फूल जैसी होती हैं। शारीरिक गठाव यहूदी स्त्रियों की भाँति होता है। परदे का नियम अत्यन्त कठिन होने पर भी इनमें व्यभिचार बहुत होता है। व्यभिचार का दण्ड फाँसी है परन्तु तब भी इसमें कमी नहीं होती। अफ़गान लोग अतिथिसेवी हैं। अतिथि और विदेशी लोगों को देशी अतिथिशाला में मुफ़्त में खिलाया जाता है। ये लोग अपना जीवन देकर भी आश्रित की रक्षा करते हैं यहाँ तक कि कठिन शत्रु होने पर भी शरण आने पर उसकी रक्षा करना अपना धर्म मानते हैं। परन्तु तभी तक जब तक उनके मकान में रहे। मकान से बाहर होने पर उसे लूट लेने में ये लोग नहीं चूकते। कुटुम्बी के घातक की जान लेने को 'किशास' कहते हैं।

अफ़गान अपने धर्म को कुछ नहीं जानते। ईश्वर का अस्तित्व, पैग़म्बर, पुनरुत्थान और मृत्यु के बाद विचार के दिन (क़यामत) पर इनका विश्वास है। ये लोग मुल्लाओं की बात बहुत मानते हैं विशेषतः जब किसी को हानि पहुँचानी होती है। यह जाति बड़ी ही कुसंस्कारापन्न है। भूत, प्रेत, तावीज़, मन्त्र, वशीकरण आदि में इनका अटल विश्वास है। पीर लोगों पर इनकी अत्यंत श्रद्धा है। इनका विश्वास है कि पीर की कृपा से लोग अच्छे होते, बाँझ के लड़का होता और मृत व्यक्ति स्वर्गलाभ करता है। ये लोग यह भी मानते हैं कि मानवमात्र पापी है अतः ईश्वर तक पहुँचना अत्यंत कठिन है पीर की कृपा बिना परमेश्वर तक कोई नहीं पहुँच सकता।

अन्य मुसलमानों की भाँति ये लोग भी मुर्दों को दफ़न करते हैं। मृत्युकाल में मुल्ला आ कर तत्कालोचित कार्य करते हैं। मरने के समय ईश्वर का नाम लेकर मक्के की ओर मुँह करके ये मरते हैं। मर जाने पर मृत देह को धोकर एक कफ़न के अंदर रख कर गाड़ देते हैं। मुल्ला ईश्वर का नाम लेते हैं। धनाढ्य व्यक्ति क़बर के ऊपर एक पत्थर लगाते हैं।

अफ़गान लोग स्त्री मोल लेते हैं। स्वामी बिना किसी कारण के ही स्त्री को परित्याग कर सकता है। प्रबल युक्ति रहने से विवाह-बन्धन छिन्न करने के लिये स्त्री काज़ी के निकट प्रार्थना कर सकती है परन्तु प्रायः स्त्रियाँ ऐसा नहीं करतीं। स्त्री जीवित रहते यदि स्वामी मर जाय और यदि रमणी दूसरा व्याह करे तो मृत पति के कुटुम्बी रमणी से व्याह का मूल्य फेर लेते हैं। विधवा स्त्री का व्याह साधारणतः मृत पति के भाई के साथ होता है। यदि और कोई व्याह करले तो देवर के लि

बड़े ही अपमान का विषय है। यदि स्त्री न चाहे तो दूसरा व्याह करने का दबाव उस पर नहीं डाला जाता। यदि विधवा के पुत्रादि हों तो स्त्रियाँ अधिकतर पुनर्विवाह नहीं करती हैं। पुरुष २० वर्ष में और स्त्रियाँ १५ या १६ वर्ष में व्याह करती हैं। साधारणतः स्त्री मोल लेने को जब तक रुपया न हो या विवाहित जीवन की व्यय निर्वाह का जब तक सुबीता न हो तब तक विवाह नहीं किया जाता। धनाढ्य लोग यौवनावस्था के पहिले ही विवाह करते हैं। शहरवाले ग्रामवालों की अपेक्षा कम उमर में व्याह करते हैं। अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वाञ्चल में १५ वर्ष के बालक के साथ १२ वर्ष की कन्या का व्यांह होता है। साधारणतः अपनी जाति ही में व्याह किया जाता है परन्तु अफ़गान ताजिक और ईरानी स्त्री भी ग्रहण करते हैं। शहर में पुरुषों को स्त्री देखने का अवसर नहीं मिलता अतः कुटुम्ब की स्त्रियाँ व्याह ठीक करती हैं। किन्तु व्याह में बर और कन्या की सम्मति अवश्य ली जाती है। कुटुम्बियों की सम्मति अग्राह्य है। जहाँ स्त्रियों का पुरुषों के साथ मिलने का विशेष निषेध नहीं है वहाँ प्रेम ही विवाह का कारण होता है। वह विवाह मुसलमानी धर्म के विरुद्ध न होने पर भी बहुतों को आज्ञा कठिनता से मिलती है। धनाढ्य लोगों में कोई कोई चार से भी अधिक व्याह करते हैं परन्तु उपपत्नी और .गुलाम रखने में उन लोगों को कोई निषेध नहीं है। वर्तमान अमीर प्रजा को ४ से अधिक स्त्रियाँ नहीं रखने देते और स्वयं भी १९०३ ई० में उन्होंने चार स्त्रियों को छोड़ शेष स्त्रियों को परित्यक्त कर दिया। एक समय में स्त्रियों को बहुपति करने का अधिकार नहीं है। अफ़गानिस्तान में .गुलाम रखने की प्रथा अब नहीं है। पहिले प्रत्येक धनाढ्य विशेषतः हज़ारा जाति वाले .गुलाम रखते थे। परन्तु वर्तमान अमीर ने .गुलाम बेचने तथा ख़रीदने के विरुद्ध आज्ञा प्रचलित की है और उसके लिए कठिन दंड भी नियत किया है।

अफ़गान लोगों को मजबूर होकर मिताहारी होना पड़ता है। प्रायः आधे साल वे लोग फलों पर ही निर्वाह करते हैं। चर्बीपूर्ण मांस के सिवाय और किसी मांस का आहार नहीं किया जाता। जो पशु हलाल नहीं किया जाता उसका मांस खाना निषिद्ध है। पशु का मुख मक्के की ओर करके ईश्वर के नामोच्चारण के साथ विशेष विशेष अंग को काटना ही हलाल करना कहा जाता है। धनाढ्य लोग पुलाव खाते हैं। चावल के साथ मांस पकाने से ही पुलाव बनता है। ग्रामवासी किसान फलों का समय बीत जाने पर 'कूट' खाकर रहते हैं। अन्न को चर्बी के साथ खाने को कूट कहते हैं।

पुरुषों के कपड़े दो रहते हैं। एक के ऊपर दूसरा पहिनते हैं। एक का नाम कमीज़ और दूसरे का नाम चोगा है। यह रुई या ऊँट के रोमों से बनाया जाता है। गरमी में इनमें अस्तर नहीं लगाया जाता। जाड़े के लिये रुई या रोवों के बने कपड़े का अस्तर दिया जाता है। नीचे का कपड़ा लांगक्लाथ का होता है। कमीज़ बहुत ही बड़ी होती है। इसके एक तरफ़ गले से कमर तक खुला रहता है। यह पाजामें तक होती है। पाजामा कमर में रस्सी से बाँधा जाता है। शिर पर सफ़ेद या नीले रंग की पगड़ी बाँधी जाती है। धनाढ्य लोग रेशम या ऊनी कपड़े पहनते हैं। जाड़े में सब लोग पोस्तीन पहिनते हैं। भेड़ के चमड़े के कोट को पोस्तीन कहते हैं। आजकल सरदार और काबुल के कर्मचारी लोगों में योरोप के बने हुए कपड़े पहिनने की वासना बढ़ती जाती है। अफ़गान स्त्रियाँ बाहर जाते समय बुरका पहिनती हैं। यह सूत का बना होता है और सिर से पैर तक लटकता रहता है। केवल आँखों पर देखने के लिये दो छेद होते हैं।

गृहादि धूप में सूखी हुई ईटों से बनते हैं। काष्ठाभाव के कारण मकानों की छतों में डाट लगाई जाती है। प्रत्येक मकान के चारों ओर दीवार खिंची होती है। सरदार और राज-कर्मचारियों के घर सुसज्जित होते हैं।

शिकार, कुश्ती, कुत्ते के साथ दौड़, घुड़दौड़, बटेर की लड़ाई, मेढ़ों की लड़ाई, ऊँट की लड़ाई आदि इनके मुख्य आमोद के खेल हैं। पासे का रिवाज बहुत है। बूढ़े और लड़के गोली खेलते हैं।

रोगों में बुख़ार, बाई और सरदी साधारणतः होते हैं। जाड़े में फेफड़े का प्रदाह (न्यूमोनिया) ग़रीब लोगों को बहुत होता है क्योंकि शीत से बचने को ये लोग यथेष्ट वस्त्र नहीं पा सकते। जुलाई से अक्टूबर तक फलाहार के कारण पेट पीड़ा से बहुत से लोग मर जाते हैं। गरमी, गण्डमाला, पथरी, चर्म और चक्षुरोग अधिक होते हैं। चेचक भी थोड़ी बहुत होती है। बीस वर्ष के अंदर केवल ३ मृत्यु विशूचिका से हुईं। प्लेग का नाम भी नहीं है।

अनाज की दो फ़सलें होती हैं रबी और ख़रीफ़। रबी शरद में बोकर गरमी में काटी जाती है। ख़रीफ़ हेमंत में बोकर शरद में काटी जाती है। रबी में प्रधानतः गेहूँ, जौ, मसूर की दाल, और ख़रीफ़ में चावल, भुट्टा, जुनरी और कई भाँति की दालें होती हैं। अत्यंत उच्च स्थानों में फ़सल एक ही बार होती है जो हेमंत में बोई जाती और शरद में काटी जाती है। अफ़ग़ानिस्तान में सर्वत्र ही गेहूँ प्रधान खाद्य है। अनाज के क्षेत्र दो भागों में विभक्त हैं (१) आबी (२) लामी। आबी भूमि में जल-सेचन की व्यवस्था है, लामी भूमि वर्षा के भरोसे ही रहती है। नदी से नहर काट कर सिँचाई बहुत की जाती है। कुँआ खोद कर नीचे नीचे नाली बनाते हैं इसको 'करेज़' कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण और पश्चिम में करेज़ बहुत प्रचलित है।

उपर्युक्त अनाजों के सिवाय योरोपीय शस्यों की खेती भी होती है, यथा मटर, सेव, गाजर, शलजम, चिटपालक, गोभी, प्याज, लटयूस, ककड़ी और विलायती बैंगन। ये सब उत्तम भूमि में उत्पन्न होते हैं। आलू की खेती थोड़ी होती है। लूसन और त्रिपर्ण घास की खेती चारे के लिये होती है। अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वांचल में गन्ने की खेती होती है परन्तु कम। शक्कर बाहर से जाती है।

हिरात, काबुल, कन्धार और जलालाबाद में अफ़ीम की खेती होती है परन्तु अधिक नहीं। हिरात में कपास की खेती अधिक और जलालाबाद में कम होती है। तम्बाकू अधिक उत्पन्न होता है। बदाम और रेंडी के पेड़ देश में सब स्थानों में देख पड़ते हैं। तिल और सरसों की खेती भी अधिक होती है। मदार पश्चिमांचल में बहुत होता है और भारत को बहुत भेजा जाता है।

अफ़ग़ानिस्तान फल के लिये प्रसिद्ध है। सेव, नाशपाती, बदाम, शफ़ालू, एप्रिकट, जामुन, चेरी, अनार, अंगूर, अंजीर और तूत सभी स्थानों में होते हैं। इन सब में अंगूर प्रधान है। अंगूर ४० प्रकार के होते हैं और बहुत से खाने में बहुत ही उत्तम होते हैं। अंगूर और एप्रिकट सुखा कर भारत को भेजे जाते हैं। तूत को सुखा कर बूँक लेते हैं और उसके लड्डू बना कर ग़रीब लोग जाड़े में खाते हैं। अख़रोट और चिलगोज़ा उत्तर और पश्चिम के जंगले में होते हैं, हिरात प्रदेश, फ़ीरोज़ कोही और किला-नाव स्थानों की पहाड़ी जगहों में ये फल स्वयं होते हैं। शरधा नामक एक प्रकार की फूट खाने में प्रायः अंगूर की भाँति होती है।

मृत अमीर की जीवित दशा में शराब बनना प्रारम्भ हुआ था। मुसलमानी धर्म में शराब मना है परन्तु अमीर इसका प्रतिपालन न कर १९०[illegible] ई० में एक आस्टियन कर्मचारी को नियुक्त कर उससे मद्य बनवाने लगे। जब अफ़ग़ानिस्तान में अंगूर बहुत होता है तो मद्य न बनने का कोई कारण नहीं देख पड़ता।

अफ़ग़ानिस्ताननिवासियों के घोड़े, ऊँट, गाय, भेड़, बकरी आदि पशु सम्पत्ति समझे जाते हैं। आजकल घोड़े की रफ़्नी अधिक है। अब्दुर्रहमान की जीवित दशा में एक आज्ञा घोड़ों को बाहर भेजने के लिये हुई थी। प्रत्येक घोड़े की रजिस्टरी और यदि कोई देश के बाहर जाता तो उसके है

आने के लिये मालिक से ज़मानत ली जाती थी। याबू नामक एक जाति का घोड़ा गाड़ी खींचने के काम में आता है। ये घोड़े बहुत कमसहिष्णु होते हैं। अमीर दोस्तमुहम्मदख़ाँ अरबी घोड़ों की संख्या बढ़ाने की सदैव चेष्टा किया करते थे। अमीर अब्दुर्रहमान ने अरब और इँगलिश घोड़ों की संख्या बढ़ाने के लिये एक पशुशाला और एक अँगरेज़ चिकित्सक नियत किया था। पीछे यह सरदार की निगरानी में रक्खा गया। खेती और अनाज माड़ने के लिये बैल काम में आता है। दुम्बा मेढे की भाँति का होता है। एक का रंग श्वेत दूसरे का धूसर या काला होता है। हिरात और कन्धार से उनकी रफ़्तनी अधिक होती है। आज कल अँगरेज़ी सैादागर ऊन अधिक ख़रीदते हैं। भेड़ का मांस ही अफ़ग़ानिस्तान में प्रधान खाद्य है। हिरात और अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में गर्भस्थित भेड़ के बच्चे की खाल का कारबार बहुत होता है। योरोप में इस भाँति के भेड़ के बच्चे की खाल को अस्त्राचम (Astracham) कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट भारत के ऊँट से मोटा होता है; उत्तरांचल में ऊँट की पीठ पर दो कोहान होते हैं, इसे कूर्चा कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट औसत में ५ मन बोझा ले जा सकता है।

अफ़ग़ानिस्तान में ५ प्रकार के कृषक होते हैं यथा (१) पृथ्वी के स्वत्वाधिकारी जो स्वयं खेती करते हैं (२) प्रजा स्वत्व या जो लोग रुपया या पैदावार से कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (३) बज़गर जो लोग छोटे छोटे किसान हैं भूमि की उपज का कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (४) जो लोग तनख़ाह देकर खेती कराते हैं (५) दास—जो लोग अपने स्वामी की भूमि बिना वेतन पाए ही जोतते बोते हैं।

थोड़ी थोड़ी भूमि के स्वत्वाधिकारी लोग खेती करने में बहुधा परिवार वालों से सहायता लेते हैं, अथवा नैाकरों द्वारा खेती कराते हैं। प्राचीन समय में यही रीति थी परन्तु अब कई कारणों से इसमें परिवर्तन हो गया है। अकाल अथवा अपव्यय के कारण बहुत से लोग भूमि बेच डालते हैं। घर का झगड़ा अथवा बेचने की इच्छा ही भूमि के दूसरे के पास जाने का प्रधान कारण है; सन्तानों में भूमि बँटने से थोड़ा थोड़ा भाग हिस्से में पड़ने से बहुधा लोग अपने भाई को अपना अंश यों ही या कुछ लेकर दे देते हैं। अमीर के कर्मचारी ही प्रायः भूमि ख़रीदते हैं क्योंकि उनके पास धन अधिक है। जो लोग सिँचाई की सुविधा कर सकते हैं वे ऊजड़ भूमि को ठीक बना कर उसके स्वामी हो जाते हैं। बहुत से आदमियों को अमीर से भी भूमि जागीर में मिलती है।

जो लोग भूमि पर कर देते हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। प्रायः वे लोग मध्यम अवस्था के होते हैं। ये लोग भूमि को बज़गर लोगों को उठा देते हैं। भूमि जोतने बोने का अधिकार २ वर्ष और अधिक से अधिक ५ वर्ष के लिये दिया जाता है। जहाँ बज़गर लोग खेती करते हैं वहाँ भूमि के मालिक को बीज, बैल और हल आदि देना पड़ता है। बज़गर केवल अपनी मेहनत लेते हैं। किसी किसी स्थान में बज़गर कुछ व्यय भी करते हैं परन्तु कुछ स्थानों में बीज छोड़ और सब व्यय बज़गर ही करते हैं। बज़गर को मिलने वाले भाग में भी व्यतिक्रम देख पड़ता है; किसी किसी स्थान में पैदावार का $\frac{१}{१०}$ भाग तथा किसी किसी स्थान में $\frac{१}{२}$ भाग मिलता है। बज़गर मज़दूर लगा कर मेहनत कराते हैं और उनकी नियुक्ति १३ वीं मार्च से प्रारम्भ होकर ९ महीने के लिये होती है। किसी किसी स्थान में मज़दूरों को भोजन भी मिलता है और कुछ अनाज भी दिया जाता है।

शहर के मज़दूरों को भोजन और १०० दीनार दिये जाते हैं। दीनार साढ़े चार आने का होता है। शहर में गेहूँ का आटा रुपये का १६ सेर मिलता है परन्तु देहात में और भी सस्ता मिलता है।

अकरोबत कोटाल और कोहेदामन में पेंसिल बनने वाले पत्थर की खान है। हिरात के पूर्व में

कोयले की खान है। शिलाजीत ग़ज़नी से १० मील उत्तर में मिलती है। तैलाक्त पत्थर बन्दी तुर्किस्तान में देख पड़ता है। तांबा अधित्यका में रसांजन की खान है। कन्धार के ३ मील उत्तर सोने की खान है। कोहिस्तान की नदी में भी स्वर्ण मिलता है। हिन्दूकुश पहाड़ की पांजशिर उपत्यका में चाँदी की खान है। शाहमकसूद पहाड़ में ताँबे की खान है। कन्धार से ६० मील उत्तर नेश नामक स्थान में ताँबे की उत्तम खान मिली है। साहकानी पास में सुशी नामक स्थान की भूमि के ऊपरी भाग में ताँबा देख पड़ता है। घोड़बंद उपत्यका के फिंजल नामक स्थान में सीसे की खान दिखाई पड़ती है। कन्धार में निकल-चाँदी भी मिलती है। हिन्दूकुश के बहुत भागों में लोहे की खानें हैं। काबुल और जलालाबाद के मध्यस्थान में चुन्नी पत्थर मिलता है। जामिनद्वार नामक स्थान के विश्लेषणकृत गन्धक पत्थर से फिटकरी तैयार होती है। हरसोट (Gypsum) बदख़शां और हिरात में मिलता है। खानाबाद में नमक की खान है। ऐसबेस्टो भी अफ़ग़ानिस्तान में होता है। लेपिस लांजूली पत्थर की खान कोचका उपत्यका में मिलती है। कोटिअश्रु में स्वेत पत्थर और वज़ीराबाद के निकट ख्वाज बगीरा नामक स्थान में हरा पत्थर मिलता है।

अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में उत्तम रेशम तैयार होता है। हिरात और कन्धार में भी रेशम बहुत तैयार होता है परन्तु वह अफ़ग़ान-तुर्किस्तान जैसा उत्तम नहीं होता। रेशम की रफ़्तनी कम है परन्तु रेशमी कपड़े की बहुत है। अफ़ग़ानिस्तान की दरी अब पहिले जैसी नहीं बनती परन्तु हिरात में दरी बहुत बनती है। यह अद्रकंशा और सबज्वार दरी कहलाती हैं। सिसतान, क्वेटा और पेशावर में दरी की बिक्री बहुत होती है। हिरात प्रदेश में नमदे का काम भी होता है। अफ़ग़ानिस्तान के प्रायः प्रत्येक स्थान में भेड़ के चमड़े के पोस्तीन और कोट तैयार होते हैं परन्तु काबुल के बने कपड़े अधिक मूल्य के होते हैं। अफ़ग़ानिस्तान में ही पोस्तीन की बिक्री बहुत है। और पंजाब, बिलूचिस्तान तथा सिंध में भी इसकी बिक्री होती है। हिरात में हज़ारा जाति के लोग काकमा, बरक. एवं कुर्क तैयार करते हैं। काकमा ऊँट के कोमल ऊन से बनता है, इसका मूल्य भी बहुत होता है। बरक और कुर्क पेड़ और पहाड़ी बकरी के लोम से बनता है। कुर्क बरक से क़ीमती होता है। कन्धार में माला तैयार होती है जिनके दाम १ से १०० रुपये तक होते हैं। यह माला मक्के में बिकने को भेजी जाती हैं।

आज कल अग्न्यास्त्र तैयार करने को योरोपीय ढँग में योरोपीय कर्मचारियों की देख रेख में एक कार्यालय खोला गया है।

अफ़ग़ानिस्तान में भारत का व्यवसाय १९०४ ई० में १८० लाख रुपये का हुआ, जिसमें ८५ लाख की वस्तु भारत से गई। भारत से कपड़ा, चाय, नील, शक्कर, और चमड़ा अफ़ग़ानिस्तान में जाता है। उधर से घी, रेशम, ऊन, पोस्तीन, चमड़ा और दरी भारत में आती हैं। पोयंदा नामक एक जाति ऊँट के द्वारा वाणिज्य की वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाती है। पोयंदा कोई भिन्न जाति नहीं है, ऊँट से व्यवसाय करने वालों ही को यह नाम दिया जाता है।

वाणिज्य के लिये अफ़ग़ानिस्तान के नीचे लिखे मार्ग हैं:—(१) भारत से काबुल को ख़ैबर और जलालाबाद होकर। (२) ग़ज़नी और कन्धार को गोमल पास से। (३) क्वेटा से कन्धार। (४) बदख़शां से चित्राल होकर बाजूर और जलालाबाद। (५) बुख़ारा से आक्सस नदी के द्वारा काबुल (६) बुख़ारा से मर्व होकर हिरात। (७) ईरान से मशदद होकर हिरात, कन्धार और काबुल जाने का मार्ग। उपर्युक्त मार्गों में ख़ैबर और क्वेटे का मार्ग उत्तम है। वाणिज्य वस्तु गाड़ी द्वारा नहीं ले जाते। यह काम ऊँटों द्वारा होता है। लकड़ी को नदी से बहा लाते हैं।

१८७० ई० में अमीर शेरअलीख़ाँ ने टिकट-लगाने की प्रथा प्रचलित की थी। दो बरस तक टिकट का व्यवहार नहीं होता था परन्तु पैसे ले लिये जाते थे। १८७२ ई० में टिकटें छपीं। इसका दाम १ शाही (= १ आना), १ अबासी (= ⅓ काबुली रुपया), २ अबासी तथा १ काबुली रुपया था। डाक से छोटे छोटे पार्सल भेजे जाते हैं। बड़े बड़े शहरों में चिट्ठियां बाँटी जाती हैं परन्तु अमीर के कर्मचारी जहाँ हों वहीं उनको चिट्ठी पहुँच जाती है। सप्ताह में दो बार डाक बँटती है। अफ़गानिस्तान में तार नहीं है परन्तु बाग़ बगीचों से अमीर के महलों तक टेलीफ़ोन हैं।

१८७२ में अफ़गान-तुर्किस्तान अकाल और विशूचिका में पीड़ित हुआ परन्तु कठिन अकाल यहाँ कभी नहीं हुआ। दुर्भिक्ष-समय में तुर्किस्तान में से नाज आदि लाकर दुर्भिक्ष मिटाया गया।

राजकार्यों में यह देश पूर्णरूप में स्वतंत्र है परन्तु देश से बाहिरी सम्बन्ध भारत सरकार पर अवलम्बित है। इस विषय में अमीर को कोई स्वतंत्रता नहीं। पहिले सिंहासनप्राप्ति रक्तपात के बिना नहीं होती थी। केवल अमीर हबीबुल्लाख़ाँ का सिंहासनारोहण ही शांति से हुआ। राजपरिवार के लोग काबुल के बाहर शासन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ही प्रधान शासक है अतः शासन-प्रणाली में भी विशेष अंतर है। अमीर अब्दुर्रहमान के समय से शक्ति केन्द्रीभूत होने पर शासनकर्ता लोगों की शक्ति घट गई और छोटे छोटे शासनकर्ताओं के नियुक्त होने से काबुल के साथ अमीर का सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। जो सरदार शत्रु समझ पड़ते थे उन्हें फाँसी न देकर देशनिकाले का दंड दिया गया। केवल अफ़गान-तुर्किस्तान में उसका पुत्र सरदार गुलाम अलीजान नाम मात्र का शासन करता था। इसके सिवाय और सब कर्मचारियों के अमीर द्वारा नियुक्त होने से राजशासन में किसी भाँति विघ्न नहीं उपस्थित हुआ।

शक्ति केन्द्रीभूत करने के विचार से काबुल में बहुत से दफ़्तर स्थापित हुए। कार्य चलाने के लिये पृथक् पृथक् दफ़्तरों में अमीर के भाई नियुक्त हुए। ये लोग भी अमीर के अधीन हैं। छोटे छोटे कार्य में भी अमीर की अनुमति लेना आवश्यक होता है।

राजकार्य चलाने के लिये अफ़गानिस्तान ६ प्रदेशों में विभक्त है (१) अफ़गान-तुर्किस्तान, (२) बदख़शाँ (३) हिरात (४) कन्धार (५) फ़र्रा (६) काबुल। अमीर स्वयं काबुल का शासन करते थे परन्तु अब वह नायबउल-हुकम अर्थात् शासनकर्ता के अधीन रक्खा गया है। प्रत्येक प्रदेश ज़िलों में बँटा है।

काबुल के दरबार में अमीर स्वयं राज्यकार्यादि देखते हैं। इसमें विचार विभागों की अपील होती है। प्रत्येक प्रदेश और ज़िले के शासनकर्ताओं को दीवानी तथा फ़ौजदारी के अधिकार प्राप्त हैं। इन लोगों की अदालत मुहकमाई-हाकिम कहलाती है। इनके नीचे काजी की अदालत है जो मुहकमाई-सरह नाम से ख्यात है। प्रत्येक काजी का एक २ सहकारी है जिसे मुफ़्ती कहते हैं। जिस विषय पर काजी और मुफ़्ती का मतभेद होता है वह काबुल के खती-मुल्ला के निकट मीमांसा को भेजा जाता है। अदालत के नियम आदि अब्दुर्रहमान ने बनाये थे और वर्तमान अमीर भी उसी के अनुयायी हैं। उच्च अदालत की आईन पुस्तक चाई-हुकूमती नाम से ख्यात है। काजी और मुफ़्ती लोगों की आईन पुस्तक का नाम असास-उल-हुज्जत है। यह मुसलमान आईन (शर) के आधार पर लिखी गई है। साधारणतः मुसलमान आईन से शासित विषय मात्रही हाकिम लोग काजी की अदालत में भेजते हैं। विद्रोह, राजकोश की चोरी, जाल, राजकर्मचारियों का घूस लेना, राजा या राजपरिवार के विरुद्ध नालिश आदि की मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। ये सब विषय आईन पुस्तक में लिखे न रहने पर भी अमीर अपनी राय के मुताबिक काम करते हैं और अभियोग प्रमाणित होने पर दोषी को प्राणदंड होता है। काबुल के बाहर व्यभिचार, चोरी आदि के

अभियोग हाकिम काजी शरह आईन के अनुसार निपटाते हैं। केवल काबुल में इसकी मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। चोरी पेशावालें के लिये आईन बड़ा ही कठोर है। हाथ-पाँव काटने से मृत्युदंड तक दिया जाता है। हाकिम या काजी अपराध शरह आईन के अनुकूल होने से मृत्यु दंड तक की आज्ञा दे सकते हैं परन्तु अमीर की आज्ञा की आवश्यकता तब भी होती है। वाणिज्यादि विषयक विवाद शरह आईन के अन्तर्गत नहीं है हाकिम इन विषयों में पञ्चायत से फ़ैसला कराते हैं। आज कल काबुल में निम्न लिखित अदालतें हैं।

नायब-उल-सुलतानस, समुईन-उल-सुलतानस, सरियत और कोतवाली। हाकिम लोगें के फ़ैसले की अपील अमीर के पास होती है। दीवानी के मुक़द्दमें के लिये अब टिकटदार स्टाम्पें का चलन हुआ है। इसमें निवेदन लिखकर अमीर के पास भेजना होता है।

अफ़ग़ान राज्य की आय जिन मदें से होती है वे ये हैं—कर, आमदनी तथा रफ़्नी पर टैक्स, फल के बग़ीचें पर टैक्स, चराई का टैक्स (अर्थात् ४० पशुओं में से १ पशु पर टैक्स लगता है, जिसे छहालो-अक या जकत कहते हैं), टिकट बिक्री, सरकारी बाज़ारें का एकाधिपत्य, जज़िया (यह टेक्स जो लोग मुसलमान नहीं हैं उन पर लगता है) एवं भारत सरकार से दिये जाने वाले १८ लाख रुपये। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक शासनकर्ता अमीर के सालाना भेंट भेजते हैं। उससे भी बहुत आय होती है। पचास साल में अफ़ग़ानिस्तान की आय चैागुनी हो गई। १८५६ ई० में अफ़ग़ानिस्तान की आय ३० लाख वार्षिक थी, दूसरे साल दोस्त मुहम्मद ने पेशावर दरबार में ३५ लाख कही थी। १८६९ में शेरअली के समय आय अँगरेज़ी रुपये में ७० लाख थी। १५ साल बाद वह काबुली रुपये में १ करोड़ रुपये हो गई। १८८५ ई० में अब्दुर्रहमान ने अफ़ग़ानिस्तान की आय अँगरेज़ी रुपये से १ करोड़ निश्चित की थी। व्यय आय के भीतर ही होता है और बचा हुआ धन काबुल में भेजा जाता है। लोगें का विश्वास है कि काबुल में संचित धन का एक बड़ा कोश है।

भूमिकर वार्षिक उपज पर लिया जाता है। सींचने की सुविधा और असुविधा देखकर कर लगाया जाता है। जिस भूमि में सिंचाई की व्यवस्था है उसमें उपज का तिहाई कर में लिया जाता है। जो झरनें से सींची जाती है उसकी उपज का १/१० भाग कर में जाता है। जो भूमि कारेज प्रणाली से सींची जाती है उसका कर उपज का १/१० भाग लिया जाता है परन्तु करेज यदि सरकारी हो तो उसका कर अधिक होता है। जो भूमि वृष्टि जल के भरोसे ही रहती है उस पर कर १/१० भाग है। फल और शाक भाजी के बग़ीचें पर प्रति ६० वर्ग गज़ पर ७॥) से ९) तक कर लगता है। यदि और अधिक कर न देना पड़ा तो कृषक की दशा अच्छी रहती है। परन्तु क्षुधार्त सेना और धनिकें के नोकर प्रायः खेतें से अनाज ले जाते हैं। शहर के लोगें को इस विषय में अधिक डर नहीं है तथापि प्रजा कर-भार से पीड़ित है। वर्तमान अमीर ने इस कर-भार को कम कर दिया है।

अमीर अब्दुर्रहमान ने कुछ स्वर्ण-मुद्रा भी बनवाये थे परन्तु उनका प्रचार अधिक नहीं हुआ। १८९० ई० में काबुल में एक टकसाल स्थापित हुई। निम्नलिखित मुद्रा देश में प्रचलित हैं:—पाँच पाई=१ शाही (ताम्र मुद्रा); २ शाही=सन्नार (रौप्यमुद्रा) २ सन्नार=१ अब्बासी अथवा तेगा; ३ सन्नार=१ अन; २ अन=१ रुपया; १५ रुपये=१ काबुली स्वर्ण तिला।

अमीर अब्दुर्रहमान ने ५ काबुली रुपयें का १ बड़ा मुद्रा बनवाया था परन्तु उसका चलन नहीं हुआ। भारतीय रुपये के हिसाब से काबुली रुपये का मूल्य १३॥ से ८ आने तक कम है। जिसमें दर और कम न हो इस विषय का अमीर विशेष ध्यान रखते हैं।

साधारण तौल इस भाँति है:—काबुल में—१६ खर्द=१ चारक; ४ चारक=१ सेर ७ सेर) भारतीय १३॥ छटाँक के बराबर है); ८ सेर=१ मन; १० मन=१ खरवार (१५ मन=२७॥ भारतीय सेर अँगरेज़ी तौल)।

कन्धार में—२ मिसकल=१ सेर (४$\frac{2}{7}$ तोला भारतीय तौल); ४० सेर=१ मन (४ सेर २५ तोला भारतीय); १०० मन=१ खरवार (१० मन ३१ सेर ८ तोला भारतीय)।

हिरात प्रदेश की तौल कन्धार की ही भाँति है। अफ़गान-तुर्किस्तान में काबुल की तौल प्रचलित है। और स्थानों में मज़ारीशरीफ़ की तौल प्रचलित है:—

१ मज़ार सेर=१$\frac{3}{7}$ काबुली सेर (१४ अँगरेज़ी भारतीय सेर); १६ सेर=१ मज़ार मन (५ मन २४ सेर अँगरेज़ी); ३ मन=१ मज़ार खरवार (१६ मन ३२ सेर अँगरेज़ी)।

कन्धार में नाप के लिये गज़ प्रचलित है। गज़ दो प्रकार के होते हैं (१) गज़ी शाही, (२) गज़ी रिआयती। नापने में पहिले का ही व्यवहार होता है। दूसरा मकान और भूमि आदि नापने के काम में आता है। एक जरीब ६० × ६० गज़ी रिआयती के बराबर है। हिरात में भूमि जरीब से नापी जाती है। जरीब=६० × ६० गज़; और १ गज़=लगभग १ अँगरेज़ी गज़ के है। बड़े बड़े भूमिखंड नापने में जौज़ का व्यवहार होता है। इसका भी व्यतिक्रम गज़ की ही भाँति है। कहीं कहीं अस्सी जरीब का और कहीं कहीं सौ या उससे भी अधिक का होता है। अफ़गान-तुर्किस्तान में लम्बाई की नाप यह है— १६ तसू (१$\frac{3}{4}$ इंच)=१ क़दम (२८ इंच); १२००० क़दम=१ शंग अथवा फ़रसक (५ माईल ५३३$\frac{1}{3}$ गज़)। लम्बाई नापने का एक और पैमाना कुलाच है। यह ६ फ़ीट का होता है।

अफ़गान लोग भारतीय सेनादल में प्रविष्ट होते हैं। ये लोग अफ़गानिस्तान से भरती नहीं किये जाते परन्तु जो लोग अँगरेज़ी राज्य में आकर नौकरी करते हैं वेही लिये जाते हैं।

अफ़गानिस्तान की पुलिस शहर के कोतवाल के अधीन है। जेलखाने भी कोतवाल के अधीन रहते हैं। क़ैदियों को लम्बी सज़ा नहीं दी जाती। जो क़ैदी सरकार से भोजन पाते हैं उन्हें काम करना पड़ता है। जो लोग अपने घर से खाते हैं वे केवल नज़रबन्द रक्खे जाते हैं।

लोगों की शिक्षा पुरानी भाँति की है। मुल्ला लोग स्वयं कुसंस्कारापन्न और अबोध होने पर भी जन साधारण के शिक्षक हैं। भारत में जैसे शिक्षा के समय बालक इकट्ठे होकर शरीर का ऊपरी भाग हिला कर स्वर के साथ चिल्ला कर पढ़ते हैं अफ़गानिस्तान में भी वैसा ही है। सब से पहिले क़ुरान पढ़ाया जाता है। पढ़ना लिखना जान लेने और क़ुरान पाठ कर सकने पर ही शिक्षा समाप्त हो जाती है। जो मुल्ला अधिक शिक्षित हैं वे थोड़ा सा गणित भी जानते हैं। उत्तम स्कूल या कालेज देश में नहीं हैं जिसमें देश के बालकों को शिक्षा प्राप्त हो, इसलिये अमीर ने अनिवार्य शिक्षा का प्रचार किया है। अमीर ने भारत से शिक्षक लेजाकर काबुल में मदरसा (College) स्थापित किया है।

चिकित्साव्यवसायी पुरुषों को अफ़गानिस्तान में हकीम कहते हैं। वे लोग निदान, शवच्छेद अथवा अस्त्रचिकित्सा आदि कुछ नहीं जानते। डाकृर मिस हैमिल्टन नामक एक योरोपियन महिला अमीर की सेवा में थीं। वर्त्तमान अमीर १ लेडी डाकृर और कुछ भारतीय सब-असिस्टेंट सरजनों को नौकर रखते हैं।

—:०:—

स्वर्गवासी बाबू देवकीनन्दन खत्री ।

जिनके उपन्यासों की बदौलत आज हिन्दी-पुस्तकालयों में छोटे छोटे लड़के उपन्यासों की खोज में हैरान दिखाई पड़ते हैं, कचहरी के मुंशी लोग "चन्द्रकान्ता की क़िस्म की कोई किताब" मित्रों से मांगते फिरते हैं, बहुत से नवयुवक लेखकों और सम्पादकों की कोटि में घुसना चाहते हैं और घुसे हैं उन्हीं बाबू देवकीनन्दन खत्री का शरीरान्त १ अगस्त १९१३ को काशी में हो गया। हिन्दी-पठित समाज में उनका शोक जैसा चाहिए वैसा मनाया गया। नागरीप्रचारिणी सभा के हाल में उनका शोक मनाने के लिए पं० बालकृष्ण भट्ट के सभापतित्व में काशी-निवासी सज्जनों की एक बड़ी सभा हुई जिसमें कुछ कविताएं पढ़ी गईं और बाबू साहब के गुणों का दुःख के साथ स्मरण किया गया। सभापति महाशय ने अपने अनुभव-पूर्ण व्याख्यान में यह अच्छी तरह दिखलाया कि अपनी अनोखी प्रतिभा के बल से बाबू साहब ने हिन्दी के लिए क्या किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी पुस्तकों ने हिन्दी-पाठकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी की। आरम्भ-काल में नागरीप्रचारिणी सभा का कार्य्य भी उन्होंने कुछ सँभाला था। सभा में सब लोगों की ओर से पंचत्व-प्राप्त बाबू साहब के लिए अत्यंत शोक और उनके दुखी परिवार के साथ गहरी सहानुभूति प्रकट की गई।

—:०:—

परलोकवासी राजा साहब भिनगा ।

इधर के पुराने राज-वंशों में ऐसे बहुत कम श्रीमान् निकलेंगे जिनमें शिक्षित-समाज के उद्योगों में योग देने की प्रवृत्ति वा क्षमता हो। अधिकांश तो अशिक्षा के कारण इन उद्योगों से परिचित ही नहीं। वे नहीं समझते कि देश की उन्नति से उनका भी कोई सम्बन्ध है। पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि इन राजाओं में से कोई इन उद्योगों की ओर ध्यान दें तो बहुत शीघ्र सफलता हो सकती है। सार्वजनिक अनुष्ठानों में द्रव्य की सहायता तो साहु, महाजनों तथा और और साधारण लोगों से भी मिल सकती है पर ऐसे राजाओं की आर्थिक सहायता के साथ ही लाखों मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है जो इनके उच्च पद के कारण उनसे लगाव, वा वंश-प्रतिष्ठा के कारण इन पर श्रद्धा रखते हैं।

राजा साहब भिनगा कैसे सुशिक्षा-सम्पन्न और विद्योत्साही थे यह बात देश में छिपी नहीं है। काशी का क्षत्रिय हाई स्कूल उनके देश-कल्याणकारी दान की घोषणा कर रहा है। इस सभा का ग्रन्थ-प्रकाशन-विभाग कभी उनके द्रव्य से ख़ाली न रहा। बराबर उनकी सहायता से किसी न किसी उपयोगी पुस्तक में हाथ लगा रहा और अब तक लगा है। उनकी सहायता से सभा ने ये ये पुस्तकें लिखवाईं और लिखवा रही है—

(१) परिचर्य्या-प्रणाली
(२) वनिता-विनोद
(३) यूरोपीय दर्शन
(४) प्रबोध-चन्द्रिका
(५) राज्यप्रबन्ध-शिक्षा
(६) पूर्वीय दर्शन का इतिहास (छप रहा है)
(७) अमिताभ (Light of Asia का पद्यानुवाद—[illegible] रहा है)
(८) अध्यात्मविद्या (Deussen's Metaphysics का अनुवाद—छप रहा है)

ऐसे सहायक श्रीमान् के परलोकवास से सभा को जो वेदना हुई वह सभा ही जानती है। जुलाई में एक बड़ी भारी शोक-सभा हुई जिसके सभापति रेवरेंड ई० ग्रीव्ज़ थे। पं० रमाशंकर मिश्र एम० ए० (रिटा० कलक्टर), आनरेब्ल बा० मोतीचंद तथा और बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। ग्रीव्ज़ साहब ने परलोकवासी राजा साहब के अनेक गुणों की प्रशंसा की। इसके उपरान्त पं० केशवदेव शास्त्री ने राजा साहब के विषय में अपने अनुभव बड़े विस्तार के साथ बतलाए। उन्होंने और बहुत सी बातों के साथ यह भी कहा—"जो कार्य्य राजा साहब के चित्त में अच्छा जँच जाता था उसमें सहायता करने के लिए वे हर प्रस्तुत रहते थे, पर जिस कार्य्य को वे उपयोगी नहीं समझते थे लाख कहने पर भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते। विद्याप्रचार आदि के उद्देश्य से राजा साहब गुप्त रूप से

बहुत दान करते थे । प्रायः ऐसा हुआ है कि कोई विद्वान् या उद्योगी उनके पास गया है और उन्होंने चलते समय उसकी जेब में १००)—५०) का नोट डाल दिया है ।" सर्व सम्मति से सभा ने यशस्वी राजा साहब के परलोकवास पर अत्यन्त शोक और उनके परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट की ।

राजा साहब को अशिक्षितों और स्वार्थ-साधकों से बड़ी घृणा थी । वे इधर बहुत दिनों से एक प्रकार से एकान्त-वास करते थे । जन साधारण से, विशेष कर काशी के पंडितों से, मिलना जुलना पसन्द नहीं करते थे । इसी से पुराने ढर्रे के लोगों को उनसे सहानुभूति कम रहती थी । वे चुने चुने शिक्षितों से ही मिलते जुलते थे और उन्हीं के उद्योगों में सहायक होते थे ।

—:o:—

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के बीसवें वार्षिक अधिवेशन में

सभापति का भाषण ।

शी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवां वार्षिक अधिवेशन सोमवार ता० ४ अगस्त को हुआ था । इसका कार्य-विवरण अन्यत्र प्रकाशित है । सभापति पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० इस अवसर पर उपस्थित न हो सके । परंतु उन्होंने सभा के गत २० वर्षों के कार्य पर अपना भाषण लिख भेजा था जो उस दिन सभा में पढ़ा गया और अब यहाँ प्रकाशित किया जाता है ।—

प्रिय महाशयो !

बड़े आनन्द का विषय है कि आज हम लोग काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवां जन्मोत्सव मनाने को एकत्रित हुए हैं । सभा ने अभी थोड़े ही दिन हुए एक मंतव्य पास किया है कि उसका गत वर्ष का सभापति वार्षिक अधिवेशन के समय आप लोगों की सेवा में कुछ अवश्य कहे । उसी मंतव्य के आधार पर मैं आप महाशयों का कुछ अमूल्य समय लेने का साहस करता हूँ । ऐसे अवसर पर ऐसा करना किसी कृतविद्य और प्रसिद्ध हिन्दी-तत्त्वज्ञ का काम था और यदि ईश्वर की कृपा से इस दिन गोलोक-वासी पंडितवर मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या वर्तमान होते तो शायद आप लोग उनका महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान सुन कर प्रसन्न होते । क्योंकि गत वार्षिक अधिवेशन में उन्हीं महानुभावजी का चुनाव सभापति के उच्च पद के लिए हुआ था । पर काल की कराल गति से थोड़े ही दिनों पीछे उनका वैकुंठवास हो गया और सभा के शेष अधिकारियों ने मुझ ऐसे अनभिज्ञ को उक्त पद ग्रहण करने पर बाधित किया । मैं अपनी अयोग्यता को भली भांति जानता था, और वह उक्त अधिकारियों पर भी अवश्य ही विदित थी क्योंकि इसी कारण उन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक लिख भेजा कि तुम्हारी इस मामले में एक भी न सुनी जायगी और तुम्हें विवश यह पद स्वीकार ही करना पड़ेगा । अतः मुझे वह आज्ञा शिरोधार्य ही करनी पड़ी । अब आप महाशयों से यही प्रार्थना है कि मेरी भूलों और त्रुटियों को विसार कर जो दो चार बातें मैं आप लोगों के सम्मुख निवेदन करता हूँ उन्हें सुन लेने की कृपा करें ।

इस सभा का जन्म सन् १८९३ के जनवरी अथवा फ़रवरी मास में "कालेज के कतिपय उत्साही विद्यार्थियों" द्वारा हुआ था । "कालेज" से तात्पर्य क्वींस कालेज, बनारस से है क्योंकि सेंट्रल हिन्दूकालेज का उस समय जन्म तक न हुआ था । उन "उत्साही विद्यार्थियों" में से केवल तीन महाशय ऐसे हैं कि जो आज दिन तक सभा के सभासद बने हुए हैं और उसकी यथासाध्य सेवा करते जाते हैं । अवश्य ही आप लोगों को उनके शुभ नाम जानने की उत्कंठा होगी, अतः सुनिए । उनमें सबसे पहिले सभा के स्तम्भस्वरूप मान्यवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० हैं जो सदा ही इस सभा के मानो प्राण बने रहे हैं । इन्होंने सभा का जितना उपकार किया है उतना किसी से अब तक नहीं हो सका है, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता । सभा ही क्यों वरन मुख्यांश में उसके द्वारा बाबू साहब ने जो सेवा हिन्दी-भाषा एवं नागराक्षरों की कर दिखाई है उतनी शायद भारतेन्दु जी के पीछे दो एक महानुभावों को छोड़ और किसी से भी न बन पड़ी होगी । इन्हीं "उत्साही विद्यार्थियों" में से दूसरे पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० हैं जो सभा का सदा से बराबर उपकार और उसकी सेवा करते आए हैं और अब

तक कर रहे हैं। तीसरे महाशय का नाम बा० शिवकुमारसिंह है और इनकी हिन्दी-सेवा और इनका उत्साह परम प्रशंसनीय है। इस त्रिमूर्ति का हिन्दी और उसके रसिकों पर भारी ऋण है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि इनके नाम हिन्दी के इतिहास में चिर काल तक अचल रहेंगे। ईश्वर इन्हें चिरायु और सुयशी करे!

यद्यपि सभा का वास्तविक जन्म सन् १८९३ के प्रारम्भ में ही हो चुका था तथापि इसके नियमादि बनने और नियत रूप में हो जाने के कारण इसका जन्म-दिन १६ जुलाई १८९३ माना गया है। कुछ दिनों तक यह इधर से उधर मँगनी के मकानों में होती रही। इसका पहिला अधिवेशन नार्मल स्कूल बनारस में हुआ था। फिर किराए के मकानों में कुछ काल गुज़र किया गया और अंत को १९०१-०२ में जब कि भाग्यवश मैं भी काशी में ही प्रायः डेढ़ साल तक रहा था, सभा के स्थायी कोष के लिए चन्दा होने लगा और प्रायः तभी से सभा के इस विशाल भवन के बनने का सूत्रपात हुआ कि जिसे आप लोग इस समय सुशोभित कर रहे हैं। तारीख़ १८ फ़रवरी १९०४ को इसे हमारे भूतपूर्व छोटे लाट सर जेम्स ला टूश महोदय ने बड़े समारोह के साथ खोला था और तब से इसमें कई प्रतिभाशाली महानुभाव पदार्पण कर चुके हैं जैसे कि सर जान हिवेट, श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, सर कृष्ण गोविन्द गुप्त इत्यादि इत्यादि। इस सभा के संरक्षकों में श्रीमान् महाराजा साहब सिंधिया (ग्वालियर), श्रीमान् महाराजा साहब रीवां, श्रीमान् महाराजा गैकवाड़ बहादुर (बरोदा), और श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर हैं तथा हाल में निश्चय किया गया है कि तीन हिन्दी के अन्य प्रेमी महाराज इसके संरक्षकों में सम्मिलित किए जांय अर्थात् श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, अलवर, व बनारस। इन बातों से सभा का महत्त्व प्रगट होता है क्योंकि साधारण सभा सोसाइटियों में न तो ऐसे भव्य पुरुष ही पदार्पण कर सकते हैं और न ऐसे भारी नृपतिगण उनके संरक्षक होना स्वीकार करेंगे।

अब सभा को स्थापित हुए बीस वर्ष पूरे हो चुके हैं अतः उचित प्रतीत होता है कि उसके इतने दिनों के संक्षिप्त हाल का आप महाशयों को थोड़े ही में दिग्दर्शन कराने का कुछ प्रयत्न किया जाय। जैसे बीस वर्ष का लड़का युवा पुरुष कहलाने का अधिकारी हो जाता है उसी प्रकार जो सभा इतने दिनों सफलतापूर्वक अपना काम चला कर आगे को और भी अधिक उत्साह के साथ बढ़ रही हो उसे अवश्यही आप लोग समुचित प्रोत्साहन और सहायता देंगे कि जिसमें उसे अपनी मातृभाषा की सेवा जैसे पवित्र कर्तव्य के पालन करने में विशेष कृतकार्यता हो सके।

१—इस सभा के सभासदों की संख्या निरंतर बढ़ती ही आई है और इस बीस वर्ष के बृहद् समय में ऐसा एक साल भी न हुआ कि पहिले की अपेक्षा उक्त संख्या में न्यूनता हुई हो। केवल यही नहीं बरन सभासदों की गणना प्रत्येक वर्ष बढ़ती ही गई है। प्रथम वर्ष उनकी संख्या ८२ थी और फिर क्रम से प्रति वर्ष १४५, १४७, २०१, २२२, २४७, २७०, २९२, ३९१, ४५८, ५७६, ६६२, ६७७, ६८१, ७०४, ७४२, ७९६, ९९०, १३२२, और १३४१ रही है। इससे स्पष्ट है कि हर साल कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हुई और किसी किसी वर्ष में तो बड़ी ही संतोषजनक बढ़ती हुई है जैसे नवें, ग्यारहवें, १८ वें और विशेष करके १९ वें साल, अर्थात् सन् १९०१-०२, १९०३-०४, १९१०-११, और १९११-१२ में। कुल मिला कर २० वर्ष में ८२ से १३४१ सभासद हो जाना सभा के लिए अभिमान और गौरव की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महाशय केवल चन्दा न देने के कारण समय समय पर इस्तीफ़े दिया करते हैं पर समझने की बात है कि बिना आय के सभा अपने उद्देश्यों का पालन कैसे कर सकती है? ऐसी दशा में उसके कर्मचारियों को चन्दा के लिए तक़ाज़ा अवश्यही करना पड़ेगा और यदि इसीसे चिढ़ कर कोई इस्तीफ़ा देने दौड़े तो यही कहना पड़ेगा कि ऐसे महाशयों से सभा का जितना जल्द पिंड छूट जाय उतनाही अच्छा। कभी कभी कोई कोई महाशय मतभेद अथवा अन्य कारणों से भी ऐसा करते हैं पर इसमें भी सभा विवश है क्योंकि उसकी सारी कार्रवाई अधिक सम्मति पर ही चलती और चल सकती है। यदि आप सभा में न तो कभी आने का कष्ट उठावें और वार्षिक अधिवेशन तक के लिए किसी मित्र के नाम अपना प्रतिनिधि पत्र ही भेज कर उसके द्वारा सभा पर अपनी सम्मति प्रगट करने की कृपा करें और फिर भी अपनी इच्छा के प्रतिकूल सभा के किसी सर्वसम्मति अथवा अधिक सम्मति

द्वारा निर्धारित कार्य से रुष्ट होकर इस्तीफ़ा देने दौड़ें तो इसमें सभा या किसी व्यक्ति विशेष का क्या दोष है ? यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं यही कहने का साहस करूँगा कि इसमें आपही के निरुत्साह और अनुचित क्रोध का दोष होगा। कुछ महाशय ऐसे अहंकारी और क्रोधी होते हैं कि यदि वे एक ओर हों और सारी दुनिया दूसरी ओर हो तो भी डेढ़ अक्ल वाली कहावत के अनुसार उन्हीं की बात अवश्य ही ठीक मानी जानी चाहिए नहीं तो वे बिना बिगड़े न रहेंगे। निदान ऐसी दशाओं में सभा कुछ भी नहीं कर सकती। वह तो यही चाहती है कि उसके सदस्यों की सभी बातें चलें पर अधिक सम्मति पर चलना उसे अनिवार्य है। आनन्द का विषय है कि सब प्रकार के इस्तीफ़ों और काल गति से अनेक सभासदों के न रहने पर भी उनकी संख्या बराबर बढ़ती ही चली जाती है और आशा है कि दिन दिन उसकी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी। परन्तु इन सब बातों पर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी जाननेवालों की संख्या हज़ारों लाखों पर नहीं बरन करोड़ों पर है और उस हिसाब से हिन्दी की इस मुख्य सभा के सदस्यों की संख्या क्या दस बीस हज़ार भी न होनी चाहिए ? यदि प्रत्येक सभासद यह प्रतिज्ञा करले कि जैसे बनेगा हम सभा के लिए दश नए सदस्य ढूँढ़ निकालेंगे तो सालही दो साल के भीतर उनकी संख्या वास्तव में बहुत अच्छी हो सकती है और वैसी दशा में सभा भी वे काम करके दिखला सकती है कि जिनसे हिन्दी का आसन सचमुच ऊँचा हो जाय।

२—सभा के आय-व्यय का हिसाब देखने से वैसा संतोष नहीं होता जैसा कि उसके सभासदों के ब्योरे से। प्रथम दो वर्षों का हिसाब रिपोर्टों में नहीं लिखा है और न यह बात ऐसे महत्त्व की है कि उसकी जांच परताल इस समय की ही जाय पर इतना विदित है कि दूसरे वर्ष के अंत में प्रायः २६४) की बचत रही थी। उसके पीछे क्रम से प्रति वर्ष के आय-व्यय का ब्योरा यों है—

सन् १८९५—९६	आय प्रायः ६८२)	व व्यय प्रायः ६८३)
१८९६—९७	,, २७५)	,, ४३३)
१८९७—९८	,, ८९५)	,, ५९८)
१८९८—९९	,, ६५२)	,, ६९२)
१८९९—१९००	,, १६२९)	,, १२७३)
१९००—०१	,, २५३२)	,, २१३९)
१९०१—०२	,, ११२६२) ×	,, ३७३९)
१९०२—०३	,, ७४४०) ×	,, १३५०५) ×
१९०३—०४	,, ११९७०) ×	,, १३८२८) ×
१९०४—०५	,, १०८०६) ×	,, १२९४८) ×
१९०५—०६	,, ७८११)	,, ८१४५)
१९०६—०७	,, ७८२४)	,, ८६५६)
१९०७—०८	,, ७०८१)	,, ७२२६)
१९०८—०९	,, १४७६९) ×	,, ९९०६)
१९०९—१०	,, १०४३५)	,, ९७६६)
१९१०—११	,, ९८१५)	,, ९४८५)
१९११—१२	,, ९७२२)	,, ९९२०)
१९१२—१३	,, १६४६२) ×	,, १५९५७) ×

इस ब्योरे से विदित होगा कि सन् १९०१—०२ से सभा की आय में अच्छी उन्नति होने लगी और जिन वर्षों में विशेष आय हुई अथवा अधिक व्यय हुआ उन अंकों के सामने गुण का चिह्न (×) लगा दिया गया है। पहिले तो स्थायी कोष स्थापित होने के कारण आय में तथा सभा-भवन के बनने से व्यय में विशेषता हुई और १९०८—०९ से हिन्दी-कोश (शब्दसागर) के सम्बंध में विशेष चन्दा एवं व्यय होना प्रारम्भ हुआ। हर्ष का विषय है कि भवन कई वर्ष हुए पूरा हो गया और शब्दसागर का काम उत्तमता से चल रहा है। सबसे अधिक संतोष की बात यह है कि इस वर्ष बाबू श्यामसुन्दरदास तथा बा० गौरीशंकरप्रसाद एवं सभा के कुछ अन्य उत्साही सदस्यों और शुभचिन्तकों के उद्योग से सभा को ऋण-मुक्त करने के लिए एक विशेष चन्दा हुआ और हो रहा है कि जिस से उसके सिर का प्रायः आठ नौ वर्ष का लदा हुआ ऋण अब दूर होता देख पड़ता है। कदाचित् आप लोग यह स्वीकार करेंगे कि जिस सभा ने इतने दिनों से हिन्दी और तद्द्वारा आप लोगों की सेवा का बीड़ा उठा रक्खा है और अपने उद्देश्य में बहुत कुछ कृतकार्यता भी प्राप्त की है उसका केवल ऋण-मुक्त होना ही अलम् नहीं। अब उसका एक स्थायी कोष दृढ़तापूर्वक स्थापित ही हो जाना चाहिए

जो कम से कम एक लाख रुपये का अवश्य हो। ऐसा हो जाने से सभा की जड़ दृढ़ हो जायगी और उसका काम उत्तमता से चलता रहेगा। इतने दिनों में ऋण इत्यादि को छोड़ कर उसकी कुल २० वर्ष की आय डेढ़ लाख रुपया भी नहीं हो सकी है। इस पर विचार करने से हम लोगों को शायद कुछ लज्जा बोध होगी। अस्तु अब तक जो हुआ सो हुआ आगे के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

(३) सभा जिस उत्साह से अपना काम करती आई है सो आप लोगों से छिपा नहीं है। पहिले ही साल उसके ३६ अधिवेशन हुए और उसके पीछे प्रतिवर्ष क्रम से ३१, २८, १४, २७, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३७, ३३, ३१, २७, ३१, २९, २९, २८, २६, और २४ अधिवेशन हुए। इन में सभा के साधारण अधिवेशन २८१ और असाधारण २९ हुए तथा प्रबन्धकारिणी-समिति के २६७ हुए। इस तरह कुल मिला कर ५७७ अधिवेशन २० साल में हुए जिसका वार्षिक परता प्रायः २९ अधिवेशनों का पड़ता है जो कदापि कम नहीं कहा जा सकता। आप लोग देखते होंगे कि हमारे देश में अनेक सभाएँ स्थापित होती रहती हैं पर छः मास के पीछे उनके अधिवेशनों का पता कठिनता से लगता है। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य-संचालकों का उत्साह और उनकी कार्य-परायणता का उसके २० वर्ष के निरंतर अधिवेशनों से ही बहुत कुछ प्रमाण मिल जाता है। इतने दिनों का परता लगाने पर प्रायः हर बारहवें तेरहवें दिन एक अधिवेशन का होना पाया जाना कोई साधारण बात नहीं है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि समस्त भारतवर्ष में ऐसी बहुत सभाएँ न निकलेंगी कि जिनकी ऐसी कार्यपटुता सिद्ध हो सके। हमारा आप लोगों से फिर यही सविनय निवेदन है कि उसे और भी कार्यदक्षता प्रदर्शित कर सकने की सामग्री (अर्थात् आवश्यक धन) का प्रबंध आप महाशयों को अवश्य कर देना चाहिए।

(४) इसके प्रधान कर्मचारी अधिक नहीं बदलते रहे हैं और नीचे दिया हुआ ब्योरा शायद आप लोगों को रुचिकर हो—

सन्	नाम सभापति का	नाम मंत्री का
१८९३-९४-९५	बा० राधाकृष्ण दास;	बा० श्यामसुंदर दास बी. ए.
१८९५-९६	रायबहादुर पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र एम ए०	वही
१८९६-९७-९८	वही	बा० राधाकृष्णदास
१८९८-९९-१९००	,,	बा० श्यामसुंदरदास बी. ए.
१९००-०१	पद ख़ाली रहा	वही
१९०१-०२	रा० ब० पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम ए०	,,
१९०२-०३ से १९०५-०६ तक	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी	,,
१९०६-०७	वही	बा० राधाकृष्णदास
१९०७-०८-०९	म. म. पं० सुधाकर द्विवेदी,	बा० जुगुलकिशोर
१९०९-१०	,,	बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एलएल० बी०
१९१०-११-१२	म. म. पं० आदित्यराम भट्टाचार्य एम० ए० और पं० गौरीशंकर हरिचंद ओझा	वही तथा पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०
१९१२-१३	पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया (प्रायः ४ मास) बाद को मैं।	,,

इन महाशयों में से मुझे छोड़ और सभी ने हिन्दी एवं सभा की अच्छी सेवा की है और कतिपय तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और सहायक हो गए एवं आज दिन वर्तमान हैं।

(५) यों तो जब से यह सभा स्थापित हुई है इसने प्रायः उसी दिन से हिन्दी की सभी प्रकार परम प्रशंसनीय सेवा की है और जो जो काम इसने अपने हाथ में प्रारम्भ ही से उठा लिए और जिनका विस्तृत विवरण पहिली ही वार्षिक रिपोर्ट में दिया हुआ है उनकी सूची मात्र देखने से सभा के संस्थापकों का उत्साह पूर्ण रीति से प्रगट हो जाता है पर जिन विशेष महत्त्व के कामों को सभा ने समय समय पर किया है तथा उसके विषय में जो अन्य कथनीय बातें हैं उनका संक्षेप में यहाँ कुछ वर्णन कर देना कदाचित् अनुचित अथवा अप्रसंग न समझा जाय—

(क) नागरी अक्षरों के प्रचार में सभा प्रथम वर्ष ही से प्रयत्न करती आती है। इस सम्बन्ध में उसने कायस्थ व वैश्य कान्फ्रेंसों में डेपुटेशन भेज कर उन जातियों में इनके समुचित प्रचार कराने की चेष्टा की, तथा सन् १८९८ वाले उस महा प्रयत्न में योग दिया कि जो माननीय पं० मदनमोहन मालवीय और अन्य अनेक प्रतिष्ठित एवं उत्साही महापुरुषों द्वारा हुआ था और जिसके द्वारा गवर्नमेंट को नागरी-प्रचार के लिए बृहत्

मेमोरियल एक महा डेपुटेशन द्वारा भेजा गया था, और जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९०० में सरकार ने इन प्रांतों की अदालतों व दफ़्तरों में नागराक्षरों का प्रचार कर ही दिया। कई अंशों में इसी सभा के उद्योग से अनेक देशी रियासतों के दफ़्तरों व अदालतों में भी उर्दू के ठौर हिन्दी भाषा और नागरी-अक्षरों का प्रचार हो गया है। सभा के स्थापित होने के चौथे साल कुछ ऐसी चर्चा थी कि शायद उर्दू के स्थान में संयुक्त प्रान्त में रोमन अक्षरों का प्रचार हो जाय पर सभा ने भी इसका विरोध किया और अपने विचार सप्रमाण प्रकाशित किए। अंत को हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट ने रोमन का प्रचार करना अस्वीकार कर दिया। इसके थोड़े दिनों पीछे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उर्दू के साथ साथ संयुक्त प्रांत में नागरी अक्षरों का प्रचार हो गया। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यद्यपि हमारी न्यायशीला सरकार ने नागरी प्रचार की आज्ञा दे दी है तथापि कतिपय व्यक्तियों, जातियों, और कक्षाओं के विरोध एवं दूसरों के निरुत्साह और लापरवाई से इन अक्षरों का अभी पूरा क्या बरन थोड़ा बहुत भी वास्तविक प्रचार हमारी अदालतों व दफ़्तरों में नहीं हो पाया है। सभा इस कार्य की पूर्ति के लिए यथाशक्ति सदा से उद्योग करती आई है और उसकी ओर से कई एक लेखक कतिपय ज़िलों की कचहरियों में लोगों की दरख़ास्तें नागरी में लिखने को नियत हैं तथा इस कार्य के लिये लेखकों का उत्साह बढ़ाने को उसने पारितोषिक भी नियत किए, पर अभी कुछ भी संतोषजनक सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती! आशा है कि आप लोग इस कार्य के लिए सभा की समुचित सहायता करेंगे और स्वयं एवं अपने इष्ट मित्रों द्वारा भी इस महत् कार्य के साधन में तत्पर हो जायंगे। इसी सम्बन्ध में सभा ने प्रारम्भ ही से हिन्दी-हस्तलिपि परीक्षा भी स्थापित कर रक्खी है। यह परीक्षा समस्त संयुक्त प्रांत तथा ग्वालियर राज्य में होती है और सभा अनेक विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष पारितोषिक एवं प्रशंसा-पत्र दिया करती है।

(ख) सभा के प्रबंध से ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ और उसका प्रथम अधिवेशन सभा-भवन में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में अक्तूबर १९१० में बड़े समारोह के साथ हुआ। तब से सम्मेलन के दो और अधिवेशन प्रयाग एवं कलकत्ता में हो चुके हैं और आशा की जाती है कि वे प्रतिवर्ष होते रहेंगे तथा सम्मेलन के उद्योग से हिन्दी की अच्छी सेवा हो सकेगी।

(ग) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के लिए भी सभा ने प्रथम वर्ष से ही उत्सुकता दिखलाई है और उसी साल सभा ने भारत सरकार एवं गवर्नमेंट पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब संयुक्त प्रांत) व पंजाब, तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल को इसके बारे में प्रार्थना-पत्र भेजे। तभी से सभा इस कार्य के उद्योग में निरंतर लगी ही रही जिसका परिणाम यह हुआ कि सात वर्ष के पीछे सन् १९०० से हमारी प्रांतिक गवर्नमेंट की सहायता से सभा ही द्वारा खोज का काम प्रारम्भ हो गया। इस काम से अनेक नवीन कवियों एवं ग्रंथों का पता लगा, बहुतेरे जाने हुए कवियों के अज्ञात ग्रंथ विदित हो गए, अगणित विवाद एवं शंकापूर्ण बातों का निश्चय हो गया, कई ऐतिहासिक बातों का पता चल गया, हिन्दी के कतिपय ऐसे अंग कि जिन्हें लोग निर्मूल अथवा हीन समझते थे परिपूर्ण पाए गए, हमारा बहुत से महत्त्व के विषयों पर अज्ञान दूर हुआ (यथा हिन्दी गद्य कितना प्राचीन है, खड़ी बोली की कविता कब से होती है, इत्यादि) अगणित कवियों के सन् संवत् एवं वृत्तान्तों का ठीक पता चल गया, और ऐसे ही बहुतेरे कार्य सिद्ध हुए और होते जाते हैं। नौ वर्ष तक इस काम को बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने बड़ी ही योग्यता और उत्तमता के साथ चलाया और सन् १९०९ से इस का भार मैंने ले रक्खा है। शोक का विषय है कि इस साल से गवर्नमेंट ने अपनी २००) वार्षिक सहायता रोक दी है जिससे हम लोग बड़ी फ़िक्र में पड़े हैं क्योंकि धनाभाव से सभा अपने बाहुबल से इस कार्य को नहीं चला सकती पर उसकी परमोपयोगिता की ओर दृष्टि देने से उसके बन्द करने का साहस नहीं होता। इस साल का यश तो श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर ने लिया और इस कार्य के लिए २००) की सहायता देकर श्रीमान् ने उसे बन्द हो जाने से रोक लिया, पर आशा की जाती है कि आगामि वर्ष से हमारी विद्यारसिक गवर्नमेंट अपनी सहायता फिर से जारी कर देगी क्योंकि श्रीमान् छोटे लाट साहब ने हाल ही में सभा के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में जो कुछ श्रीमुख से भाषण किया है वह अवश्य आशाजनक है। खोज की छः वार्षिक और एक त्रिवार्षिक रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं और दूसरी त्रिवार्षिक

रिपोर्ट (१९०९–११) के छपने का प्रबंध हो रहा है। इन रिपोर्टों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है।

(घ) सभा आज कल तीन सामयिक पुस्तकें प्रकाशित करती है। (१) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका तीसरे साल से ही निकलती है और इस में बड़े गम्भीर और उत्तम लेख समय समय पर निकले हैं। पहले यह त्रैमासिक थी पर १९०८–०९ से मासिक कर दी गई है। (२) नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला १९०१ से निकल रही है और इसमें विशेषतया खोज द्वारा प्राप्त उत्तम ग्रंथ ही छापे जाते हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका है। (३) सन् १९१०—११ से एक और त्रैमासिक पत्रिका "नागरीप्रचारिणी लेखमाला" के नाम से भी निकली जाती है। सभा अपना वार्षिक विवरण भी प्रकाशित करती है। सभा के अधिवेशनों में व्याख्यान दिए जाते हैं और "सुबोध व्याख्यान" के नाम से सर्व-साधारण के लिए वैज्ञानिक एवं अन्य उपयोगी विषयों पर यथा समय और भी व्याख्यान होते हैं जिन में अकसर मैजिक लालटेन इत्यादि द्वारा लोगों का मनोरंजन तथा उनकी ज्ञानवृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है। हिन्दी एवं सभा के विशेष सहायकों और उन्नायकों के चित्र सभा-भवन में लटकाए जाते हैं। दो बार अच्छे हिन्दी-लेखकों की सूचियां भी तैयार कराई जा चुकी हैं। नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २२ व २३ पर हिन्दी के अनेक उत्तम ग्रंथों के नामादि दिए गए हैं तथा प्रायः हर साल रिपोर्ट में उस वर्ष में प्रकाशित उत्तम ग्रंथों की सूची दे दी जाती है और हिन्दी की दशा पर संक्षिप्त नोट प्रकाशित किया जाता है।

(ङ) सभा ने प्रारम्भ से ही एक पुस्तकालय खोल रक्खा है जिस में आज दिन प्रायः ६६०० पुस्तकें हिन्दी की तथा कोई ४५० अँगरेज़ी की वर्तमान हैं। इसमें अनुमान एक सौ सामयिक पत्र पत्रिकाएँ भी आया करती हैं। यह पुस्तकालय सर्वसाधारण के लिए भी देर तक सदा खुला रहता है पर इसके मेम्बर अपने मकानों पर नियमानुसार पोथियाँ मँगा सकते हैं।

कोई २५ हज़ार रुपये की लागत से सभा ने अपना भवन भी बनवा लिया है इसी के कारण उस पर ऋण हो गया था पर अब वह शीघ्र ही चुक जायगा। सभा की ७–८ शाखा-सभाएँ भी हैं पर आशा की जाती है कि वे अपने कर्त्तव्य में शिथिलता न रख कर कार्य्यपटुता दिखलाने का प्रयत्न करेंगी।

(च) समय समय पर सभा लेखकों का उत्साह बढ़ाने और उत्तम ग्रन्थ तैयार कराने के विचार से अनेक पारितोषिक, मेडल, इत्यादि देती रहती है, जैसे हिन्दी-लेखों पर मेडल, हिन्दी ग्रन्थोत्तेजक पारितोषिक, डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल, ललिता पारितोषिक, कालिदास रजत मेडल, रेडिची मेडल, राधाकृष्णदास मेडल, हिन्दी-व्याकरण के लिए ५००) पारितोषिक, इत्यादि इत्यादि। इस भांति सभा ने अपने उद्योग से अनेक उत्तम लेख और ग्रन्थ लिखाए हैं और निरंतर इस ओर सभा का ध्यान रहता है।

जिस ग्रन्थ के बनवाने का ध्यान सभा को सब से पहले हुआ था वह हिन्दीसाहित्य का इतिहास है। (उसके प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पृष्ठ ८–१० देखिए।) यह हमारे सौभाग्य की बात है कि सभा ने इतने महत्त्व का काम हमें सौंपा और हम (मिश्र-बंधुवों अर्थात् पं० गणेशविहारी मिश्र, मैं, और शुकदेवविहारी मिश्र) ने इस काम को पूरा कर दिया। सभा की आज्ञा प्राप्त करके इस ग्रन्थ को जिस में प्रायः १८०० पृष्ठ होंगे प्रयाग की हिन्दी-ग्रन्थप्रसारक मंडली इंडियन प्रेस में छपा रही है। शायद इसी साल के अंत तक यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेगा।

(छ) जब से सभा स्थापित हुई है बराबर वह हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों को तैयार कराती और प्रकाशित करती रही है। इनमें से कतिपय नामी ग्रंथों में से यह है—

१—तुलसीदास का रामचरितमानस अर्थात् प्रसिद्ध रामायण। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण अनेकों प्रेसों में भारतवर्ष के सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के प्रायः सभी नामी स्थानों में प्रकाशित हुए हैं पर जहाँ तक हमारे देखने में आया है ऐसा शुद्ध और सर्वांगपूर्ण संस्करण कहीं भी नहीं निकला।

२—चन्दबरदाई के प्रसिद्ध रासो का इतने दिनों तक न छपना हिन्दी के लिए लज्जा का विषय था। इस बड़े अभाव को दूर करके सभा ने बड़े महत्त्व का काम कर डाला

है । प्रायः यह पूर्ण ग्रन्थ अब छप चुका है और शेषांश के कुछ ही महीनों में निकल जाने की आशा है ।

३—हिन्दी-वैज्ञानिक-कोश (the Hindi scientific glossary) के छपने से वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिखने एवं अँगरेज़ी से अनुवाद करने में लेखकों को बड़ा सुभीता होने लगा है और सदा होगा । वैज्ञानिक विशेष शब्दों के लिए हिन्दी में समुचित शब्द मिलते ही न थे और बड़ी गड़बड़ी एवं अड़चन पड़ा करती थी । यह सब कठिनाइयां अब दूर हो गईं । सभा ने बड़े परिश्रम और विचार के साथ यह कोश तैयार किया है ।

४—वनिताविनोद अर्थात् स्त्रियों के पढ़ने योग्य एक उत्तम ग्रन्थ जिस में कई बड़े ही विशद निबंध हैं । इसका बँगला और शायद मराठी या गुजराती में भी अनुवाद हुआ है ।

५—अनेक पाठ्य पुस्तकें अर्थात् पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लायक़ किताबें जिन का प्रचार भी हुआ ।

६—हिन्दीसाहित्य का इतिहास जिस का ब्योरा ऊपर दिया जा चुका है ।

७—संक्षेप लेख-प्रणाली अर्थात् हिन्दी-त्वरित-लेखन (Hindi short-hand) जो छप कर तैयार हो गई है । इसके परिपक्व हो जाने पर एक भारी अभाव की पूर्ति हो जायगी ।

८—अनेक नामी और उत्तम ग्रन्थ जिनका सम्पादन और प्रकाशन ग्रन्थ-माला द्वारा हुआ है ।

९—सब से बढ़ कर काम जो सभा अब कर रही है वह "हिन्दी-शब्द-सागर" अर्थात् हिन्दी-भाषा का विस्तृत कोश है । इसके बनाने का भी ध्यान सभा को पहिले ही वर्ष हुआ था और उसने श्रीमान् महाराजा साहब दर्भंगा की सहायता इस कार्य्य के लिए तभी मांगी थी । अभी इसके बनने में ५०,०००) के व्यय का बजेट हुआ है । इसका पूरा ब्योरा सभा की रिपोर्ट में मिलेगा पर इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह बड़े ही महत्त्व का काम है और इसके तैयार हो जाने से हिन्दी की एक भारी त्रुटि दूर हो जायगी । सभा ने इसके लिए ५०००) का पारितोषिक इसके सुयोग्य सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दासजी को देना चाहा और उसके न लेने पर १००) मासिक का पुरस्कार स्वीकार करने को उनसे कहा पर उन्होंने दोनों ही बातें अस्वीकार कर यह महत् कार्य्य बिना कुछ लिए ही करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है । काम भली भांति चल रहा है और आशा है कि वह शीघ्र पूर्ण हो जायगा ।

निदान सभा से जहां तक हो सकता है वह तन, मन, धन से हिन्दी की सेवा कर रही है । आशा है कि आप महाशय गण उसका दिनों दिन उत्साह बढ़ाते ही जाइएगा । अब मैं आप लोगों का बहुत सा अमूल्य समय नष्ट कर चुका हूँ और विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । आप लोगों से क्षमा मांगता हुआ अब मैं इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करता हूँ ।

श्यामविहारी मिश्र
सभापति, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ।

—:o:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के गत २० वर्षों के आयव्यय का लेखा ।

[जुलाई १८९३ से जून १९१३ तक]

आय का ब्योरा		धन की संख्या		
		रुपया	आना	पाई
सभासदों का चन्दा	...	२४६२२	१४	३
विशेष चन्दा	...	३०६२	...	...
पुस्तकों की बिक्री	...	१२५८०	१५	८
ब्याज	...	७७	१३	१०
फुटकर आय	...	२४१२	८	२
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	...	४२६०	...	...
गवर्नमेंट की सहायता	...	८१२०	८	...
स्थायी कोश	...	२८३१६	१२	४
पुस्तकालय	...	६७०४	१३	६
पृथ्वीराजरासो	...	७०६८	७	७
सम्मेलन	...	१४३१	४	६
नागरीप्रचार	...	९४६	३	७½
पारितोषिक	...	३६०	...	...
अमानत	...	११२७	११	३
राधाकृष्णदास-स्मारक	...	२१७	४	...
हिन्दी-कोश	...	२५१८६	१४	११
उधार	...	१७४००	...	...
		१४४४९६	३	७½

व्यय का ब्योरा	धन की संख्या		
	रुपया	आना	पाई
छपाई ...	२०८१७	८	३
कार्य्य-कर्ताओं का वेतन ...	६२४६	१५	१०
डाकव्यय ...	४६३७	...	६
फुटकर व्यय ...	५६४७	१२	६
पारितोषिक ...	१०२७	११	...
नागरीप्रचार ...	३१४६	७	३
मकान का किराया ...	५६६	...	...
साहित्य-सम्मेलन ...	१५२३	१	१½
पुस्तकालय ...	७०८४	११	५
पुस्तकों के लिये पुरस्कार ...	२८५५	२	...
पृथ्वीराजरासो ...	६६०४	...	६
हिन्दी-पुस्तकों की खोज ...	७२०१	१४	३
स्थायी कोश ...	३२४६१	६	५
ब्याज ...	१२३	३	३
हिन्दी-कोश ...	१८१३८	१३	६½
मरम्मत ...	७८	१३	१०½
उधार ...	१४२०५	...	...
अमानत ...	१२४३	५	...
राधाकृष्णदास-स्मारक ...	१३१	...	...
	१३७०७३	१	११½
बचत...	७४२३	१	८
	१४४४९६	३	७½

—:o:—

नाम उन महाशयों के जिन्होंने गत २० वर्षों में सभा की सहायता ५००) वा उससे अधिक से की।

	रुपया	आना
संयुक्तप्रदेश की गवर्नमेंट	१४१२०	८
स्वर्गवासी श्रीमान् राजर्षि भिनगा-नरेश	४७५०	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर रीवाँ	४१४६	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर छत्रपुर	३३३०	...
भारत गवर्नमेंट	३०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बीकानेर	२५००	...
एक सहायक (राजकोट निवासी)	२२५०	...
राय शिवप्रसाद	२०००	...
राजा कमलानन्दसिंह	२०००	...
श्रीमान् महाराजाधिराज बर्दवान	२०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बनारस	२०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर भावनगर	१५००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अलवर	१५००	...
आनरेब्ल डाक्टर सुन्दरलाल सी० आई० ई०	१५००	...
श्रीमान् ग्वालियर-नरेश	१०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर काश्मीर	१०००	...
श्रीमान् गायकवाड़ बहादुर बड़ोदा	१०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अयोध्या	१०००	...
आनरेब्ल बाबू मोतीचन्द	८५०	...
राजा माधवलाल सी० एस० आई	५१५	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर इन्दौर	५००	...
राय राधारमण	५००	...
राजा बलवंतसिंह	५००	...

—:o:—

सभा का कार्य-विवरण

प्रबन्धकारिणी-समिति

(१) गत अधिवेशन (ता० २८ जून १९१३) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) मंत्री ने १ जूलाई १९१३ से ३० जून १९[illegible] तक के आय-व्यय का हिसाब उपस्थित किया। निश्चय [illegible] कि सन् १९१२—१३ के व्यय के लिये जो बजेट स्वी[illegible] है उसमें निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किया जाय—

	बजेट	संशोधन
आफ़िस के कार्यकर्ता	१०४६)	११३०)
छपाई	३२००)	२३००)
पारितोषिक	१६०)	६०)
पुस्तकालय	५००)	८००)
पृथ्वीराजरासो	१२००)	६१०)
स्थायी कोश	६६०)	७००)
पुस्तकों की खोज	५००)	१०००)
नागरी-प्रचार	५००)	५५०)
डाकव्यय	५००)	७६०)
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	३५०)	६०५)
फुटकर व्यय	३२०)	५७०)
बनारस बंक को देना	५८३६।।।)७	५६८७।।।)७
व्याज	०	५०)
	१४८०२।।।)७	१४८०२।।।)७

(३) आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित बजेट स्वीकृत हुआ।

आमदनी

७४२३-)८	गत वर्ष की बचत
१२०।≡)।	अमानतखाते की बचत
३०००)	सभासदों का चन्दा
१०००)	पुस्तकों की बिक्री
११५०)	पुस्तकों की खोज
८००)	पृथ्वीराजरासो की बिक्री
३४००)	स्थायी कोश
२५)	नागरी-प्रचार
३००)	फुटकर
५०)	पारितोषिक
६५०)	पुस्तकालय
२५००)	हिन्दीभाषा का कोश
१५)	साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण की बिक्री
२०४३३॥)११	

खर्च

१२००)	आफ़िस के कार्यकर्ता
२४५०)	छपाई
१००)	पारितोषिक
६२६)	पुस्तकालय
७५०)	पृथ्वीराजरासो
२००)	स्थायी कोश
६००)	पुस्तकों की खोज
१६०)	नागरी-प्रचार
६००)	डाकव्यय
३००)	पुस्तकों के लिये पुरस्कार
३७६)	फुटकर व्यय
८२४८-)१/२	हिन्दी-कोश
३१६५)	बनारस बंक का देना
१६१०८-)११/२	

व्यय का व्योरा

छपाई

पत्रिका की १३ संख्याएं	६५०)
ग्रन्थमाला की ५ संख्याएं	६२५)
लेखमाला	४५०)
बीसवें वर्ष का कार्य-विवरण	१५०)
फुटकर	२७५)
	२४५०)

पुस्तकालय

पुस्तकाध्यक्ष	१४४)
चपरासी	६६)
दफ़्तरी	१३२)
दफ़्तरी का लड़का	२६)
पंखाकुली	१८)
पुस्तकें	२००)
अलमारी	३०)
	६२६)

कार्यकर्त्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री	६००)
क्लार्क १	१८०)
क्लार्क २	१२०)
चपरासी १	८४)
चपरासी २	६६)
मेहतर	१२)
पंखाकुली	१४)
माली	२४)
दफ़्री	६६)
फुटकर	४)
	१२००)

(४) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के चुनाव के लिये ५ सज्जनों के नाम निर्वाचित करने के लिये लिखा था। निश्चय हुआ कि इसके लिये निम्न लिखित सज्जनों के नाम निर्वाचित किए जांय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, लाला मुंशीराम और बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु कवि)।

(५) बाबू भगवानदास एम० ए० और बाबू गौरीशंकर-प्रसाद बी० ए० एलएल० बी० का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से प्रार्थना की जाय कि वे हिन्दी-शब्दसागर के सम्पादन में अपना पूरा समय लगा कर उस कार्य को करें और कम से कम १००) रु० का मासिक आनरेरियम कृपापूर्वक स्वीकार करें। साथ ही इस सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदासजी का पत्र भी उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने इसे अस्वीकार किया था। (यहां पर बाबू श्यामसुन्दरदासजी चले गए और पण्डित रामनारायण मिश्र ने सभापति का आसन ग्रहण किया)।

निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से निवेदन किया जाय कि यह प्रस्ताव आनरेरियम के लिये है, वेतन के लिये नहीं। सभा की सम्मति में वे इस आनरेरियम को स्वीकार करने से काशी में रह कर अन्य सब कार्यों से ख़ाली रह कर अपना पूरा समय कोश के कार्य में दे सकेंगे जिससे सभा को बहुत बड़ा लाभ होगा। बाबू साहब को वे सब अधिकार पूर्णतया प्राप्त रहेंगे जो इस समय उन्हें प्राप्त हैं और वे इस सभा की प्रबन्धकारिणी समिति आदि के सभासद उसी प्रकार रहेंगे। बाबू साहब से प्रार्थना की जाय कि जिस प्रकार अब तक वे सभा से आन्तरिक हित रखते आए हैं उसी प्रकार सभा के लाभ की ओर ध्यान कर इस प्रस्ताव को स्वीकार करें जिसमें कोश का कार्य भली भांति शीघ्र तथा निर्विघ्न समाप्त हो। साथही यह भी निश्चय हुआ कि मंत्री सर्व-साधारण की सूचना के लिये एक पत्र प्रकाशित करदें जिसमें यह भली भांति प्रकट करदें कि सभा ने बाबू श्याम-सुन्दरदासजी को उनकी इच्छा के विरुद्ध किस प्रकार आनरेरियम लेने के लिये बाध्य किया है और इससे सभा का कितना कुछ हित साधन हो सकेगा।

(६) बाबू इन्द्रजी भगवानजी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि उन्हें छः आने रुपये के हिसाब से कमीशन दिया जाय तो वे अन्त्येष्टिदीपिका और गोभिलीय गृह्यकर्मप्रकाशिका की जितनी प्रतियां सभा के पास हैं उन सब को नगद मूल्य पर ले लेंगे। निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी-समिति

शनिवार तारीख १२ जुलाई १०१३—सन्ध्या के छः बजे (१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू बाल-मुकुन्द वर्मा के अनुमोदन पर बाबू शिवकुमारसिंह सभापति चुने गए।

(२) सभा के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और आवश्यक संशोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

(३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

वार्षिक अधिवेशन।

सोमवार तारीख ४ अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा बाबू जगन्मोहन वर्म्मा के अनुमोदन पर डाक्टर प्रियवरुण सभापति चुने गए।

(२) पंडित श्यामविहारीमिश्र एम० ए० का तार उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आज के अधिवेशन में अपनी अनुपस्थिति पर दुःख प्रकट किया था। निश्चय हुआ कि पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय।

(३) प्रबन्धकारिणी-समिति के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(४) सभा के सभापति पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी का व्याख्यान पढ़ा गया जिस पर सभा ने बड़ा हर्ष प्रकट किया।

(५) बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित सय्यूं-नारायण त्रिपाठी के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकरप्रसादजी ने कृपापूर्वक मंत्री का पद स्वीकार कर अपना जो बहुमूल्य समय सभा के कार्यों में लगाया और उन्होंने जिस योग्यता और उत्साह से कार्य्य सम्पादन किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(६) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा के ११ वें नियम में जो दो उपमंत्री के चुने जाने का विधान है उसके स्थान पर एक ही उपमंत्री चुना जाया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सभासदों में निर्वाचन-पत्र बाँटे गये और उनका परिणाम जांचने के लिए सभापति ने बाबू केशवदास और पण्डित निष्कामेश्वर मिश्रजी को नियत किया।

(८) सन् १९१२–१३ के आय-व्यय के हिसाब के सहित अगामी वर्ष के लिये प्रबन्धकारिणी-समिति द्वारा स्वीकृत बजेट उपस्थित किया गया।

बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा साहब छत्रपुर, श्रीमान् महाराजा साहब अलवर और श्रीमान् काशीनरेश हिन्दीभाषा और इस सभा के बड़े सहायकों में हैं अतः ये नृपतिगण इस सभा के संरक्षक चुने जांय।

(१०) निश्चय हुआ कि जिन महाशयों को सभा ने इस वर्ष मेडल देना निश्चित किया है उन्हें वार्षिकोत्सव पर मेडल दिए जांय।

(११) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की अब कोई आवश्यकता नहीं रही है और उसका सब काम वास्तव में प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता है अतएव वह बोर्ड उठा दिया जाय और उस सम्बन्ध के नियम ४९–६४ के स्थान पर नए नियम स्वीकार किये जांय।

निश्चय हुआ कि सभा के नियम ६३ के अनुसार पहिले यह प्रस्ताव बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के सम्मुख उपस्थित किया जाय।

(१२) निर्वाचन पत्रों का निम्नलिखित परिणाम सूचनार्थ उपस्थित किया गया—

सभापति

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०,

उपसभापति

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

रेवरेंड ई० ग्रीव्स

मंत्री

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एलएल० बी०

उपमंत्री

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासद्

बंगाल से—बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

बिहार से—पण्डित रामावतार पांडेय एम० ए०

पंजाब से—राय मूलराज

काशी से—बाबू माधवप्रसाद

पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय

बाबू जयशंकरप्रसाद

राय शिवप्रसाद

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार ता० ३० अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान-सभाभवन

(१) तारीख़ २८ जून के साधारण अधिवेशन और

४ अगस्त के वार्षिक अधिवेशन के कार्य्यविवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ३१ मई १९१३ और २८ जून १९१३ के कार्य्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(३) सभासद् होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—(१) बाबू गुरुप्रसाद बी० एस०सी०, ला कालेज, इलाहाबाद १॥) (२) पण्डित कालूराम त्रिवेदी, ठि० रेखाराम रामेश्वर, ससराम १॥) (३) बाबू कौशलानन्द सहाय बी० ए०, एम० बी० प्रोफ़ेसर, हिन्दू-कालेज, काशी १॥) (४) बाबू रामकुमार साहु, रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट, ठाकुरद्वारा, ज़िला मुरादाबाद १२) (५) बाबू शिवप्रसाद सिंह, चेतगंज, काशी १॥) (६) पण्डित विद्याधर मोतीराम शर्म्मा, ठि० सेठ वंशीलालजी की दुकान, हथरुण, बरार ३) (७) बाबू गोवर्द्धनदास, ठि० मिसर्स गोवर्द्धनदास एण्ड को०, लाहोर ५) (८) बाबू राधेश्याम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (९) बाबू सीताराम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (१०) पण्डित जयदेव शास्त्री, प्रधानाध्यापक, संस्कृत पाठशाला, परस्पुर, गोंडा ३) (११) बाबू चिरंजीलाल, मेनेजर, सेठ अमृतलाल गुलज़ारीलाल जिनिंग फ़ेक्टरी, फ़ीरोज़ाबाद १॥) (१२) पण्डित दुर्गाप्रसाद गौड़ ज़मींदार, महल्ला अलीगंज, बांदा १॥) (१३) बाबू शूरजी वल्लभदास वर्म्मा, पोस्ट नं० ३, बम्बई ५) (१४) पण्डित रघुनन्दन शर्म्मा, फ़ारेस्ट आफ़िसर, सरगूज़ा स्टेट ५) (१५) बाबू प्रियानाथ बसाक, ट्रेनिंग कालेज, जबलपुर १॥) (१६) बाबू मन्नालाल, रायपुर होस्टल, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१७) पण्डित बेनीप्रसाद तिवारी, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१८) बाबू बैजनाथ प्रसाद, गवर्नमेण्ट कालेज बोर्डिङ्ग, जबलपुर १॥) (१९) बाबू जगन्नाथ प्रसाद मालवीय, गवर्नमेण्ट कालेज, जबलपुर १॥) (२०) लाला रुद्रनाथसिंह, सभापति, हिन्दीहितैषिणी सभा, धेनुगावा पो० बेलवा जि० बस्ती ५) (२१) बाबू हरिबक्स मरोदिया, ११३ मनोहरदास का कटरा, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता ५) (२२) बाबू गिरिजाप्रसाद, हनुमान फाटक, काशी १॥)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए (१) पंडित साधुशरण पांडे, मुदरिंस, शिवपुर दियर पो० भरसर जि० बलिया, (२) पंडित सत्यदेव राम त्रिपाठी, ग्राम कोल्हुआ पो० हरिहर पुर, ज़ि० बस्ती, (३) बाबू लक्ष्मणप्रसाद वकील, लखनऊ, (४) पंडित कृष्णानन्द, अध्यापक, दुरावल पो० शाहगंज, जि० मिर्ज़ापुर, (५) पंडित गोपीनाथ तिवारी, हेड मास्टर, मिडिल स्कूल बगहा, जि० चम्पारन, (६) बाबू शिवनन्दनप्रसाद, सेकेण्ड मास्टर, मिडिल स्कूल, बगहा, जि० चम्पारन, (७) बाबू जगपति राय, ४१ अवधगर्बी, काशी।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं—

संयुक्त प्रदेश की गवर्मेण्ट।

General Report on Public Instruction for the year ending 31st March 1912.
Sacred Books of the Hindus Vol. V, VII and XII.

बाबू भगवानदास हालना, हाथरस

रामायण 'पीयूषधारा टीका सहित'

पण्डित रामेश्वरदत्त जोषी, बीबी हटिया, काशी

नसीरुद्दीन हैदर

पण्डित दुर्गाप्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेतरिया, साग[illegible]

सेलिमा बेगम

बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, काशी

तुलसी शिक्षावली

पण्डित गुरुसेवक उपाध्याय बी० ए०, डिपटी कलेक्टर, गोरखपुर

जातिसुधार

बाबू श्यामलाल, जनरल पब्लिशिंग कम्पनी, मेरठ

सलाइयों की बुनावटें

पण्डित इन्द्रमल शर्म्मा, हाकिम, नागोर, मारवाड़

श्रीलघुस्तवराज

पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागंज, प्रयाग

भारत में मन्दाग्नि

मंत्री, जीवदयाविभाग, भारतजैन महामण्डल, ललित[illegible]

अहिंसा २ प्रति

पण्डित सूर्यदत्त शर्म्मा मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल विद्या[illegible] होशंगाबाद

धर्मोपदेशरत्नमाला

पण्डित विश्वनाथप्रसाद दुबे, मास्टर हिं० मि० स्कूल, आरंग
एडवर्ड काव्य

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, जैनमित्र कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई,
अनुभवानन्द

ठाकुर रामहर्षसिंह वर्म्मा, मंत्री आर्यसमाज, कटावां, ज़िला सुलतांपुर
क्षत्रियसभासंजीवनी

बाबू कन्हैयालाल, जौहरी टोला, काशी
मधुपलतिका प्रथम भाग, कनककुसुम

पण्डित रामलग्न त्रिपाठी, ब्रह्मपुर, गोरखपुर
शिवनिर्माल्यग्रहणमीमांसा

बाबू शिवप्रसाद खरे, डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपरेण्टेण्डेण्ट का दफ़्तर-फ़ैज़ावाद
आत्मबोध

बाबू राजेन्द्रनाथ मित्र, हिन्दी स्कूल, भवानीपुर, कलकत्ता
ज्ञानोदय

भट्ट श्रीबलभद्र शर्म्मा, बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई
सिद्धान्तसिद्धापगा

बाबू तेजूमल मुरलीधर कनल, उत्तम खैराती भंडार, अहमदावाद
हमारे देश की प्राचीन उन्नति

स्वामी सच्चिदानन्द जी, काशी
आर्यसमाज और सनातनियों में जो विवाद हुआ करता है उसका समाधान

श्रीमती विद्यावती देवी, ठी० बाबू कालिन्दीपतिराय, कमाल की इमली, काशी
विद्यापुकार

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, बनारस
Annual Administration Report for 1912–13.

बाबू हरिदास माणिक, मिश्र पोखरा, काशी
मेवाड़ का उद्धारकर्ता
महाराणा सांगा और बाबर
भारत की प्राचीन झलक दूसरा भाग
माणिक आदर्श अर्थात् राजपूतों की बहादुरी पहिला भाग।

बाबू ब्रजचन्द्र, चौखम्भा, काशी।
Catalogue of the Archeological Museum at Mathura.

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, बम्बई
ब्रिटिश हिन्दुस्तान नो आर्थिक इतिहास द्वितीय भाग (गुजराती)
लंडार ना काल्पनिक संवाद द्वितीय भाग ,,
सामाजिक सेवा ना सन्मार्ग ,,
अरिस्टोटल नो नीति-शास्त्र ,,
अकबर ,,
मलेरिया ताव ,,
करवसनर ने उदारता ,,

पंडित बटुकप्रसाद मिश्र, सराय गोवर्द्धन, काशी
ब्राह्मणोत्पत्तिभास्कर

विश्वेश्वर फ़ार्मेसी, काशी
संतानरक्षा

बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी
कर्मवीर गान्धी २ प्रति

पंडित भीमसेन शर्म्मा, महाविद्यालय, ज्वालापुर, सहारनपुर
संस्कारचन्द्रिका

पंडित शंभूदयाल तिवारी, उदयपुर
व्याधिमर्दनामृत शिवस्तोत्रकाव्यम्

भारत की गवर्नमेन्ट
Fauna of British India Vol III, Fauna Diptera Nomotocera excluding Chironomide and Gulidide

पंडित गुरुदयाल त्रिपाठी वकील, रायबरेली
सांवले रामवंशचरित्र

जैनमित्रकार्यालय, बम्बई
नित्यनेम पूजा भाषा द्वितीय भाग

खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त
नारी उपदेश, उत्तररामचरित छाया, लक्ष्मी बहू, प्रेमलता, सावित्री सत्यवान, शांता, लक्ष्मी, कर्मवीर, सांसारिक सुख, आदर्श बहू, सीताराम,

कन्याप्रबोध, कन्यापत्रदर्पण, जान स्टुअर्ट मिल का जीवनचरित, स्वाधीनता, प्रतिभा, सीतादेवी, रणवीर अभिमन्यु, आर्यगौरव, आर्यसंगीत-शतक, भारतमय स्वप्न, अपूर्व संग्रह, पद्यप्रबोध, दयानंदचरित, वैदिकविवाहादर्श, स्वाधीन विचार, घटनाघटाटोप, अर्थ में अनर्थ भाग १ और २, भूतनाथ की जीवनी छठा भाग ।

Indian Antiquary for June 1913 and Index Vol XLI of 1912

प्रेम और पवित्र जीवन

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:o:—

प्रबन्ध-कारिणी समिति

शनिवार तारीख़ ३० अगस्त १९१३ संध्या के ५¾ बजे

स्थान सभा-भवन

(१) तारीख़ ७ जुलाई और १२ जुलाई १९१३ के कार्य-विवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए ।

(२) निश्चय हुआ कि इस वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और उसके सहायक सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा नियत किये जांय । नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, लेखमाला के सम्पादक पंडित चन्द्र धर शर्म्मा, सुबोध व्याख्यान के निरीक्षक पण्डित रामनारायण मिश्र, आर्यभाषा पुस्तकालय के निरीक्षक बाबू बृजचन्द्र और नागरीप्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एलएल बी० इस वर्ष भी रहें ।

(३) निश्चय हुआ कि पंडित सरयूनारायण त्रिपाठी से प्रार्थना की जाय कि लेखमाला में जो ग्रीस का इतिहास और स्त्रियों के रोग नामक ग्रन्थ छप रहे हैं उनका सम्पादन वे कृपापूर्वक कर दें ।

(४) मंत्री ने सूचना दी कि इस वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने अथवा उनके सम्बन्ध में सम्मति न भेजने के कारण १३वें नियम के अनुसार उस समिति में रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, पण्डित माधवप्रसाद पाठक, बाबू जुगलकिशोर और कवि गोविन्द गिल्ला भाई के स्थान खाली हुए हैं ।

निश्चय हुआ कि इन स्थानों पर ये ही सज्जन पूर्ववत् नियत रहें ।

(५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष प्रबन्ध-कारिणी-समिति के प्रधान बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० और उसके उप-प्रधान पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० चुने जांय ।

(६) निश्चय हुआ कि मंत्री और उपमंत्री का कार्य-विभाग इस वर्ष किस प्रकार किया जाय इसे वे लोग स्वयं निश्चित करलें ।

(७) हरदोई के नागरी-प्रचारक पुस्तकालय और टुंडला के आनन्दभवन पुस्तकालय के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें इन्होंने सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के लिये प्रार्थना की थी ।

निश्चय हुआ कि इन पुस्तकालयों को प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्ध मूल्य पर दी जाय ।

(८) बाबू माधवप्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा अन्यत्र की उत्तम और उपयोगी पुस्तकों को अपनी पुस्तकों के परिवर्तन में लेकर उनकी बिक्री भी किया करे ।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव इस समिति में बाबू माधव-प्रसादजी की उपस्थिति में विचारार्थ उपस्थित किया जाय ।

(९) वेतनवृद्धि के लिये बनारस की दीवानी अदालत के मोहर्रिर पण्डित काशीनाथ नायक पालना का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि १ नवम्बर १९१३ से इनके वेतन में १) रु० की मासिक वृद्धि की जाय ।

(१०) पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा पण्डित रामावतार पाण्डेय से हिन्दी में एक समाजशास्त्र लिखवावे और महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी भाषा का विशेष उपकार किया है अतः उनका एक चित्र सभा-भवन में लगवाया जाय ।

निश्चय हुआ कि समाजशास्त्र-विषयक प्रस्ताव पण्डित रामावतार पाण्डेयजी की सम्मति के सहित समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय और महर्षि दयानन्द का एक चित्र सभाभवन में लगाया जाय ।

(११) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास

जीवनचरित के लिये सभा ने उन्हें जो पदक देना निश्चित किया है उसे सभा किसी अन्य उपयोगी लेख के लिये अन्य सज्जन को देने के काम में लावे।

निश्चय हुआ कि पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय और लिखा जाय कि यह मेडल उन्हें महाराज कुमार बाबू कृष्णप्रसाद सिंह की ओर से दिया गया है अतः इसे और किसी काम में लाने का सभा को अधिकार नहीं है।

(१२) पण्डित राजमणि त्रिपाठी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा व्यवहारपत्र दर्पण का एक संशोधित संस्करण तैयार करावे और इसके लिये यदि आवश्यक होगा तो वे सभा को अपने नोट्स भेज देंगे।

निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में उनसे नोट्स मंगवाए जांय।

(१३) पण्डित जगन्नाथ पुच्छरत का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सभा द्वारा एक रौप्यपदक उस विद्यार्थी को दिया चाहते हैं जो "राजयक्ष्मा के कारण और उससे बचने के उपाय" पर एक सर्वोत्तम लेख लिखे।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यदि वे इस पदक को वैद्य सम्मेलन के द्वारा दें तो उत्तम होगा।

(१४) पण्डित कामताप्रसाद गुरु का १६ अगस्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने हिन्दी-व्याकरण के प्रथम भाग की संशोधित प्रति भेजी थी और इसे पूरा करने के लिए आठ मास का समय और मांगा था।

निश्चय हुआ कि समिति ने इसे साधारण दृष्टि से जहाँ तक देखा है यह संतोषजनक हुआ है। इसे समाप्त करने के लिये पण्डित कामताप्रसादजी को आठ मास का समय और दिया जाय।

(१५) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय के मंत्री का पत्र उपस्थित गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनके भाद्रपद कृ० १ के निश्चय नं० ७ और १२ में लेखों की जो विषय-सूची दी है उन विषयों पर सभा अपने सभासदों से लेख लिखवा कर सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के पास भेजवा दे।

निश्चय हुआ कि सभासदों की सूचना के लिये इस विषय में एक नोट नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दिया जाय।

(१६) जालन्धर से निकलनेवाले "भारत" नाम के उर्दू समाचारपत्र के सम्पादक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने पत्र के परिवर्तन में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका दिए जाने के लिये लिखा था।

निश्चय हुआ कि एक वर्ष तक उन्हें बिना मूल्य पत्रिका दी जाय।

(१७) पुस्तकालय के निरीक्षक के नाम पुस्तकाध्यक्ष का ३० अगस्त १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) एक ही पुस्तक की दो दो तीन तीन प्रतियाँ होने के कारण जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाल दी गई हैं उनके स्थान की पूर्ति के लिये १५० नवीन पुस्तकों के क्रय करने की आवश्यकता है (ख) पुस्तकालय के कई सहायकों के यहाँ बहुत दिनों का चन्दा और कुछ पुस्तकें रुकी हुई हैं जिन्हें वे महाशय निरन्तर तगादा करने पर भी नहीं देते (ग) पुस्तकों के जिल्द बाँधने का कार्य सन्तोषजनक नहीं हो रहा है।

निश्चय हुआ कि (क) क्रय करने के लिये डेढ़ सौ पुस्तकों की सूची समिति के सम्मुख उपस्थित की जाय और जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाली गई हैं वे नीलाम द्वारा बेच डाली जाँय, (ख) जिन सहायकों के यहाँ ३ मास से अधिक का चन्दा बाकी पड़ गया हो उनके नाम नियम ७१ के अनुसार सहायकों की नामावली से अलग कर दिए जांय और आगे से इस नियम पर विशेष ध्यान रक्खा जाय। चन्दे का जो रुपया और जो पुस्तकें सभासदों के यहाँ रुक गई हैं उन्हें उचित कार्रवाई द्वारा प्राप्त करने के लिये सब आवश्यक पत्र मंत्री के पास भेजे जाँय, (ग) पुस्तकालय का दफ़्तरी सब कार्यों के पहिले पुस्तकों की जिल्द बाँधने का कार्य देखे।

(१८) बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि जो सज्जन सम्पूर्ण पृथ्वीराजरासो एक साथ मँगावें उनसे इसका मूल्य केवल २४) रु० लिया जाय और सभा के स्टाक में सम्पूर्ण ग्रन्थ की जितनी प्रतियां हों अलग अलग बंडलों में बँधवा ली जांय।

(१९) वेतन वृद्धि के लिये सुखनन्दन मिश्र चपरासी का प्रार्थना पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि १ सितम्बर १९१३ से उसे ७॥) रु० मासिक वेतन दिया जाय।

(२०) बाबू श्यामसुन्दरदासजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि भरोस कहार के मासिक वेतन में इस मास से १) रु० की वृद्धि की जाय और यह एक रुपया कोश-विभाग से उसे दिया जाय।

(२१) बाबू गौरीशंकरप्रसादजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए० एल एल० बी० जिन्होंने एक एक सौ रुपया सभा के सहायतार्थ दिया है वे इस सभा के स्थायी सभासद चुने जांय और उनके चन्दे का रुपया स्थायी कोश में जमा करके ऋण चुकाने के काम में लाया जाय।

(२२) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद मंत्री।

विशेष सूचना।

सभा को इस बात का बड़ा दुःख है कि कई कारणों से, विशेष कर प्रेसों की गड़बड़ी से, नागरीप्रचारिणी पत्रिका कुछ काल से यथासमय नहीं निकल सकी। इस त्रुटि के दूर करने का बहुत कुछ उद्योग किया गया पर इसमें यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई। अब से यह पत्रिका प्रयाग के इंडियन प्रेस में छपेगी। इसका प्रबन्ध करने में भी कुछ समय निकल गया, इससे इसकी संख्याएं और भी पिछड़ गईं। अब यह जुलाई-अगस्त की युक्त संख्या प्रकाशित की जाती है। आशा है कि इसी मास में सितंबर-अक्तूबर की संख्याएं भी निकल जायँ। इन दो अंकों की सामग्री प्रेस में भेज दी गई है। इसके अनन्तर आशा है कि पत्रिका यथासमय बराबर निकलती जाय।

हिंदी के लेखकों से भी सविनय प्रार्थना है कि इस पत्रिका को अपने लेखों से विभूषित करने की कृपा करें।

काशी—
७—११—१३

गौरीशंकरप्रसाद
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा।

नमक सुलेमानी

इसके खाने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, भोजन हजम न होना, पेट का फूलना, अरुचि, भूख न लगना, खट्टी डकारें आना, कै. व दस्त होना, पेट की गुड़गुड़ाहट, कंठ की जलन, मुख का स्वाद ख़राब रहना, शूल, हैज़ा, वायुगोला, पिलही, आदि सब प्रकार के उदर रोग शीघ्र आराम होते हैं। दाँतों का दर्द, दाद, बिच्छू, बर्रै या मक्खी के ज़हर पर लगाने से फ़ायदा होता है। गृहस्थ मात्र को एक एक शीशी अवश्य घर में रखना चाहिए। दाम एक शीशी ।) वी० पी० से ॥) डाक महसूल।) में ४ शीशी जा सकती हैं। यह दो शीशी से कम नहीं भेजा जाता।

जिन्होंने और जगह का नमक सुलेमानी खाया है उनको इसकी भी परीक्षा करना चाहिए। इतना सस्ता और गुणकारी कहीं नहीं मिलेगा। हर जगह एजेण्टों की ज़रूरत है। हमारे यहाँ और भी सब प्रकार की औषधें मिलती हैं। सूचीपत्र मँगा कर देखिए।

पंडित धरणीधर वैद्य

—:०:— सागर सी० पी०

एजेंट चाहिएं।

पवित्र केसर के लिये भाव ॥≡) तोला।

कश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर।

७—१३—२४

भाग १८ | सितम्बर और अक्तबर १९१३ | संख्या ३—४

वर्त्तमान कालिक हिन्दी-साहित्य के गुण-दोष। *

(ले० पंडित श्यामविहारी मिश्र और पंडित शुकदेव विहारी मिश्र)

हमारे यहाँ काव्य शब्द से केवल पद्य काव्य का आशय नहीं निकलता, जैसा कि अँगरेज़ी शब्द प्वैट्री से है। यहाँ गद्य और पद्य दोनों में काव्य हो सकता है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग हुई, परन्तु उस समय की रचनायें अब हस्तगत नहीं होतीं। सबसे प्रथम की रचना जो अब मिलती है और जिसे काव्य भी कहना चाहिये, वह महाकवि चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो है। इस ग्रन्थ में बहुत कर श्रृंगार तथा युद्ध के वर्णन हैं। इस में वीर और श्रृंगार रसों का अच्छा चमत्कार है।

हम ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में संवत् ७०० से लेकर अब तक का साहित्य-काल आठ विभागों में बाँटा है। संवत् १५६० तक महात्मा सूरदास का रचना-काल नहीं प्रारम्भ हुआ था। अतः इस समय तक पूर्व प्रारम्भिक काल (७००—१३४३), उत्तर प्रारम्भिक काल (१३४४—१४४४) और पूर्व माध्यमिक काल (१४४५—१५६०) माने गये हैं। १५६१ से गोस्वामी तुलसीदास के मरण काल १६८० तक प्रौढ़ माध्यमिक काल माना गया है। इसके पीछे १७९० तक पूर्वालंकृत काल, १८८९ पर्यन्त उत्तरालंकृत काल, १९२५ तक परिवर्त्तन काल और १९२६ से अब तक वर्त्तमान काल चलते हैं। इन समयों के नाम इनकी भाषाओं का भी कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। वर्त्तमान समय के गुण दोष जानने के लिये आवश्यक प्रतीत होता है, कि इन समयों की भाषाओं की दशाओं का संक्षेप में कुछ कथन कर दिया जाय।

पूर्व प्रारम्भिक समय में भाषा प्राकृत-मिश्रित थी और वीर, श्रृंगार एवं कथा-विभागों का प्राधान्य रहा, परन्तु ये कथायें विशेषतया धर्म्म-सम्बन्धिनी न थीं। उत्तर प्रारम्भिक काल में कवियों ने भाषा

* यह लेख हिंदी साहित्यसभा लखनऊ के एक अधिवेशन में जो ११ अक्तूबर १९१३ को हुआ था, पढ़ा गया था।

को प्राकृत से छुटकारा देना चाहा, या यों कहें कि देश से प्राकृत भाषा का साम्राज्य बिल्कुल उठ गया। फिर भी, जैसा कि स्वाभाविक था, कोई एक भाषा प्राकृत के स्थान पर न जम सकी और लोगों ने ब्रज, अवधी, राजपूतानी, खड़ी और पूर्वी भाषाओं में रचना की, परन्तु यह विशेषता ब्रजभाषा को अवश्य मिली कि अपनी अपनी प्रान्तिक भाषाओं के साथ कवियों का उसकी ओर भी कुछ कुछ झुकाव देख पड़ा। इस समय वीर, शृंगार, शान्ति और कथा प्रासंगिक रचनाओं का प्राधान्य रहा और कथा-विभाग ने धर्मकथाओं से सम्बन्ध जोड़ा और राज-यश-कीर्त्तन से उसका सम्बन्ध शिथिल पड़ा। गद्य काव्य का भी आरम्भ इसी काल में हुआ और महात्मा गोरखनाथ पहले ब्राह्मण कवि थे, जिन्होंने हिन्दी को भी अपनाया। इनके पूर्व वाले कवि गण ब्रह्म भट्ट थे और कुछ मुसलमान। पूर्व माध्यमिक काल में ब्रज, अवधी, पूर्वी और पंजाबी भाषाओं का प्राधान्य रहा और शान्ति, कथा तथा नाटक विभागों में रचना विशेष हुई। इस समय में हिन्दी ने अच्छी उन्नति की और उसमें विद्यापति ठाकुर तथा कबीर-दास जैसे सुकवि हुये। इस काल में ब्रज-भाषा का बल बढ़ चला और धार्म्मिक विषयों की प्रतिभा देदीप्यमान हुई।

प्रौढ़ माध्यमिक काल से हिन्दी की उन्नति बहुत ही सन्तोषदायिनी हुई। इस समय में धार्म्मिक पुनरुत्थान के साथ वैष्णवता का बल बहुत बढ़ा और महात्मा वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, हितहरि-वंश, रामानन्द और हरिदास की शिक्षाओं के प्रभाव हिन्दी भाषा के पूर्ण उन्नायक हुये। इस प्रकार वैष्ण-वता का भाषा-साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और धार्म्मिक रचनाओं ने हिन्दी को भारी प्रभा प्रदान की। वैष्णवता का सम्बन्ध मथुरा और अयोध्या से विशेष था। मथुरावासी कवियों ने अधिकता से भजनों द्वारा ब्रजभाषा में कृष्ण-यश-गान किया और अयोध्या वालों ने कथा प्रासंगिक ग्रन्थों में अवधी भाषा द्वारा राम-यश गाया। इनमें दोहा चौपाइयों की विशेषता थी। माथुर कवियों में सूरदास सर्वप्रधान थे और इधर तुलसीदास। परन्तु इन दोनों महात्माओं को छोड़ कर उधर (माथुर) के कवियों और उनकी प्रणाली को अनेकानेक परमो-त्कृष्ट कवियों द्वारा बड़ी ही सहायता मिली और अवधी भाषा का प्रताप ब्रजभाषा के सामने बहुत मन्द रहा। माथुर वैष्णवता के साथ कृष्ण-यश-गान की प्रथा ने बहुत भारी बल पाया और साहित्य प्रथानुयायी अन्य सुकवियों ने उसी का अनुसरण किया, जिस से आगे चलकर शृंगारी विषयों की इतनी भरमार हुई कि अन्य साधारणतया रुचिकर एवं लोकोपकारी विषयों की कुछ भी सन्तोषकारिणी उन्नति न हो सकी। यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे विषयों का हमारे यहाँ अभाव है, परन्तु आनु-षंगिक दृष्टि से इन की बड़ी ही मन्द दशा है। इस समय के द्वितीयार्द्ध में अकबर के राजत्वकाल की स्थिर की हुई शान्ति ने वैष्णवता के साथ हिन्दी को पूरा लाभ पहुँचाया और उसका अच्छा विकास हुआ।

पूर्वालंकृत काल में भारत में वीरता का अच्छा प्रादुर्भाव हुआ और चिरविमर्द्दित हिन्दुओं ने बल पकड़ कर चिर स्थापित मुसलमानी राज्य का ध्वंस किया। ऐसी दशा में वीर काव्य का बाहुल्य स्वाभा-विक था और वह हुआ भी, परन्तु दृढ़तापूर्वक संस्थापित शृंगार काव्य का बल कुछ भी शिथिल नहीं हुआ। प्रौढ़ माध्यमिक काल में शृंगार, शान्ति और कथा विभागों का बल था परन्तु इस काल में वीर, शान्ति और रीति विभागों का प्राधान्य हुआ। उस समय में ही भाषा बहुत अच्छी उन्नति कर चुकी थी, सो इस काल में कवियों ने उसे अनुप्रासादि भाषालंकारों से विभूषित करने का विशेष ध्यान रक्खा, जिस से उसकी छटा और भी बढ़ गई। उस समय ब्रजभाषा के साथ अवधी का भी कुछ बल था, परन्तु इस अलंकृत काल में ब्रजभाषा का बल और भी बढ़ा और अवधी का घट गया।

उत्तरालंकृत काल में अवधी ने कुछ उन्नति की और खड़ी बोली का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। इस में शृंगार और रीति विभागों का बल बहुत ही बढ़ा, तथा कथा ने भी फिर प्रबलता ग्रहण की। परिवर्त्तन काल में अवधी भाषा दब गई और ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली की प्रबलता हुई। इस में शृंगार का बल कुछ घट गया और गद्य ने प्रबलता पाई। इस में प्राचीन और नवीन विचारों में नोंक झोंक सी रही, क्योंकि अब अँगरेज़ी राज्य हो जाने से देश के साथ पाश्चात्य सांसारिक लाभप्रदायक नये विचारों का पदार्पण भाषा-साहित्य में भी हो रहा था। वर्त्तमान काल में गद्य और कथा-विभागों का बहुत बल है, तथा शान्ति, स्फुट और नाटक विभागों की भी कुछ प्रबलता है। अब लेखकों ने लोकोपकारी विषयों की ओर भी बहुत अच्छा ध्यान दिया है और लाभकारी पुस्तकों के अनुवाद भी हमारे यहाँ बहुतायत से हो रहे हैं। सूक्ष्म रीति से हमारे साहित्य की उत्पत्ति से अद्य पर्य्यन्त यह दशा रही है। इस पर ध्यान देने से आज की एकत्रित विद्वन्मंडली को आगे कहे जाने वाले गुण दोषों के समझने एवं उनके कारण जानने में विशेष सुभीता होगा।

वर्त्तमान साहित्य प्राचीन काव्य से तीन परम प्रधान बातों में भिन्न है, अर्थात् खड़ी बोली प्रचार, गद्य-गौरव और लोकोपयोगी-विषय-समादर। ये तीनों बातें वर्त्तमान साहित्य को ख़ूब ही गौरवान्वित करती हैं। इन तीनों भेदों का प्रादुर्भाव हमारी भाषा में अँगरेज़ी राज्य के कारण हुआ है। पूर्वीय और पाश्चात्य देशों में बहुत दिनों से संसारीपने की शिथिलता एवं प्रबलता का मुख्य भेद रहा है। हमारे यहाँ दया और संसार की असारता के भावों का बहुत दिनों से उचित से बहुत अधिक साम्राज्य रहा है। यहाँ दीन को देख कर उसे दान देने की इच्छा ऐसी बलवती रही कि उचितानुचित का विचार दाताओं के ध्यान से निकल सा गया। उन्होंने प्रायः यह नहीं सोचा कि दीन मनुष्य के दैन्य के कारण उसी के दुर्गुण हैं अथवा कुछ और। इस प्रकार कुपात्रों का दान हमारे यहाँ बहुत प्रचलित होगया, जिससे देश के द्रव्योत्पादक बल को भारी हानि पहुँची। देश के लिये वही दान लाभकारी है, जिससे भविष्य के द्रव्योत्पादक बल की वृद्धि हो। कुपात्रों को इतना बहुतायत से दान मिला कि हमारे यहाँ जीवन होड़ का उचित बल कभी नहीं हुआ, जिससे धनोपार्ज्जन में कमी हो कर देश में अवनति आगई और जातीय बल खोकर हम दानी लोग भी पतित और नीच हो गये। यही दशा बहुत करके स्याम, चीन, बरमा, लंका, जापान आदि सभी पूर्वीय देशों की हुई। जापान ने तो अपनी दशा सुधार ली, परन्तु अन्य देश अब तक अधःपतित दशा में हैं। भारत में अँगरेज़ी प्रताप से अब समुचित उन्नति हो रही है, यद्यपि हम लोगों की कादरता से उसमें अभी सन्तोषदायिनी शीघ्रता नहीं है।

वर्त्तमान साहित्य-प्रणाली के गुण दोषों में मुख्यता इसी उपर्युक्त कादरता के अभाव अथवा अस्तित्व पर निर्भर है। लोकोपकारी विषयों को आदर देने वाली नवीन प्रथा का स्थिर हो जानाही एक बहुत बड़ा उत्साहप्रद कार्य्य है। जैसी देशदशा होगी, वैसीही कविता भी स्वभावतः होगी। प्राचीन काल में जीवन-होड़ (struggle for existence) की निर्बलता से लोकोपकारी विषयों की ओर हमारे कविजन का विशेषतया ध्यान नहीं गया, यद्यपि यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि अन्य बातों में उन्होंने साहित्य-गरिमा पूर्णता को पहुँचा दी। इस समय उन्नायक दल के लेखकों की रचनायें विशेषतया इन्हीं विषयों से भरी रहती हैं, यद्यपि ब्रजभाषा के अनेकानेक कविजन अब तक प्राचीन प्रथा पर ही चलते हैं और उपर्युक्त नवीन भावों का आदर अज्ञान अथवा विचारशून्यता से नहीं करते। इस समय भी प्राचीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अधिक है, परन्तु उनकी संख्या दिनों दिन घटती जाती है और नवीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अच्छी शीघ्रता से बढ़ रही है। इन बातों पर विचार करने से चित्त

परम प्रसन्न होता है। गद्य काव्य से ब्रजभाषा का प्रयोग अब बिलकुल उठ गया है और पद्य से भी उठता जाता है। गद्योन्नति अधिकतर अवस्थाओं में देशोन्नति की सहगामिनी होती है। गद्य में प्रायः कारबारी विषयों का आधिक्य रहता है, और ऐसे ग्रन्थ तभी लिखे जाते हैं, जब देश में कारबार की प्रचुरता होती है। कारबारी ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन, रसायन आदि के ग्रन्थ गद्य में पाये जांयगे। ये भी देशोन्नति के साथही चलते हैं। खड़ी बोली की उन्नति ऐक्य के कारण होती है। जब समस्त देश के विविध प्रान्त एक दूसरे से एकपन का भाव बढ़ाते हैं, तभी उन के चित्त में एक भाषा की भी आवश्यकता जान पड़ती है। अधिक दशाओं में सबको पसन्द आनेवाली कोई एक-देशीय भाषा न होगी। सब लोग प्रायः सर्व-व्यापिनी भाषा को ही पसन्द करेंगे। ऐसी भाषा खड़ी बोली ही है। इसी लिये अँगरेज़ी राज्य द्वारा ऐक्य वर्द्धन के साथ ही साथ खड़ी बोली की महिमा बढ़ी और एक-लिपि-विस्तार परिषद ने भारतवर्ष भर में एक लिपि जारी करने का शुभ प्रयत्न किया और कर रहा है।

अँगरेज़ी के नवागत भावों ने जातीयता-वर्द्धन में अच्छी सहायता दी, जिससे मातृभूमि-माहात्म्य, भ्रातृ-प्रेम, ऐक्य आदि विषयों पर साहित्य-रचना होने लगी है, जो वर्त्तमान समय के उन्नत विचारों का अच्छा परिचय देती है। प्राचीन समय में कवियों ने भक्ति, हिन्दूपन आदि पर समय समय पर ध्यान दिया और इन विषयों पर कवितायें भी प्रचुरता से बनीं, विशेषतया भक्ति पक्ष पर। फिर भी उस समय जातीयता के अभाव ने भारतवर्ष भर को एक समझने वाले विचारों को नहीं उठने दिया और इसलिये देशहित-सम्बन्धी साहित्य का चलन बिलकुल नहीं हुआ। वर्त्तमान गद्य-महिमा ने लोकोपयोगी विषयों की अच्छी उन्नति की है और दिनों दिन ऐसे ग्रन्थ बनते एवं अनुवादित होते जाते हैं। इन कारणों से केवल हिन्दी पढ़े हुये पाठकों को भी उन्नत विषयों के जानने का सुभीता होगया है। कभी कभी लेखक गण यह बात भूल से जाते हैं और ग्रन्थ के बीच में अँगरेज़ी शब्दों एवं वाक्यों को बिना अनुवाद किये भी ऐसा लिख देते हैं, मानों सभी लोग अँगरेज़ी जानते हैं। ऐसी दशाओं में अँगरेज़ी कोष्ठक (bracket) या पृष्ठपाद की टिप्पणी (footnote) में लिखना अच्छा है। आज कल लेखक बाहुल्य से उपयोगी ग्रन्थ-बाहुल्य की भी अच्छी वृद्धि हुई है, जिससे भाषा-ग्रन्थभाण्डार-भरण बहुत उत्तमता से हो रहा है और हुआ भी है। इन बातों से गत तीस पैंतीस वर्षों में विविध उपयोगी विषयों का भाषा-भाण्डार इतना भरा, जितना कि इससे तिगुने समय तक किसी काल में नहीं हुआ। प्रायः २० वर्षों से समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं की भी अच्छी वृद्धि हुई है। इनसे केवल हिन्दी जानने वालों को विविध भाँति के समाचारों एवं विचारों के जानने का अच्छा सुभीता मिला है। इन में एक भारी दोष भी है कि अधिकतर पत्रों के सम्पादक प्राचीन विचाराश्रयी और बहुधा पूरे पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। इन लोगों के कारण बहुतेरे लोगों के पुराने अशुद्ध विचार हटने के स्थान पर और भी दृढ़ हो जाते हैं। यह दोष पत्र प्रथा का नहीं है, वरन आज कल के हमारे मानसिक अधःपतन को प्रकट करता है। पत्रों के मालिकों को सम्पादक नियत करने में बहुत सोच विचार करना चाहिये, क्योंकि उनकी थोड़ी सी भूल से हज़ारों भाइयों के विचार गन्दे हो सकते हैं। संवत् १९५७ में हमने साहित्य-प्रणाली के तत्कालीन दोषों पर विचार करने में समस्यापूर्ति के पत्रों की वृद्धि पर खेद प्रकट किया था। हर्ष का विषय है कि अब ऐसे पत्रों का बल बिलकुल टूट सा गया है।

वर्त्तमान काल की गद्य-प्रणाली का सूत्रपात लल्लू लाल एवं सदल मिश्र के समय संवत् १८६[illegible] में हुआ था और उसकी वृद्धि सितारे हिन्द राजा शिवप्रसाद ने की। येही महाशय (सं० १९११ प्रथम गद्य-लेखक थे कि जिन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग किया और ब्रजभाषा को बिलकुल छोड़ दिया। इनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह तथा

स्वामी दयानन्द ने श्रेष्ठतर गद्य में रचना की। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से गद्य ने बहुत ही अच्छी उन्नति की। आज कल के अच्छे अच्छे गद्य-लेखक उस समय से भी श्रेष्ठतर भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा ने उन्नति करते करते अब अच्छा रूप ग्रहण कर लिया है, परन्तु फिर भी एक दोष यह है कि अब तक उन्नत भाषा लिखने में लोग संस्कृत भाषा के कठिन शब्द लिखना ही अलम् समझते हैं, और ऐसे ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न नहीं करते कि जैसे अँगरेज़ी के बड़े बड़े लेखक लिखते हैं और बहुत दिनों से लिखते आये हैं। अब तक गद्य में दर्शन, रसायन, विज्ञान, कारबार आदि के ग्रन्थ विशेषता से बने हैं, परन्तु ऊँचे साहित्य-संबन्धी गद्य ग्रन्थ बहुत कम देख पड़ते हैं। गद्य में अलंकारों, रसों, प्रबन्धध्वनियों तथा अन्यान्य काव्यांगों को लाकर उसे उत्कृष्ट एवं कठिन बनाने का अभी पूरा क्या प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ है। आशा है कि इस ओर हमारे लेखकगण ध्यान देंगे। भाषा गद्य की वास्तविक अवस्था अभी केवल ६० वर्ष की है। इससे उपर्युक्त प्रकार की ऊँची लेखन-शैली की ऊनता अभी उत्साह-विनाशिनी नहीं है, परन्तु लेखकों को इस ओर अब ध्यान अवश्य देना चाहिए।

अब तक हमारे लेखकों ने भाषा के गूढ़ीकरण में संस्कृताश्रय लेना ही आवश्यक जान रक्खा है, परन्तु इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अन्य भाषाश्रय किसी भाषा को बड़ा नहीं बना सकता। संस्कृत और भाषा में बहुत दिनों से संबन्ध अवश्य चला आता है, परन्तु इसकी वृद्धि भाषा-गौरव-वर्द्धिनी कदापि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यों के लिये आत्मनिर्भता एक आवश्यक गुण है, वैसे ही वह भाषाओं के लिये भी है। किन्तु आज कल के लेखक इस अनुपम गुण को भूल कर भाषा को संस्कृत की सेवकिनी बनाना चाहते हैं। शुद्ध भाषा के लिये व्याकरण की आवश्यकता है, परन्तु व्याकरण भाषा का अनुगामी होना चाहिए, न कि भाषा व्याकरण की। जिस भाषा का व्याकरण जैसा ही कठिन और दुर्बोध होगा, उस भाषा का वैसी ही शीघ्रता से पतन होगा। इसी कारण से संस्कृत आर्यों की भी मातृभाषा न रह सकी और केवल पुस्तकों में उसका प्रचार रह गया। यही दशा यथा समय प्राकृत की हुई। सर्वसाधारण बिना कुछ विशेषतया पढ़े लिखे दुर्ज्ञेय व्याकरणों के नियमों को हृदयंगम नहीं कर सकते। इसी लिये कठिन व्याकरणों के नियम स्थिर नहीं रह सकते और यदि बढ़ते बढ़ते वे भाषा के अंग हो जाते हैं तो उसका विनाश ही कर देते हैं। आज कल अनेक लेखकों में संस्कृत के नियमों के यथासम्भव भाषा में लाने की रुचि बढ़ती देख पड़ती है। संस्कृत में लिंग-भेद ऐसा कठिन है कि अनेक स्थानों पर बिना कोष देखे उसका ज्ञान ही दुस्तर हो जाता है। इन बातों का भाषा में लाना अनुचित है।

हमारी भाषा की श्रुतिमधुरता उसकी एक प्रधान महिमा है। संस्कृत में मिलित वर्णों के आधिक्य से आचार्यों ने श्रुतिकटु शब्द बहुत कम माने हैं, परन्तु हमारी भाषा में प्राचीन काल से आचार्यों एवं कवियों ने मिलित वर्णों को छन्दों में बहुत कम आने दिया है और बहुत से ऐसे शब्दों को श्रुतिकटु माना है। इसी कारण प्राचीन रचनाओं में कर्कशता का ऐसा अभाव है कि अन्य भाषा-प्रेमी लोग यदि हमारी भाषा की निन्दा तक करते हैं, तो भी उसके माधुर्य्य की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं। खड़ी बोली के कवियों ने आजकल इस अनुपम गुण को प्रायः बिल्कुल ही विसरण कर दिया है। एक तो खड़ी बोली में बिना ख़ास प्रयत्न के श्रुतिकटु आही जाता है, और दूसरे ये लोग संस्कृत-शब्दानुरागी होने से और भी मिलित वर्णों की भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छन्दों से श्रुतिमाधुर्य्य का लोप हुआ जाता है।

इस एवं अन्य कारणों से आजकल खड़ी बोली में प्रायः शुष्क-काव्य पाया जाता है और नीरसता का ऐसा समावेश है कि दस पृष्ठों की भी कविता साद्यन्त पढ़ जाना बड़े धैर्य्यवान् व्यक्ति का काम

है। वर्त्तमान कविगण प्रायः प्राचीन आचार्य्यों के ग्रन्थ अध्ययन किये बिना साहित्य रचना करने लगते हैं और कुछ लोगों में अहंकार की मात्रा ऐसी बढ़ी हुई है कि वे अपनी शिथिलातिशिथिल रचनाओं के आगे भी नामी आचार्य्यों तक के ग्रन्थों को पुराने, समय प्रतिकूल और भदेसिल समझते हैं। इन कारणों से वर्त्तमान खड़ी बोली के छन्दों में उच्छृंखलता की मात्रा बहुत आ गई है। खड़ी बोली के कवि गण दीर्घान्त छन्दों में भी ह्रस्व शब्द से काम प्रायः लेते हैं और यतिभंग दूषण से भी नहीं बचते। एक तो खड़ी बोली कविता मात्रा में कम है और दूसरे कवियों की उच्छृंखलता से ऐसी नीरस तथा शिथिल बनती है कि प्राचीन प्रथानुयायी उसको बिरहा, पँवारा आदि के ही समान बतला कर उसका उपहास करते हैं। आजकल की पद्य-रचनाओं में शाखाचंक्रमण तथा सुप्रबन्धाभाव के बड़े ही विकट दूषण आ जाते हैं। शाखाचंक्रमण कवियों का एक शाखा से दूसरी शाखाओं पर बार बार कूदने के समान रचना करने को कहते हैं। किसी भाव को लेकर उसे कुछ दूर चलाना चाहिए और उसके सम्बन्धी भावों एवं उपभावों को उसके समीप स्थान देना चाहिए, जिससे रस की पूर्ति हो, न यह कि एक भाव का कथन मात्र करके दूसरे पर कूद जाना। यदि सूर्य्य की किरणों का वर्णन उठावे तो उनकी मालाओं, संख्या-बाहुल्य, तेज, नेत्रों के चकाचौंध करने का बल, कमल खिलाना, संसार में उष्णता के ह्रास या वृद्धि से ऋतुओं का बदलना, फलों का पकाना, रसों का उत्पन्न करना, संसार की जीवन वृद्धि आदि अनेकानेक गुणों में से कुछ भी कहे बिना दूसरे भाव पर चट से कूद जाना साहित्य-शक्ति-हीनता का ही प्रमाण देगा। सुप्रबन्ध गुण वर्णन पूर्णता ही में आता है। जिस कथन को उठावें उसका सांगोपांग कथन कविता-शक्ति का एक अच्छा प्रदर्शक है। यदि किसी में बहुत ऊँचे ऊँचे विचार लाने का बल न भी हो, तो केवल सुप्रबन्ध से वह सुकवि माना जायगा। आजकल बहुधा लोग न ऊँचे विचार ही लाते हैं और न सुप्रबन्ध की ओर ही कुछ ध्यान देते हैं। यदि मतिराम की रचना देखी जावे तो विदित होगा कि इस कविचूड़ामणि में कितना अधिक भाव पुष्टीकरण का गुण वर्त्तमान है। इसी कारण से प्राचीन प्रथानुयायी कविगण शिष्यों को रसराज ग्रन्थ सब से पहले पढ़ाते हैं। आजकल सुप्रबन्ध का ऐसा भारी निरादर है कि बहुतेरे विज्ञ लोग भी मतिराम आदि महाकवियों को महा साधारण कवि कहने में नहीं हिचकते। सुप्रबन्ध का अभाव एवं शाखाचंक्रमण का समादर अधिकतर वर्त्तमान नये प्रकार के कवियों की रचनाओं को कलंकित कर रहा है। इसका मुख्य कारण आचार्य्यों का निरादर एवं साहित्य रीति पठन पाठन प्रणाली का तिरस्कार है। लोगों को भाषा-साहित्य के विषय में कुछ जान कर तब छन्द रचना आरम्भ करनी चाहिए। बहुत लोग समझते हैं कि संस्कृत-काव्य-प्रणाली जानने से ही वे भाषा-साहित्य के पण्डित कहलाने के योग्य हो जाते हैं। यह भारी भूल है। यदि हमारे आचार्यों के रीति-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि उन्होंने कितना श्रम एवं चातुर्य्य का फल अपनी रीति-रचनाओं में रक्खा है और संस्कृत-रीतियों से भाषा में कितना भेद है?

आज कल कल पद्य-रचना की बड़ी हीनता है और नवीन विचारों के पाठकों तथा सम्पादकों में बड़ा ही विकराल पद्य-निरादर है। हमीं ने दो तीन घंटों में जो गद्य लेख बिना ख़ास परिश्रम के लिख डाले, उन्हें तो सम्पादकों ने बड़े चाव से प्रकाशित किया और दस दस दिन के प्रयत्नों के फलस्वरूप छन्दों को सम्पादकों ने शील संकोच से काट छाँट कर छापा, यद्यपि उन्हों ने गद्य में कहीं एक मात्रा भी नहीं घटाई बढ़ाई। इस पद्य-निरादर से भी खड़ी बोली की महिमा पद्य-काव्य में घट रही है अथवा होने नहीं पाती है। हमारे यहाँ प्राचीन कवियों ने अधिकतर दशाओं में धार्मिक कथाओं का ही कहना उचित माना। फल यह हुआ कि मेवाड़, जोधपुर, बूँदी, सिरोही, बुन्देलखंड, रीवाँ, दक्षिण आदि में

सैंकड़ों महाराज एवं महापुरुष हो गये हैं जिनके गुण कथन से कवि-शक्ति-स्फुरण एवं जातीयता-वर्द्धन हो सकता है, परन्तु इनके वर्णन न प्राचीन प्रथा के कवियों ने किये और न नवीन प्रणाली के लोग करते हैं। हमारे यहाँ पद्य-संबन्धी विषय-बाहुल्य और उसका अनुपयोग देखकर बड़ा शोक होता है। आजकल गद्य-संबन्धी साधारण से साधारण विषयों पर भी लेखकों का ध्यान रहता है, यहाँ तक कि सात आठ सौ गद्य-लेखक आज वर्त्तमान हैं, परन्तु पद्य लेखकों की संख्या और उनके द्वारा सद्विषयों का सदुपयोग दोनों बड़ी हीनावस्था में हैं। हमारे यहाँ महाकाव्यों का प्रायः अभाव सा है। महाकाव्य ग्रन्थ का लक्षण संस्कृत के ग्रन्थों में दिया है। उसमें सात से अधिक अध्याय हों, किसी महापुरुष का वर्णन और प्रसंग वशतः सागर, नदी, पहाड़, जंगल, प्रातःकाल, सायंकाल आदि प्राकृतिक सुघराइयों के कथन होने चाहिए। ऐसे ग्रन्थ सभी भाषाओं के शृंगार होते हैं। प्राचीन कवियों ने ऐसे ग्रन्थ कुछ कुछ बनाये भी परन्तु वर्त्तमान समय में लोगों का ध्यान इस ओर नहीं है।

प्राचीन काल में तुकान्तहीन छन्दों की रचना बिलकुल नहीं हुई, परन्तु वर्त्तमान समय में इस ओर रुचि देख पड़ती है। ऐसे छन्दों की रचना बहुत लाभदायक और गौरव की बात है। आशा है कि भविष्य में इस विषय की उन्नति होगी।

हमारे प्राचीन प्रथानुयायी कविगण पुराने ढर्रे पर अब भी चले जा रहे हैं। उनमें अधिकांश लोग स्फुट छन्द, शृंगार काव्य और शृंगारपूर्ण षट्ऋतु एवं रीति-ग्रन्थों की रचना अब तक उचित समझते हैं, विशेष कर नायिका-भेद की। ऐसी रचनायें उचित से बहुत अधिक हो गई हैं और अब इनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

हमारे यहाँ नाटक-विभाग ने भी अब तक समुचित क्या कुछ भी उन्नति नहीं की है। भारतेन्दुजी ने इसको जन्मदान सा दिया, परन्तु अभी तक इस की कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आशा है कि कविजन इस ओर विशेषतया ध्यान देंगे, ख़ास कर इस कारण से कि नाटकों के उपयोगी विषय और अवर्णित कथायें प्रचुरता से प्रस्तुत हैं। उपन्यास-विभाग की हमारी भाषा में बड़ी ही कमी और साथ ही साथ भरमार है। असम्भव कथायें और अशिक्षाप्रद असत्य घटनायें तो हमारे यहाँ सैकड़ों उपन्यासों में कही गई हैं, परन्तु पाठ योग्य उचित उपन्यासों की नितान्त ऊनता है। इस ओर हमारे उपन्यास-लेखकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारे हज़ारों महापुरुषों के चरित्र गाये जाने को पड़े हैं। उन पर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने से वर्त्तमान असम्भव कथाओं का कथन कहीं निकृष्टतर है। फिर प्रत्येक उपन्यास का कोई मुख्य भाव होना चाहिए। उसे हमारे किसी प्रधान अवगुण के हटाने अथवा गुण-प्राप्ति की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे यहाँ समालोचना विभाग की भी समुचित उन्नति होनी चाहिए। आज कल की बहुतेरी समालोचनायें ईर्ष्याद्वेषजन्य होती हैं। समालोचना लिखने के लिये आलोच्य विषय से सहृदयता आवश्यक है। इस गुण और अच्छे परिश्रम के अभाव में आलोचनायें ज्योतिप्रदान के स्थान पर अन्धकार-वर्द्धन से भी बुरा काम करती हैं, क्योंकि वे कुछ न जानने वाले को मिथ्या ज्ञान प्रदान करती हैं। कोई अज्ञ भी मिथ्याज्ञानाभिमानी से कहीं श्रेष्ठतर है। समालोचना ग्रन्थ भी अब तक बहुत ही कम बने हैं।

आजकल के गद्य-लेखकों के सब से बुरे अवगुणों में से चोरी, सीनेज़ोरी, परावलम्बन, विचार-परतन्त्रता, अनात्मनिभरता आदि हैं। प्राचीन प्रथा के लेखक पुरानी लकीर के फ़क़ीर हो रहे हैं और नवीन प्रणाली वाले पाश्चात्य नवीन और प्राचीन लेखकों के दास। लेखकों में बहुत अधिक लोग यह भूल गये हैं कि उनके सिरों में भी एक एक दिमाग़ है। प्राचीन प्रथानुयायी लोग सभी प्राचीन बातों को सिद्ध किया चाहते हैं और नवीन प्रणाली के अवलम्बी प्रायः सभी प्राचीन मतों और लेखकों को प्राचीन अस्थि-

पिंजर (old fossils) समझते और पश्चिम के सम्मुख अपने देश के पूर्वजों एवं भाइयों को नितान्त मूर्ख मानते हैं। ये दोनों बातें बिलकुल अशुद्ध हैं, ऐसा प्रकट है और सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उपर्युक्त प्रकार के लेखक भी वचन द्वारा यही कहते हैं और समझते हैं कि वे इसी कथनानुसार चलते भी हैं, परन्तु वास्तव में उनके आचरण उनको उपर्युक्त दो विभागों में से एक में डालते हैं। वे अपने आप को भूले हुए हैं और यहाँ तक भूले हुए हैं कि पराये विचारों एवं सिद्धान्तों को ख़ास अपने ही न केवल कहने, वरन, समझने भी लगे हैं। इस प्रचंड मानसिक रोग (आदत) का निराकरण तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने प्रत्येक मत के कारणों पर सदैव विचार रक्खे और समझता रहे कि उन कारणों में से उसके कितने हैं। यदि कोई शेक्सपियर को तुलसीदास से भी श्रेष्ठतर बतलावे, तो उसे समझना चाहिए कि उसमें उन दोनों के गुण दोष समझने की पात्रता है या नहीं और उसने उनके समझने का पूरा श्रम भी किया है या नहीं ? यदि इन दोनों प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं है, तो उसे उपर्युक्त तुलनाजन्य ज्ञान को अपना मत न समझ कर पराया समझना चाहिए।

हमारे यहाँ गद्य का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है अतः अभी अनुवादों का बनना स्वाभाविक है। फिर भी अति सर्वत्र वर्जयेत् पर सदैव ध्यान रखना चाहिए।

हमारे बहुतेरे लेखक अनुवाद अथवा अनुकरण के अतिरिक्त कुछ लिखते ही नहीं और जिस ग्रन्थ को स्वतन्त्र कहते हैं प्रायः उसमें भी औरों से चोरी या सीनेज़ोरी निकल आती है।

सारांश यह कि आजकल गद्य की उन्नति हुई है परन्तु समुचित नहीं, नाटक विभाग अभी हीनावस्था में है परन्तु बढ़ना देख पड़ता है, पद्य की अवनति है और लेखकों में प्राचीन भारतीय अथवा नवीन पाश्चात्य प्रणालियों के अनुसरण में अन्ध-परम्परानुकरण का भारी दोष है।

—:o:—

यूनिवर्सिटी में संस्कृत शिक्षा पर विचार।

गत १४ अक्तूबर को बम्बई यूनिवर्सिटी के सिनेट का एक साधारण अधिवेशन हुआ था। सभापति का आसन वाइस-चैंसलर मि० जस्टिस हीटन ने ग्रहण किया था। उसमें कई आवश्यक कार्यों के बाद प्रान्तीय सरकार के उस पत्र पर विचार आरम्भ हुआ जिस में उसने पण्डितों की शिक्षा के लिये पूना में संस्कृत के एक स्कूल स्थापित करने, संस्कृत शिक्षा का एक अलग विभाग खोलने और उसमें पदवियाँ देने के सम्बन्ध में यूनिवर्सिटी की सम्मति माँगी थी। पूना में खोले जानेवाले इस प्रस्तावित स्कूल के सम्बन्ध में सरकार ने लिखा था कि उसमें एक बड़ा पुस्तकालय रहेगा जिसमें डेकन कालेज की हस्तलिखित पुस्तकें भी रख दी जांयगी; प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा पानेवाले पण्डितों के सिवा वे ग्रेजुएट भी इस स्कूल में पढ़ सकेंगे जिन्हें पुरातत्त्व की खोज अथवा भिन्न भिन्न मुख्य विषयों के अध्ययन का शौक़ होगा; और पण्डितों के लिये अँगरेज़ी की थोड़ी आरम्भिक शिक्षा के सिवा ग्रेजुएट विद्यार्थियों के लिये कुछ जर्मन और फ़्रेञ्च भाषा की शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया जायगा जिसमें उन लोगों को वर्त्तमान काल की आलोचना-पद्धति का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

आर्ट फैकल्टी और सिंडीकेट की सहमति से सर रामकृष्ण भांण्डारकर ने प्रस्ताव किया—कि "सरकार को इस बात की सूचना दे दी जाय कि उसने अपने पत्र में संस्कृत-शिक्षा के सम्बन्ध में जो उपाय बतलाये हैं, यदि उनके अनुसार प्रबन्ध कर दिया हो तो यूनीवर्सिटी यह नया विभाग खोलने और योग्य पदवियाँ देने के लिये तैयार है।" अपने प्रस्ताव की पुष्टि में श्रीयुत रामकृष्ण ने यह भी कहा कि मैं स्वयं

ओरिएण्टलिस्ट कान्फ़रेन्स में (जिसका अधिवेशन गत जुलाई सन् १९११ में शिमले में हुआ था और जिसकी सिफ़ारिश से बम्बई सरकार ने यह प्रश्न उठाया था) सम्मिलित हुआ था। उसमें यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। इस ढँग की शिक्षा से नये विद्वानों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी। पुराने ढँग के पण्डितों और मौलवियों का नाश नहीं होना चाहिए। ऐसे पण्डित बड़े काम के होते हैं और उनसे तथा उनके ज्ञान से बड़े बड़े युरोपियन विद्वानों तक को बहुत अधिक सहायता मिलती है। यह कहा गया था कि ऐसे पण्डितों से इस नवीन विभाग के काम में विघ्न पड़ेगा, पर श्रीयुत रामकृष्ण ने इसका विरोध और खण्डन किया और कहा कि पण्डितों को उत्साहित करना और उन्हें योग्य पदवियाँ देना आवश्यक है और हम लोगों को इस विषय पर गूढ़ और सहानुभूतिपूर्ण विचार करना चाहिए।

मि० जमशेदजी मोदी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि प्राचीन काल की इस विद्या को बराबर जारी रखना चाहिए। यदि यह प्रस्ताव आज से २५ वर्ष बाद उठाया जाता तो मैं प्रिंसिपल परांजपे से सहमत होता; लेकिन अभी प्राचीन शिक्षा-पद्धति को नष्ट करने का समय नहीं आया है। बड़े बड़े युरोपियन विद्वान् तक इस श्रेणी के पण्डितों के रक्षण के पक्ष में हैं। उन लोगों को उत्साहित करके उनकी दशा और ज्ञान की उन्नति करनी चाहिए।

इस पर प्रि० आर० पी० परांजपे ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन और परिवर्त्तन कराना चाहा कि यूनीवर्सिटी यह पद्धति तो स्वीकार नहीं करती; लेकिन यदि सरकार अपने पत्र में लिखे हुए ढँग पर प्रबन्ध कर दे तो वह लोगों को बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद संस्कृत अध्ययन के लिये एक नई डिग्री दे सकती है। प्रि० परांजपे ने इस प्रस्ताव को यूनीवर्सिटी के लिये हानिकारक बतलाते हुए उसका घोर विरोध किया। यूनीवर्सिटी का संगठन नये ढँग की स्वतन्त्र विचार की शिक्षा (Liberal Education) की उन्नति के लिए है, और प्रश्न यह है कि इस प्रकार की प्राचीन भाषाओं की शिक्षा उक्त शिक्षा के अन्तर्गत है, या नहीं। यदि वह स्वतन्त्र विचार की शिक्षा के अन्तर्गत न हो तो यूनीवर्सिटी को उसे प्रोत्साहन न देना चाहिए। प्रिंसिपल महाशय की सम्मति में प्राचीन भाषाओं की शिक्षा यूनीवर्सिटी की उद्दिष्ट शिक्षा के अन्दर नहीं आ सकती थी। उनकी सम्मति में ये दोनों प्रकार की शिक्षाएं परस्पर एक दूसरे के इतनी विरुद्ध थीं कि उनका परिचालन एक साथ हो ही नहीं सकता था। वर्त्तमान विचारों की कसौटी पर वह शिक्षा नहीं ठहर सकती। यूनीवर्सिटी का उसकी सहायता करना अनुचित होगा। पण्डितों को अपना काम आप ही करने के लिए छोड़ देना चाहिए। यदि सरकार उन लोगों को उत्साहित करना या उन्हें सहायता देना चाहे, तो दे सकती है; यूनीवर्सिटी को उससे कोई सम्बन्ध न रखना चाहिए। स्वतन्त्र विचार की शिक्षा की हानि करके प्राचीन ढँग की ऐसी शिक्षा नहीं देनी चाहिए।

मि० के० नटरंजन ने प्रिंसिपल परांजपे के इस संशोधन का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य्य है कि इस समय भी लोग पण्डितों की श्रेणी के संरक्षण का प्रस्ताव उठाते हैं। पण्डितों में काम की कुछ बातें हो सकती हैं, लेकिन उनकी शिक्षा-पद्धति इतनी हानिकारक है कि यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति में डिग्रियाँ कभी न देनी चाहिएँ। जो लोग जीवन का आज कल का उद्देश्य न जानते हों, यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति कदापि न करनी चाहिए। पण्डितों के विचार और उद्देश्य इतने संकुचित होते हैं और प्राचीन पद्धति की शिक्षा इतनी हानिकारक और नये ढँग की शिक्षा के इतनी विपरीत होती है कि यूनीवर्सिटी का उसे सहायता देना बहुत ही अनुपयुक्त होगा।

मि० शाप ने कहा कि भारत सरकार की सलाह से प्रान्तीय सरकार ने यह प्रश्न यूनीवर्सिटी के सामने पेश किया है। यूनीवर्सिटी को उस पर केवल अपनी सम्मति देनी चाहिए। भारत सरकार पण्डितों का सुधार नहीं किया चाहती बल्कि वह उन्हें केवल प्रोत्साहित करना चाहती है।

यहाँ तक वादाविवाद होने के बाद यह विषय आगामी १४ नवम्बर के अधिवेशन के लिए मुलतवी कर दिया गया।

—:०:—

वैज्ञानिक खेती।

(ले० श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी)

[पूर्व प्रकाशितांतर]

ज़मीन की बीमारियाँ।

मीन को उपजाऊ बनाने के लिये किसान लोग खाद डालते हैं। हर क़िस्म की खाद में खली जल्दी फायदा पहुँचाने वाली समझी जाती है। पर भांति भांति की खली के गुणों में बड़ा भेद है। यह नहीं कहा जा सकता इसे कितने किसान समझते हैं। सरसों, तिल, अलसी, रेड़ी, मूंगफली, नारियल, बिनैाला और चिलगाेजा वग़ैरह तिलहन को पेरने पर जो भाग बाकी बच जाता है, वही खली खेतों में खाद के तौर पर डाली जाती है। हर एक चीज़ में कोई न कोई ख़ास गुण रहता है। अनाज कितना ही क्यों न पेरा जाय, उसमें कुछ न कुछ तेल रह ही जाता है। इस हिसाब से कहना चाहिए कि खली में भी थोड़ा बहुत तेल रहता है। पर मामूली किसान यह नहीं जान सकते कि किस खली में कितना तेल है। इसलिये खेतों में खली की खाद देने पर भी एकसा फ़ायदा दिखाई नहीं देता। तिलहन के बीज में जो जीवित और अजीविक चीज़ें हैं, उनके विषय में यहां कुछ न लिख कर सिर्फ़ यही बतलाया जाता है कि खली में जितना ही ज़ियादा तेल होगा, खेती को उतना ही ज़ियादा नुक़सान होगा। खली में तेल रहने से वह जल्दी गल नहीं सकती। क्योंकि तेल की तासीर ही बचाने की है, बिगाड़ने की नहीं। इसी से चटनी और अचार वग़ैरह में तेल डाला जाता है जिसमें वे बहुत दिनों तक रह सकें। इसको सभी लोग जानते होंगे कि अगर अचार में तेल न डाला जाय तो उसे सड़ते देर न लगे। मांसभक्षी लोग दूसरे दिन तक रक्खे रहने के लिए तेल में मांस मछली बनाते हैं। इस सिद्धान्त को कोई भी समझ सकता है कि तेल में चीज़ को बहुत दिन तक ठीक बनाये रखने की ताक़त है। तेल से मिली कोई चीज़ जल्दी नहीं सड़ गल सकती। और ऐसी चीज़ पर हवा, पानी, सर्दी, गर्मी का असर भी जल्दी नहीं होता। बिना इन चीज़ों के अन्दर पैठे कोई चीज़ सड़ ही नहीं सकती। इससे साबित हुआ कि तेल से मिली हुई खली के सड़ने में देर लगती है। देखा गया है कि धीरे धीरे खली से तेल निकल कर ज़मीन में लगा करता है। इस अवस्था में खली तो हलकी ज़रूर हो जाती है; पर मिट्टी में तेल के लगने से खेत रोगी हो जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तेल रक्षक है नाशक नहीं। खाद खली की हो, या हड्डी, चमड़ा, नाख़ून, बाल, चर्बी, ग्लेसरिन किसी की भी हो ज़मीन के अन्दर जाकर जीवित और अजीवित चीज़ों के सड़ने की राह रोकती है। बिना सड़ी चीज़ को पैाधे चूस नहीं सकते। पानी की तरह पतली हालत में अगर तेल पैाधे की देह में पहुँच जाय तो इससे उसे नुक़सान ही होगा। सरसों वग़ैरह तिलहन में तेल मिला दाना होता है; वह झाड़ को सोखने से नहीं होता वरन् पैाधा तो ज़मीन से रसही लेता है; वही रस आगे तेल की सूरत तबदील हो जाता है।

खेत में सिर्फ़ तेल मिली खाद डालने से मिट्टी को असल रोग हो जाता है। अगर खेत में यह

हो तो बिना तेज का चूना डालने से फ़ायदा होगा। चूना ही ज़मीन के अम्ल रोग की महौषधि है। अगर भूल से खेत में, ज़रूरत से ज़ियादा चूना गिर जाय; तो तुरन्त खली का चूरन डाल देना चाहिए। इससे चूने का तेज दब जाता है और कोई डर नहीं रहता।

कुछ लोग कहते हैं कि चूना भी पौधों की .खुराक है। ख़ास मौक़ों पर, ज़रूरत देख कर यद्यपि चूना डालना उचित है; पर इस बात का ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि चूना न तो पौधों की खाद ही है न .खूराक ही। चूने का इस्तेमाल करने से ज़ियादातर धरती का रोग नाश हो जाता है और मिट्टी की तासीर भी बदल जाती है। एक ओर चूना खेत को तन्दुरुस्त करता है और दूसरी ओर मिट्टी का यवक्षारजन (nitrogen) निकाल कर उसकी उपज घटा देता है। इसलिये बड़ी सावधानी से इसे बर्तना चाहिए। चूने से एक फ़ायदा यह है कि ज़मीन के अन्दर जो चीज़ें वग़ैरह सड़ी पड़ी हों; उन्हें वह अन्दर घुस कर सड़ा देता है—वे इस लायक होजाती हैं कि उन्हें पौधे आसानी से चूस सकें। इतना होने पर भी चूने की तेज़ी को दूर करने के लिए ज़मीन में खाद ज़रूर दे। बिना ऐसा किए खेत में अच्छी उपज न होगी। चूना देने के बाद कुछ समय तक ज़मीन .खूब उपजाऊ हो जाती है, यहाँ तक कि दो तीन साल की उपज एक ही साल में हो जाती है। बार बार चूना देने से खेत बिल्कुल बिगड़ जाता है, कभी कभी तो उसे छोड़ ही देना पड़ता है।

—:०:—

षष्ठ अध्याय।

पौधों के रोग।

मामूली तौर पर पौधे दो क़िस्म के रोगों से घिरे रहते हैं। फंगस (Fungus)—यह पौधे के किसी हिस्से पर हमला कर अन्दर घुस जाता है और उसकी देह के तन्तुओं को कमज़ोर कर मार डालता है। यह उद्भिद .खुर्दबीन की सहायता बिना दिखाई नहीं दे सकता। इसका बीज वायुमण्डल, मिट्टी और पानी में रहता है। बीज अंकुरित होकर पौधे के कोष (cells) में रक्खी हुई सामग्री से तैयार होता है। फिर उससे एक धागा सा निकल कर वृक्षों में फैल जाता है। ये वृक्ष के भीतर रक्खी हुई चीज़ों को खा जाते हैं। इससे पौधे निस्तेज तथा रोगी हो जाते हैं। ये रोग पैदा करनेवाले, पौधे .खुद हवा, पानी और मिट्टी से .खुराक नहीं ले सकते; इस लिए दूसरे की जमा पर क़ब्ज़ा कर बैठते हैं! किसी जीवित पौधे का रस सोख कर या मरे हुए और सड़े गले पदार्थ पर जम कर अपना बसर करते हैं!!

(२) कीड़े, फतिङ्गे वग़ैरह भी वृक्षों के शत्रु हैं। कीटों के झुंड की मामूली ४ हालतें हैं। वे इस तरह हैं:—(१) झुंड, (२) कीट, (larva) मामूली ढँग में इसे कीट ही कहना चाहिए, (३) कोया, (४) तितली। जिन्होंने कभी रेशम के कीड़े देखे होंगे वे इन चारों हालतों को आसानी से समझ सकेंगे। कीट की अवस्था में ये कीड़ों के झुंड की सूरत में बढ़ जाते हैं। कोये से निकलने पर इनकी बाढ़ रुक जाती है। किसी किसी फतिंगे में ऊपर लिखी चारों हालतें दिखाई नहीं देतीं। कोई कोई कीड़े कोये की हालत में न जाकर तितली बन जाते हैं। पूरी बाढ़ हो चुकने पर मामूली छः टाँगें या पाँव और दो सूँड़ें इनके होती हैं। बदन तीन हिस्सों में बँटा रहता है—सिर, छाती और पेट जिस में टाँगें लगी रहती हैं। इनके माथे की गढ़न अजीब क़िस्म की होती है। कुछ कीड़े मुँह से काटते हैं, कुछ सोखते हैं और कुछ दोनों काम करते हैं। सभी कीड़ों में दो जातियाँ स्त्री और पुरुष के भेद से हैं। स्त्री जाति के कीड़ों की देह, पुरुष जाति के कीड़ों की अपेक्षा कुछ भारी होती है। प्रायः कीड़े अंडे ही देते हैं।

बीज की सफ़ाई—बीज में भी कीड़े पड़ जाते हैं। इस लिये बीज और कलम वग़ैरह को लगाने, से पहिले .खूब साफ़ कर लेना ज़रूरी है। बीज वग़ैरह को साफ़ करने या रोग से बचाने के लिये उनमें कीड़ों को मारनेवाली या जीवाणुनाशक कुछ चीज़ें मिला देनी चाहिएँ। इन चीज़ों में विषैलापन बदबू

और तेज़ बू हो। तूतिया मिले पानी में बीज या कलम को डुबोकर उसी समय पिसे हुए विष, चूना, खार और सरसों या रेंड़ी की खली के साथ मिलाकर, बीज को सुखाकर उसी दिन बोना चाहिए या कलम को रोपना चाहिए। अगर एक छटाँक तूतिये का चूरन मिलाना हो तो २०० छटाँक यानी १२—१३ सेर गरम पानी में उसे घोलना चाहिए। एक दिन के अन्दर ही इस तूतिया-मिले पानी का इस्तैमाल करे। विष बहुत ही थोड़ा डाले। अगर एक मन चूर्ण खली और ५ सेर चूर्ण खार का इस्तैमाल किया जावे तो ख़ूब महीन पीस कर एक छटाँक ज़हर इनके साथ इस्तैमाल करना उचित है। तूतिये के पानी में बहुत देर तक बीज, कलम या जड़ को रखने से उसकी पैदा होने की ताक़त मारी जाती है। इस लिए उसमें एक मिनिट तक ही डुबोकर चूर्ण और सूखी खाद से सुखा ले।

और और तरकीबें—देखा गया है कि कभी कभी अच्छी तरह जोत कर उम्दा बीज बोने पर भी कीड़े लग गये। जाँच करने पर मालूम हुआ कि रात को कीड़े आकर पौधे टहनियों और पत्तियों पर अण्डे देकर चले जाते हैं। इन अंडों में से कीड़े निकल कर फूल, पत्ती खा जाते और रस पीकर फसल को बिगाड़ते हैं। इसकी दवा यह है कि रात को खेत के किसी तरफ़ जगह बदल आग जलाते रहने से ये कीड़े घट जाते हैं। जेठ, असाढ़ और कातिक के महीनों में कीड़े ज़ियादा बढ़ते हैं। इन्हीं दिनों में आग जलाने से कीड़े रोशनी की तरफ़ खिँच कर आग में जल मरते हैं। टिड्डियाँ दल बाँध कर एक सूबे से दूसरे सूबे तक धावा मारती हैं; जिस खेत में बैठ गईं; वहाँ सब स्वाहा कर दिया। अगर कुछ देर पहले मालूम हो जावे कि टिड्डी दल आरहा है; तो खेतों में जाकर हल्ला मचाने और पीपा बजाने से वे भाग जाती हैं।

कुछ दिनों तक ठहरनेवाली फ़स्ल के पेड़ों में जैसे चा और कपास वग़ैरह अगर कीड़े लग जावें तो संध्या के समय पाट या फूस की लकड़ी जला कर पेड़ में छुआने से कीड़े भाग जाते हैं। इससे पेड़ कुछ कुछ झुलस तो ज़रूर जाता है पर जल्दी पनप उठता है। अगर एक बार ऐसा करने से कीड़े पिण्ड न छोड़ें तो दुबारा यही काम करना चाहिए। आग से कीड़ों के महीन बीज भी मारे जाते हैं। पेड़ को आँच दिखाने की एक कल भी है। यह एक असबेस्टस (Asbestos) नामक अदह्य पदार्थों से बना हुआ गोला है; जो एक छड़ी में लगा मिट्टी के तेल में भिगोकर जलाया जाता है।

पौधे में कीड़े—अगर बैंगन और गोभी वग़ैरह में कीड़े लग जावें तो ज़हर, चूना और खार को महीन पीस कर पोटली में बाँध ले। ऐसी २०—२० पोटलियाँ एक लम्बे बाँस में बाँध कर पौधों के ऊपर धीरे धीरे ठोंक ठोंक कर वह बुरादा गिराता जावे। १ हिस्सा ज़हर, १०० हिस्से चूना और इतना ही खार इस काम में लावे। बाँस या लाठी के दोनों छोर पकड़ कर अगर दो आदमी छिड़कें; तो थोड़ी ही देर में १ बीघा ज़मीन ज़हर से छिड़की जा सकती है। जब बैंगन और गोभी फल रही हो, या और कोई शाक स़ब्ज़ी खाने की हालत में आरही हो; तब भूल कर भी इस तरकीब से काम न लेना चाहिए।

मिट्टी के भीतर कीड़े दो क़िस्म के होते हैं—(१) कौरा और (२) चोरा। चोरा जाति के कीड़े रात को निकल कर पेड़ और पत्ती खाकर पौधे का नाश कर देते हैं, और कोरा रात दिन मिट्टी में ही रहकर पौधे की जड़ काटते रहते हैं। जब यह पतङ्ग की सूरत में होता है तब रात को निकल कर पत्ती खाजाया करता है। मिट्टी के इन कीड़ों को मारने के लिये मिट्टी के तेल या रेंड़ी के तेल के अर्क़ को पिचकारी से छिड़कना चाहिए। मिट्टी के तेल का अर्क बनाने की रीति यह है—मक्खन निकले हुए आधी बोतल दूध में १ बोतल मिट्टी का तेल मिलाकर १० मिनट तक हिलावे। यह मिली हुई दवा ५० बोतल पानी में मिला कर पिचकारी के ज़रिये पेड़ की जड़ों में डाले। इससे कीड़े

मर जांयगे। पिचकारी का काम दमकले से भी लिया जा सकता है। अगर कल से सींचना हो तो रात ही का समय ठीक है, क्योंकि रात को कीड़े मिट्टी से निकल कर पेड़ पर चढ़ते हैं। रेंड़ी के तेल को सोडे के साथ गरम करके हिलाने से रेंड़ी के तेल का अर्क़ तैयार होता है। यह भी ऊपर लिखी रीति से छिड़का जाता है।

अगर पेड़ के ऊपरी हिस्से में कीड़ा लग कर फ़सल को ख़राब करता हो; तो यही अर्क़ कल के ज़रिये या और किसी ढँग से उस पर छिड़क देना चाहिए। तम्बाकू, उबला हुआ पानी, हींग का पानी, हल्दी और पिसा हुआ मिर्च छिड़कने से भी कीड़े भाग जाते हैं या मर जाते हैं। महुए की खली जला कर उसका धुआँ देने से भी कीड़े भागते हैं।

जब पेड़ १ फुट से ऊँचे हो जावे तब पालतू जानवर मुर्गी और पेरू वग़ैरह उसमें छोड़ दिये जावें। वे कीड़ों को चुग लेते हैं। तम्बाकू और बैंगन की पत्ती में कीड़े लगने पर यही उपाय करना चाहिए। छोटे पेड़ों में मुर्गी वग़ैरह छोड़ देने से फ़ायदा होता तो है पर पेड़ टूट जाते हैं।

हरदा लगना—ज़मीन में पानी रह जाने पर या अच्छी तरह सूर्य्य की किरणों के न पड़ने से यह रोग होता है। धान के सिवा और कोई फ़सल बँधे हुए पानी में रह कर स्वस्थ और ताज़ी रह कर बढ़ नहीं सकती। पाट, अरहर, भुट्टा, ज्वार, गन्ना वग़ैरह के पौधे पानी में घिरे रहने से रोगी हो जाते हैं। बैंगन और मिर्चा के खेत में अगर पानी भरा रहे, तो वे मर जाते हैं। इसलिये पहले ही ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया जावे जिसमें बरसात में वहाँ पानी जमा न होने पावे। पेड़ की जड़ की मिट्टी को खोद देने से ज़मीन पोली हो जाती है। इससे जड़ें आसानी से अपनी ख़ुराक़ पा सकती हैं—पौधा सतेज हो जाता है। जड़ के पास मिट्टी में अगर कीड़े मकोड़े होते हैं तो वे भी खोदने से भाग जाते या मर जाते हैं। सूर्य की किरणें काफ़ी तौर पर वहाँ पड़ सकती हैं। इसलिये पेड़ को दुरुस्त करने के उद्देश्य से जड़ के पास की मिट्टी को कभी कभी कुदाली से खोदना लाभदायक है। अब तक कोई अच्छा उपाय नहीं जाना जा सका है जिससे गेहूँ का हरदा रोग दूर किया जा सके। इस रोग की जड़ गेहुँओं के बीज के साथ ही आती है; इसलिये बोने से पहिले उसे तूतिये के पानी में धो लेना चाहिए। धान, भुट्टा और ज्वार के रोग भी इसी जाति के हैं। तूतिये के पानी में इनके बीज धो डालने से ही फ़ायदा होगा।

बीज रक्षा—कई तरकीबों से कीड़ों का नाश करने पर भी फ़सल काटते समय बिना कीड़ों का अनाज पाना सम्भव नहीं है। फ़सल में कीड़े के अंडे कुछ न कुछ रह ही जाते हैं। अगर अनाज सावधानी से साफ़ कर न रक्खा जाय, तो बीज को अंडे से निकल कर कीड़े, भण्डार में ही खा जाते हैं। सच तो यह है कि किसान भुट्टे, गेहूँ और अनाज के बीज की कीड़ों से रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए कीड़ों के जूँठे बीज को चौगुना बोने पर भी; कभी काफी फसल नहीं होती। बीज के अच्छे बनाये रखने का उम्दा उपाय कारबन बाइ-सलफाइट (Carbon bisulphite) अर्क़ का व्यवहार करना है। ४० मन बीज को १ सेर कारबन बाइ-सलफाइट बचा सकता है। इस अर्क़ में जलाने की तासीर है; इसलिये भूलकर कभी इसके पास आग या दीया न ले जावें। एक बड़े बर्तन में अच्छी तरह सूखे हुए बीज को पोटली में बाँध कर रख दे; ऊपर से एक प्याला अर्क़ डाल कर उस बर्तन का मुँह गोबर से बन्द कर दे। घंटे भर में बीज को निकाल कर टीन के बर्तन या नमक के थैले में रख देने से कीड़े न रहेंगे। थैले को नमक के पानी से धोकर सुखा लेने पर उसमें कीड़े नहीं जा सकते। किसी बर्तन में बीज भर कर ऊपर से नीम की पत्ती डाल दी जाय, तो कीड़े लगने का डर न रहेगा।

धान—चावल में जो कीड़े देखे जाते हैं, उनका वैज्ञानिक नाम कैलंड्रा अक्सिज़ी calundra oxyzeae है। यद्यपि इससे खेत में धान के पौधों को कोई नुक़सान नहीं होता, पर घर में जमा किये हुए धान

के ये भारी दुश्मन हैं। भूसी से छिपे चावल को ये नुक़सान नहीं पहुँचा सकते पर साफ़ चावलों पर तो ये बेतरह टूटते हैं। इनका डील ⅛ इंच से कुछ बड़ा होता है। इनके काले परों पर ४ लाल बिन्दु होते हैं—यही इनकी पहचान है। गेहूँ और भुट्टों पर इनका जी चलता है।

इन्हें दूर करने के लिए बाइ-सलफ़ाइट आफ कारबन, नीम की पत्ती और गन्धक का इस्तेमाल होता है। पर यह अभी तक साबित नहीं हो सका कि इनमें कौन चीज़ सब से अच्छी है। जिस स्थान में कीड़े एक बार लग चुके हों; वहाँ पर फिर अनाज को न रखने और कूड़ा, धूल वग़ैरह न रहने देने से भी कीड़े नहीं लगते।

बालेश्वर और चटगाँव में धान के बीज जमने पर एक क़िस्म का कीड़ा (cutworms Agrotis Suffura Habee) अंकुर को काटता है।

इस जाति का कीड़ा जिन जिन चीज़ों के पौधों में लगे; अंकुर निकलने से ही उनमें पेरिस ग्रीन (Paris green) नाम के विषैले पदार्थ का पानी छिड़क देना चाहिए। इससे पौधे की पत्ती खाकर कीड़ा मर जायगा। बाकरगंज, कटक, हजारीबाग़ और अन्य स्थानों भी धान में एक मूया (Leptocorisa Acuta Thumb) नाम का कीड़ा लग जाता है। वैशाख महीने के आरम्भ में जब पानी बरसता है (क्योंकि उड़ीसा में इस समय वर्षा होने लगती है) तो धान के बीज या अंकुर को ये कीड़े खा डालते हैं। जिस ओर हवा का ज़ोर हो; उसी ओर कूड़ा करकट जलाने से धुआँ फैल कर कीड़ों के ज़ोर को घटा देता है।

एक दूसरे क़िस्म का कीड़ा (Hispa Aenexeus Baly) बरसात में धान के खेतों में होता है। यह पेड़ की पत्ती और छाल को भक्षण कर भीतरी तन्तु निकाल देता है। यह सारी फ़सल को बर्बाद नहीं करता। मामूली तौर पर इस कीड़े के हमले से फ़ी सदी १० से ५० हिस्से तक फ़सल मारी जाती है।

इसके दूर करने के दो उपाय हैं:—सब से पहले खेत का पानी निकाल देना चाहिए। देखा गया है कि उसी खेत की फ़सल पर इन कीड़ों का ज़ियादा ज़ोर रहता है; जिसमें पानी भरा रहता है। दूसरा उपाय धुआँ देना है, जिससे इनकी मृत्यु होती है।

भुट्टा—इसमें भी ऊपर लिखा उद्भिद् जाति का रोग होता है। यह ज़मीन के नज़दीकी पेड़ के हिस्से पर हमला करता है। पेड़ के सारे हिस्सों में छोटे कोये फूले हुए दीख पड़ते हैं। फटने पर इन्हीं हिस्सों से एक क़िस्म की काले रंग की पतली चीज़ बहा करती है। जब फल को यह रोग हो जाता है तब उसमें दाने नहीं पड़ते; सिर्फ़ काले रंग की बुकनी नज़र आती है। यहाँ सैकड़ों खेतों में, जहाँ भुट्टे उपजते हैं यह रोग देखा जाता है। इससे किसानों का बहुत नुक़सान होता है। यह रोग एक पेड़ से दूसरे में लग कर पूरे खेत में फैल जाता है। इसलिए अगर इस रोग के होने का किसी पेड़ में शक हो, तो फ़ौरन उसे उखाड़ कर जला देना चाहिए। बोने से पहले बीज में से फ़ी सदी दो हिस्से अगर कसीस के पानी में तीन चार घंटे तक डुबो रक्खें; तो यह रोग होता ही नहीं।

गन्ना—कई वर्ष पहले रोग के कारण गन्ने की खेती बम्बई के सूबे से एक तरह उठा दी गई थी। इस रोग का नाम धासा (Daetraea Basharatis Fabur) है। कहीं कहीं किसान इसे मजेरा भी कहते हैं। यह कीड़ा डंठल में घुस कर रेशा खाता है। सन् १८५७ ई० में बङ्गाल के हुगली, रंगपुर और वर्द्धमान ज़िलों में होने वाली लाल बम्बैया ईख इस कीड़े के मारे बिलकुल बिगड़ गई थी। जब पानी की कमी होती है; तभी यह रोग देखा जाता है। इसके अतिरिक्त एक ही जाति का गन्ना यदि बार बार एक ही खेत में बोया जाय, तो कुछ दिनों में पतला होकर वह इस रोग से ख़राब हो जाता है। जिन पेड़ों में इस रोग के लक्षण दीख पड़ें, उन्हें उखाड़ कर खेत से दूर लेजा कर जला दे; और फ़सल कट जाने पर खेत

का कूड़ा कर्कट हटवा दे। इस से फिर इसका डर नहीं रहता।

गन्ने का दूसरी दुश्मन फफूंदी है। जब गाँठ से अंकुर निकलता है; तब फफूंदी से बड़ा नुक़सान होता है। अगर खेत में भरपूर पानी दे दिया जाय, और वह अच्छी तरह गोड़ दिया जाय; तो इसका ज़ियादा डर नहीं रहता। पर मिट्टी का तैल इसकी सब से बढ़िया दवा है। फफूंद इसकी बदबू को बर्दाश्त नहीं कर सकती। बोने से पहले गन्ने के टुकड़ों को मिट्टी के तैल में पानी मिला कर भिगो देने से फिर फफूंदी का डर नहीं रहता।

आलू—बम्बई, बंगलोर, नीलगिरी और बङ्गाल के आलुओं में कीड़े हो जाते हैं। पेड़ का ऊपरी हिस्सा जब सूखने लगे, तब जानना चाहिए कि इसे रोग हो गया। इस वक्त आलू की बाढ़ मारी जाती है। आलू सड़ने से बदबू फैलती है। आलू काटने पर उसमें काले काले गोल दाग़ दीख पड़ते हैं। खेत से खोदे जाने पर ताज़े आलू तो खाये जा सकते हैं; पर ये ठहर नहीं सकते, सड़ जाते हैं।

बचाने के उपाय—सदा उम्दा बीज बोना चाहिए। अगर एक ही क़िस्म का आलू बहुत दिनों तक बोया जाय, तो यह रोग अवश्य होगा। प्रति बीघे ७॥ सेर तूतिया, १२ छटाँक चूना, और ४० मन ७ सेर पानी डालने से इसका डर घट जाता है। किसी काठ के बड़े बर्तन में, पोटली में तूतिया बाँध कर डाल देने से गल जावेगा; किसी दूसरे बर्तन में चलनी से चूने को छान कर तूतिया में मिला दे। बाक़ी पानी इसी तूतिया के पानी में मिला कर सादे खेत को सींच दे।

आलू में एक और रोग होता है जिससे पत्ती सिकुड़ जाती है। फिर बाढ़ बन्द होकर पौधा मर जाता है। जिन पेड़ों में इसके होने के आसार दिखाई दें; उन्हें उखाड़ कर जला डालना चाहिए। अगर ज़ियादा फैल जावे; तो फ़ी सैकड़े ५ हिस्से कसीस मिला कर पिचकारी के ज़रिये खेत भर में पानी छिड़क दे। पहले से सावधान रहने पर यह रोग दूर हो सकता है।

लंडन पारपल (London purple)—१० सेर मैदे के साथ ३—४ छटाँक लंडन पारपल मिलाकर १ पोटली में बाँध ५ मन पानी में मिलाने के बाद वृक्ष में सींचना चाहिए। आम के कीड़े भी इससे जाते रहते हैं।

पैरिस ग्रीन (Paris green)—७ या ८ छटाँक पैरिस ग्रीन १० सेर मैदे के साथ मिलाकर या ५ मन पानी के साथ लंडन पारपल की तरकीब से इस्तेमाल करे।

कारबोलिक एसिड—१०० हिस्से पानी में एक हिस्सा एसिड मिलाकर पेड़ की जड़ और पत्तियों में छिड़के।

कैरोसिन और दूध—आठ हिस्से दूध के साथ १ हिस्सा मिट्टी का तैल मिलाकर इस्तेमाल करने से कीड़े मर जाते हैं।

तम्बाकू का पानी—तम्बाकू की पत्ती को पानी में उबाल कर पेड़ में छिड़क देना चाहिए। इसकी कोई नाप मुक़र्रर नहीं। ज़रूरत देख कर इस्तेमाल करे।

—:०:—

सप्तम अध्याय

रबी अथवा जाड़े की फ़सल।

गेहूँ।

युक्त प्रदेश में बहुत क़िस्म की गेहूँ की खेती होती है। गेहूँ रबी के अनाज में गिनी जाती है। बलुई अथवा दोमट ज़मीन से मटियारी ज़मीन गेहूँ के लिये अच्छी समझी जाती है, क्योंकि जिस समय इसकी खेती होती है उस समय बरसात नहीं रहती। बलुई या दोमट ज़मीन का रस जल्दी सूख जाता है—तरी नहीं रहती। ऊँची ज़मीन से नीची ज़मीन अच्छी होती है। युक्त प्रदेश में बहुत उम्दा जमीन में दूसरे या तीसरे साल गोबर की खाद दी जाती है। गोबर की तादाद १०० मन होनी चाहिए। कहीं

कहीं, जैसे बिजनौर, फ़तेहपुर, गोरखपुर में ज़मीन के ऊपर भेड़ी बैठा कर ज़मीन को तैयार किया जाता है। मेरी राय यह है कि नीची ज़मीन में हड्डी का चूरा और ऊँची ज़मीन में मिली हुई खाद डाली जाय।

बरसात के अन्त में क्वार से कातिक तक ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये। गेहूँ के खेत में ८ या १० दफ़ा हल चलाना उचित है। गोरखपुर ज़िले में १० दफ़ा ज़मीन को जोता जाता है। पर बुंदेलखण्ड की काली ज़मीन में दो या तीन दफ़े हल चलाना काफ़ी समझा जाता है। डूथि और फुलर साहब की राय यह है कि बरसात के शुरू में ज़मीन को अच्छी तरह जोत कर पड़ा रहने देना चाहिए, ताकि अच्छी तरह वर्षा का पानी उसमें जज़्ब हो जाय।

ज़मीन को ७ या ८ इंच गहरा जोतना उचित है, क्योंकि गेहूँ की जड़ ज़मीन के ऊपर न फैल कर ज़मीन के भीतर तक जाती है। ज़मीन कमज़ोर होने पर अच्छी तरह खाद डालना उचित है। जोतने के समय गोबर की खाद, और पेड़ बड़ा होने पर ज़मीन में सोरा या नमक डालना चाहिये। नीची ज़मीन जो वर्षा के पानी में डूब जाती है उसमें खाद डालने की ज़रूरत नहीं होती, और अगर खाद की ज़रूरत समझी जाय तो जोतने के समय हड्डी का चूरा दिया जाय। दानेदार खाद वर्षा के समय ज़मीन में छिड़क देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से वह जल्दी गलती नहीं है। ज़मीन की हालत के अनुसार फ़ी बीघा ५ सेर से १५ सेर तक सोरा या नोन और २ मन हड्डी का चूरा दिया जा सकता है।

कातिक का महीना बीज बोने का समय है। बीज साधारणतः छिड़ककर बोया जाता है। परन्तु कृषितत्त्व जानने वालों की राय यह है कि नाली बना कर बीज बोने से फ़सल ज़्यादा होती है। बिना खाद या पानी की ज़मीन से फ़ी बीघा २।३ मन अनाज मिलेगा। पर खाद और पानी देने से फ़ी बीघा ९।१० मन तक फ़सल की आशा की जा सकती है। फ़्रांस से लौट कर आये हुए कृषि-तत्त्ववेत्ता बाबू प्रबोधचन्द्र दे ने फ़ी बीघा आध मन सोरा डाल कर और ज़मीन में दो दफ़े सिँचाई करने पर नौ मन के हिसाब से पैदावार पाई है। फ़ी बीघा सवा पाँच सेर बीज लगता है। उम्दा तरह खेती करने से साढ़े सात सेर बीज लगेगा। बीज कीड़े का खाया हुआ न होना चाहिये। इस पर विशेष ध्यान रहना ज़रूरी है। नाली बनाकर उसमें बीज बोने से पानी सींचने का विशेष सुभीता होता है। बहुधा देसी किसानों की राय यह है कि गेहूँ का बीज पतला बोने से लाभ ज़्यादा होता है। यह राय ग़लत है। क्योंकि बीज पतला बोने से सूर्य की धूप से ज़मीन सूख जाती है और पेड़ का भी रस सूख जाता है, जिससे वह कमज़ोर भी हो जाता है। पर घनी बोआई करने से इतनी हानि नहीं पहुँच सकती।

युक्तप्रदेश में गेहूँ, जौ अथवा चने के साथ बोई जाती है। रुहेलखण्ड में गेहूँ के खेत में एक दफ़े और दोआब की ख़ुश्क जमीन में आठ दफ़े पानी सींचा जाता है। साधारणतः चार दफ़े सींचना काफ़ी होगा। बहराइच ज़िले में जब देखा जाता है कि पेड़ में बहुत पत्ती होने लगीं तब हँसिया से पेड़ का ऊपरी हिस्सा काट लिया जाता है। यह तरीक़ा पेड़ के तीन फ़ुट ऊँचे होने पर काम में लाया जाता है। बहराइच का यह तरीक़ा बिरला ही समझा जाता है।

गेहूँ में एक तरह की बीमारी होती है। इस बारे में 'कीड़ा और रोग का प्रकरण' देखो। यहाँ उसका फिर उल्लेख ज़रूरी नहीं है।

फागुन से चैत महीने के बीच में गेहूँ पक जाती है और पेड़ भी सूख जाता है। तब उसको काट कर बैलों से मड़ाकर फसल उठाई जाती है। टोकरी में भर कर ऊपर से हवा की तरफ़ छोड़ने से अनाज नीचे गिर पड़ता है और गर्दा कूड़ा उड़ जाता है पीछे गेहूँ सूप से झाड़ ली जाती है।

जौ।

इसकी गिनती रबी फसलों में है। वर्षा के पीछे ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये

ज़मीन को गहरा जोतना ज़रूरी है। दो दफ़े जोतने के बाद ४ या ५ गाड़ी गोबर डाल कर ज़मीन को फिर जोत कर खाद की मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला दे। युक्तप्रदेश में बलुई ज़मीन में जौ की खेती होती है। इसलिये ज़मीन में ज़्यादह खाद नहीं दी जाती। अगर जौ के बाद गेहूँ बोई जाय तो जौ की खेती हूबहू गेहूँ की तरह की जाती है, अगर चना या मटर बोया जाय तो जौ की खेती में खाद और पानी कम दिया जाता है। युक्तप्रदेश में बोने के पहले चार दफ़े ज़मीन को जोतते हैं।

कातिक के महीने में बीज बोया जाता है। चैत बैसाख में जौ पक जाता है। फ़ी बीघा दस सेर बीज लगता है। युक्तप्रदेश में ज़्यादातर चना, मटर या गेहूँ के साथ जौ बोया जाता है। सरसों भी १५ फ़ुट की दूरी पर बोया जाता है। जौ की खेती में पानी नहीं सींचा जाता। पर पानी सींचने से फ़सल अच्छी होती है। बीज बोने के ५ या ६ दिन बाद अंकुर निकल आता है। पौधा कुछ बड़ा होने पर हर बीघे में सात आठ सेर शोरा छिड़क देना अच्छा है। ज़मीन अगर तर न रहे तो शोरा देने से कुछ फल नहीं होता।

युक्तप्रदेश में दो दफ़े पानी सींचा जाता है। पर जहाँ जहाँ जाड़े में पानी बरसता है, जैसे मेरठ, रुहेलखण्ड, वहाँ पानी कम दिया जाता है।

पेड़ काट कर जमा करके बैल वगैरह जानवरों से मड़ाकर अनाज निकाल लिया जाता है। फ़ी बीघा ५ मन से २० मन तक अनाज मिलता है।

खेती का ख़र्चा

चार बार जुताई	३)
„ ढेला तुड़ाई	।।)
बीज ६० सेर (एक एकड़ में) ...	२।।)
बोआई	।।।-)
मड़ाई	३)
साफ कराई	।=)
पानी सिंचाई	४)
ज़मीन का लगान	५)
	कुल २०।।।)

खाने के लिये जो जौ तैयार किया जाता है वह पहले ओखली में ख़ूब कूटा जाता है, पीछे सूप से फटकारा जाता है। इसमें गेहूँ या चने का आटा मिला कर नमक, लहसुन, प्याज़, और लाल मिर्च मिला कर खाया जाता है। भारत के ग़रीब आदमी इसी तरह का खाना खाते हैं। जो जौ अच्छी तरह साफ नहीं होता है वह विलायत के बने हुए बार्ली से खेतसार में उम्दा है। पर जिसको बद-हज़मी की बीमारी है उसको वह हज़म नहीं हो सकता।

जौ से दारू तैयार होती है। युरोप में इससे शराब बनाई जाती है।

जई।

कहा जाता है कि जई को चंगेज़ख़ाँ हिन्दुस्तान में लाया। मुग़ल सम्राटों को भी जई का नाम मालूम था। आईन अकबरी में भी जई का उल्लेख देख पड़ता है। आदमियों के लिये जई अच्छा खाना नहीं है। पकने पर अनाज गिर जाने के डर से यह कच्ची ही काटी जाती है। भारत में घोड़ों को खिलाने के लिये जई का इस्तैमाल किया जाता है। जई का डंठल जानवरों के खाने के लिये धान या गेहूँ के डंठल से भी उम्दा है। युक्तप्रदेश में थोड़े दिनों से इसकी खेती हो रही है। कनटुन्मेंट और घोड़शाल के आस पास घोड़ों के लिये उसकी खेती की जाती है। मेरठ और रुहेलखंड ज़िले में इसकी खेती ज़्यादा होती है।

जौ से जई की खेती में किसी क़िस्म का फ़र्क़ नहीं है। अच्छी ज़मीन में इसकी खेती होती है। यदि खेत अच्छी तरह सींचा जाय तो जाड़े के महीनों में घोड़ों को खिलाने के लिये जई तीन दफ़े काटी जा सकती है। फिर यह इतनी बढ़ती है कि एक दफ़े इससे थोड़ा सा अनाज भी मिल सकता है। जई की खेती में ज़मीन की उपजाऊ शक्ति जल्द घट जाती है। एकही ज़मीन में जितनी दफ़े इसकी खेती होगी

उतनी दफ़े इसकी पैदावार घट जायगी। एक एकड़ बे सींची हुई ज़मीन से १० मन, और सिंची हुई ज़मीन से १४ मन अनाज पैदा हो सकता है।

समतल प्रदेश में सितम्बर से अक्तूबर तक जई बोई जाती है। मुख्य बात यह है कि वर्षा बन्द होने पर ही इसका बीज बोना चाहिए। बंबई में जई रबी की फ़सल में गिनी जाती है, और इसकी खेती में ख़ूब सिंचाई होती है। जिस ज़मीन की मिट्टी बहुत चूर हो और पानी सींचने का सुभीता भी हो, ऐसी ज़मीन पर जई की खेती अच्छी होती है। एक एकड़ ज़मीन में ५० सेर बीज छिड़क कर बोया जाता है। साढ़े तीन महीने से चार महीने के अन्दर अनाज पक जाता है। किसी तख़्ते या बैल से मड़ा कर अनाज को अलग किया जाता है। बंगाल से जई मारिशस में ज़्यादातर भेजी जाती है।

ख़रीफ अथवा गर्मी की फसल।

धान, चावल।

धान पृथ्वी भर पर सब जगह पैदा होता है, पर हिन्दुस्तान में इसकी पैदावार ज़्यादा होती है। हिन्दुस्तान में बहुत क़िस्म का धान पैदा होता व देख पड़ता है। उनमें से जो युक्तप्रदेश में पैदा होते हैं उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा। यहाँ बासमती, बाँसफल, झिलमा उम्दा धान समझे जाते हैं। सिउनधी, सिमाढ़ा दूसरे दर्जे के धान गिने जाते हैं। तीसरे दर्जे के धान में साढ़ी उम्दा है।

समय—बोने और अनाज बटोरने के समय में धान में जितना फ़र्क देख पड़ता है उतना और किसी अनाज में नहीं। जनवरी से जुलाई तक धान बोया जाता है। ज़्यादातर जून से अगहन महीने तक छिड़क कर यह बोया जाता और जून से नवंबर तक रोपा जाता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है, वर्षा शुद्ध होने से ही उसका काम शुद्ध हो जाता है, और वह दो या ढाई महीने में यानी भादों या कार में काटने के लायक हो जाता है। इसलिये उसको भदोई या क्वाँरी धान कहते हैं। यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है।

जो धान रोपा जाता है, अर्थात् जिसे जड़हन धान कहते हैं वह वर्षा शुरू होने पर अलग किसी ज़मीन में बीज की तरह बोया जाता है। जब बहुत अंकुर निकल आता है तब वह दूसरे खेत में रोपा जाता है। जड़हन धान अगहन में काटा जाता है। इसलिये उसको अगहनी धान कहते हैं। एक क़िस्म का धान है, जिसे जेठी या बोरो धान कहते हैं। यह जनवरी में बोया जाता और फर्वरी में रोपा जाता तथा मई में काटा जाता है।

धान अकेला बोया जाता है। कभी कभी जुआर भी इसके साथ बोई जाती है।

खाद—सख़्त मटियार ज़मीन या इस तरह की ज़मीन जिसमें पानी ठहरता है, धान के लिए फ़ायदेमंद है। ऊसर ज़मीन में भी यदि पानी का बंदोबस्त रहे तो धान हो सकता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसके लिए अकसर कोई खाद नहीं दी जाती। जो धान रोपा जाता है उसके बीज की ज़मीन में खाद दी जाती है। मगर बीज की ज़मीन से पौधा उठाकर जिस ज़मीन में रोपा जाता है उसमें किसी तरह की खाद नहीं दी जाती। सिर्फ़ बनारस ज़िले में दोआब जगह में सुना गया है कि रोपने की जगह पर जानवर रक्खे जाते हैं, और जिस मट्टी में शोरा भरा रहता है वह मट्टी ज़मीन में डाली जाती है। युक्तप्रदेश में ऐसा ही तरीक़ा देखा जाता है।

मगर खाद के बारे में मैं अपनी राय नीचे लिखती हूँ—

माघ से वैशाख के भीतर दो एक दफ़ा वर्षा हो जाने पर ज़मीन को दो तीन दफ़ा जोतो। ज़मीन की उपज को बढ़ाने के लिए ज़मीन में छन्दाइव नील या अरहर बो दो। असाढ़ के अंदर जो पौधा होगा उसको मई देकर ज़मीन पर लिटा दो। धीरे धीरे वह सड़ जायगा। इससे ज़मीन का बड़ा

भारी फ़ायदा होगा। इसको सब्ज़ी खाद (यानी Green manure) कहते हैं। इसके सिवा तरह तरह की जानदार खादों का इस्तैमाल होता है, जिनमें गोबर भी एक है। सख्त मटियार ज़मीन में राख भी डाली जाती है। जानदार खाद देने से पौधों के लिए अक्सर सब क़िस्म की ज़रूरी चीज़ें आ जाती हैं, क्योंकि और और चीज़ों के सिवा इसमें शोरा, पोटासियम और फासफारिक एसिड रहता है। पौधे की पुष्टि के लिए ये तीन चीज़ें बहुत ज़रूरी हैं। राख डालने से पोटासियम और फासफारिक एसिड मिल जाता है, मगर जवक्षार नहीं मिलता। साधारणतः बनावटी उपाय से शोरा देने की उतनी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि धान वर्षा की फ़सल है। इस समय आसमान के पानी के साथ काफ़ी जवक्षार अर्थात् शोरा ज़मीन में आ जाता है। इस लिए कुआँ या तालाब के पानी से बरसात का पानी पौधों के लिये फ़ायदा पहुँचानेवाला होता है। जानदार खाद और सरसों या रेंडी की खली धान के खेतों के लिए बहुत ही मुफ़ीद है। फ़ी बीघा ५ या ६–७ गाड़ी वह डाली जा सकती है। ज़्यादा खाद डालने से पौधा तेज़ होता है, मगर फसल अच्छी नहीं होती। पहली दफ़ा या दूसरी दफ़ा जोतने के वक्त़ तमाम खेत में बराबर बराबर खाद को फैला कर तब खेत को जोतना चाहिए। थोड़ा पहले इस तरह न करने से खाद के गलने में देर लगती है। इसलिए नये रोपे हुए पौधे को पहली हालत में खाद खींचने का मौक़ा नहीं मिलता। अगर खली डाली जाय तो उसको कूट कर पौधा रोपने के बाद खेत में छिड़क देना चाहिए। फ़ी बीघा एक मन से दो मन तक खली डाली जा सकती है।

हड्डी की बुकनी और शोरा मिली हुई खाद धान के लिए बहुत ही मुफ़ीद है। फ़ी बीघा एक मन हड्डी की बुकनी और १० सेर शोरा देना चाहिए। इससे हर एक बीघे में एक मन धान और २४–२५ मन पयाल मिल सकता है। यह खाद इस्तैमाल करने से फ़ी बीघा पाँच रुपया ख़र्च पड़ेगा। मगर ख़र्च निकाल कर बहुत मुनाफ़ा रहेगा।

बीज ज़मीन अर्थात् जिस ज़मीन में बीज बोया जाता (और जिस से उठा कर दूसरी जगह रोपा जाता है) वह अच्छी तरह तर और चूर चूर होनी चाहिए। बीज ज़मीन की मिट्टी जितनी चूर हो उतनी ही ढीली होनी चाहिए। इस लिए बीज बोने के पहले एक दफ़ा मई लगा कर ज़मीन को दाब देना चाहिए। मिट्टी ढीली रहने से पौधों की जड़ें बहुत दूर तक चली जाती हैं, जिससे उखाड़ने के समय बहुत सी जड़ें टूट जाती हैं। बीज बोने के बाद भी एक दफ़ा अच्छी तरह मई लगानी चाहिए। मई लगाने से बीज ज़मीन में ढक जाता और इस कारण पौधा बहुत जल्दी पैदा होता है।

अगर बीज छिड़क कर बोया जाता तो ४० सेर बीज एक एकड़ ज़मीन के लिए काफ़ी होता है। साधारणतः जब वर्षा होने लगे तब बीज को रात भर पानी में भिगोकर दो तीन रोज़ तक भीगी घास से ढक रखना उचित है। इससे अंकुर जल्दी निकल आता है। जब दूसरी जगह रोपा जाता है तब छः इंच की दूरी पर दो से छः तक पौधे एक साथ रोपे जाते हैं।

पानी सींचना—गर्मी की ऋतु में जो धान बोया जाता है उसमें पानी की बहुत ही ज़रूरत होती है। जो धान वर्षा के शुरू में बोया जाता है और अगस्त या सितंबर में काटा जाता है उसके लिए किसी तरह के पानी की ज़रूरत नहीं होती। जो धान रोपा जाता है और नवंबर में काटा जाता है, उसमें वर्षा ख़तम होने पर दो तीन दफ़े पानी देना चाहिए।

निराई—जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसकी निराई एक दफ़े होनी चाहिये। जो धान रोपा जाता है उसमें निराई की ज़्यादा ज़रूरत होती है, पर इलाहाबाद में निराई बिलकुल नहीं होती।

गेहूँ और जौ जिस तरह काटे जाते हैं उसी तरह धान भी काटा जाता है। पीट कर धान पौधे

से अलग किया जाता है। किसी किसी जगह बैल से मड़ा कर धान अलग किया जाता है। धान के पौधे को पयाल कहते हैं। बैल वग़ैरह जानवरों को यह पयाल खिलाया जाता है। ढेकली से धान कूट कर चावल तैयार किया जाता है। धान को गर्म पानी में उबाल कर सुखा लेने के बाद चावल तैयार किया जाता है।

बीमारी—गण्डूकी या तंकी नामक मक्खी धान की कट्टर दुश्मन है। अगस्त महीने के अन्त में ये मक्खियाँ धान को बहुत नुक़सान पहुँचाती हैं। इसके बारे में षष्ठ अध्याय देखो।

ख़र्च—एक एकड़ ज़मीन में नीचे लिखे मुताबिक़ ख़र्च पड़ता है—जो धान छिड़क कर बोया जाता है—

जुताई (दो दफ़ा)	१॥)
बीज (१ मन)	१॥)
बुआई	।)
निराई (दो दफ़े)	३)
रोपाई	१॥)
मड़ाई	१॥)
सफ़ा कराई	।=)
फ़ालतू ख़र्च	।)
लगान	५)
कुल	१४।॥=)

जो धान रोपा जाता है—

जुताई (चार दफ़ा)	३)
बीज (२५ सेर)	।॥=)
बुआई	─)
खाद (बीज ज़मीन के लिए) ...	॥)
रोपाई	४)
निराई (दो दफ़ा)	३)
सिंचाई	७)
कटाई	१॥)
मड़ाई	२)
सफ़ाई	।=)
लगान	६)
कुल	२८।=)

आज कल चावल का श्वेतसार (Powder-de-riz नाम से) फ़्रांस से यहाँ आता है। इस देश की स्त्रियाँ उसे क़ीमती चीज़ समझ कर ख़रीदती हैं। इसलिए यहाँ इसी श्वेतसार के बनाने की रीति बतलाई जाती है।

चावल में श्वेतसार बहुत ज़्यादह है। इसमें फ़ी सदी ७५—८५ हिस्सा श्वेतसार (Starch) रहता है। और किसी उद्भिद पदार्थ में यह इतना अधिक नहीं पाया जाता। यदि चावल का श्वेतसार बनाना हो तो चावल को चूर्ण करने के पहले किसी खारे पानी में भिगो देना चाहिए। कास्टिक सोडा के साथ पानी मिलाने से खारा पानी तैयार हो जाता है। ३५० हिस्से पानी में एक हिस्सा कास्टिक सोडा मिलाना चाहिए। इस रीति से बनाये गये पानी के ५०० हिस्सों में १०० हिस्से चावल को २४ घंटे तक भीगने देना चाहिए। खारा पानी रखने के लिए ताँबा या टीन का कलई किया हुआ बर्तन अथवा लोहे के एनामेल से बना हुआ बर्तन अच्छा है। बर्तन की तली में एक पेंच (tap) होना चाहिए। पानी की कल में जैसा पेंच होता है; यह पेंच भी वैसाही होना चाहिए। पेंच के अन्दर पीतल की पतली जाली ज़रूर हो। क्योंकि जाली न होने से पानी निकलते समय चावलों के निकल जाने का डर है। इस लिए जाली का रहना ज़रूरी है। बर्तन की तली के टैप को बन्द कर खारा पानी तैयार करना होगा। इसी में २४ घंटे तक चावलों को भीगने देना चाहिए। फिर टैप खोल कर बर्तन से सब पानी बाहिर निकाल देना चाहिए। खारा पानी निकल जाने पर, उसमें चावलों से दूना पानी डाल कर, उन्हें अच्छी तरह हिलाते रहना चाहिए। इससे चावल साफ़ हो जाँयगे। फिर टैप के ज़रिये पानी निकाल कर चावलों को दूसरे बर्तन में रख देना चाहिए। अब चक्की या रोलर मिल से इन साफ़ किये हुए चावलों को पीसना होगा। इस चूर्ण को लेकर छोटे छेदवाली चलनी से छान डालो। जो चूर्ण चलनी में रह जाय; उसे दुबारा

पीस डाले। इस प्रकार दो तीन दफ़ा या जब तक वह अच्छी तरह पिस न जावे तब तक पीस कर चलनी से चालते रहना चाहिए।

चावल का चूर्ण तैयार होने पर एक बर्तन में रखकर उसमें दशगुना कास्टिक सोडा का पानी छोड़ देना चाहिए। अब फिर पहले की तरह २४ घंटे तक कास्टिक सोडा में इन्हें भिगोना चाहिए। बीच बीच में इसे हिलाते रहना चाहिए। फिर निथरे हुए चूर्ण को जमाने के लिए ७० घंटे तक उसे बर्तन में रख छोड़ना चाहिए। इस समय बर्तन का पानी बिलकुल स्थिर रहने दिया जाय—हिलने डुलने न पावे। अब चूर्ण बर्तन की तली में जम जायगा। चावल और बर्तन के साथ जो खनिज पदार्थ था, वह सबसे नीचे रह जायगा। उसके ऊपर चावलों का मोटा कन या धान की भूसी (अगर रह गई हो तो) जमा होगी। सबके ऊपर साफ़ सफ़ेद पालो (Starch) रह जायगा। पालो के ऊपर गँदला पानी रहेगा। इस पानी में चावल का दूध (Gluten)। द्रव अवस्था में रहने के कारण इसका रङ्ग पीलासा होता है। जमे हुए पदार्थों के पानी का ऊपरी हिस्सा साइफ़ोन नल से निकाल देने से चावल का श्वेतसार और उसके नीचे चावलों का कण अथवा भूसी रह जायगी। इन मिले हुए पदार्थों से अनावश्यक चीज़ों के निकाल डालने पर साफ़ पालो मिल जायगा।

पहिली दफ़ा बर्तन का पीलासा पानी साइफ़ोन नल से निकाल देने पर फिर उसमें दूना पानी डाल कर नली की तमाम चीज़ों को हिला देना होगा।

फ़िर एक घंटे तक पानी को स्थिर रहने देना चाहिए। इसके बाद बर्तन के ऊपर दूध के ऐसे सफ़ेद पानी को रेशमी कपड़े से बनी हुई चलनी में चालना होगा। फिर जो चीज़ बर्तन में रह जाय, उसे पानी मिलाकर बार बार छानते जाना चाहिए। इस प्रकार बार बार छानने से प्रायः सभी पालो नीचे गिर जायगा और पालो के अलावा दूसरी वस्तु चलनी में रह जायगी। चलनी के भीतर से पानी मिला हुआ जो पालो पात्र में गिर गया है, वह ७० घंटे के भीतर ही पानी से अलग होकर बर्तन की तली में जम जाता है। इस बर्तन का पानी स्थिर होने पर धीरे धीरे उसे फेंक देने पर बर्तन की तली में साफ गीला पालो मिलेगा। आवश्यकतानुसार एक या अनेक बार इस पालो में पानी मिलाकर हिलाने से और पानी स्थिर होने पर फेंक देने से पालो धुल सकेगा। पानी मैला रहने से बार बार धोने की ज़रूरत होती है।

चावल का साफ़ भीगा पालो सुखा लेने पर बिक्री के योग्य हो जाता है। पालो को बिलकुल न सुखाकर थोड़ा थोड़ा गीला रहते समय सांचे में ढालने से कई क़िस्म की चकती बन जाती है। यह चकतियाँ या सूखी पालो की बुकनी के रूप से बाजार में बिक सकेगा। चावल का पालो कपड़े की इस्त्री के लिए अरारोट के बदले में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस पालो से इस्त्री ख़ूब सख़्त और अच्छी होती है। चावल के पालो के साथ थोड़ासा नील मिलाकर इस्त्री करनी चाहिए।

आजकल कई प्रकार के पाउडर मुँह में लगाने के लिए स्त्रियाँ चाहती हैं। इस पाउडर के तैयार करने में भी चावल के श्वेतसार की ज़रूरत है। चावल का श्वेतसार खाया भी जा सकता है। इसके सिवा और नाना प्रकार के शिल्पकार्य में चावल के श्वेतसार की ज़रूरत होती है। इसलिए इसके बनाने से द्रव्य प्राप्ति का एक नया द्वार मिल जायगा।

मिजहिरी, कुटकी।

युक्त प्रदेश के दक्षिण में इसकी खेती होती है। ललितपुर में इसकी खेती देख पड़ती है। मगर ललितपुर मध्यभारत में गिना जा सकता है। यद्यपि ललितपुर बुन्देलखण्ड में शामिल है, तो भी उसे मध्यभारत की सरहद कहना चाहिये।

जून के महीने में यह बोया जाता है और अक्तूबर के महीने में काटा जाता है। इसके लिये अच्छी

ज़मीन की ज़रूरत नहीं होती। एक एकड़ ज़मीन में दो मन मिजहिरी पैदा होती है।

—:०:—

अखंडत्व।
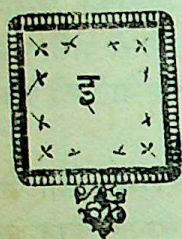
इस वर्ष ब्रिटिश असोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इँगलड के प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता सर आलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने जो व्याख्यान दिया उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है।

लोग पूछेँगे कि आज कल की स्थिति क्या है? भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रकार की राय देंगे पर मेरा उत्तर है कि 'उन्नति की क्षिप्र गति और संशयवाद'। १९ वीं शताब्दी में उन्नति की—विशेष कर भौतिक विज्ञान की उन्नति की—गति इतनी क्षिप्र नहीं थी। नीवँ दे दी गई थीं और दीवारें तैयार होगई थीं पर नई नई ज़मीनों पर नई नई इमारतें खड़ी होने की आशा नहीं दिखाई देती थी। जब कि १८८८ में ईथर की धाराओं की भविष्यद्वाणी की की गई, १८९५ में पारदर्शक किरणों (X rays) का पता लगा, १८९९ में स्वप्रेरित प्रकाशविसर्जिनी क्रिया का निरूपण हुआ और विद्युदण्ड (Electron) की एकान्तता प्रतिपादित हुई तभी से विज्ञान के शीघ्र आगे बढ़ने की आशा दिखाई देने लगी। इस शताब्दी के आरम्भ से तो प्रत्यक्ष-सिद्ध, अनुमान-सिद्ध, और विवेचना-सिद्ध नई नई बातों की वर्षा ही होने लगी। इसीसे मैं ने उन्नति की क्षिप्र गति कही। इस उन्नति के विषय में तो मैं विशेष कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि इसमें कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है कि कौन सी गति यथार्थ उन्नति की ओर है, पर संशयवाद के विषय में मैं कुछ कहूँगा।

मैं यह चटपट बतला देना चाहता हूँ कि संशयवाद से मेरा अभिप्राय उस परलोक आदि सम्बन्धी पुराने झगड़े से नहीं है, क्योंकि यह झगड़ा अब मुल्तबी है। जिस क़िले में परलोकवादी ने शरण ली है वह आक्रमण के लिए लोगों को आकर्षित नहीं करता। जिस कोने को दबा कर वह बैठा है उस पर उसका हक़ है। अब जो झगड़ा चल रहा है वह वैज्ञानिक दलों ही के बीच है जिसमें दार्शनिकों का भी योग है। परलोकवादी तो अब एक कोने में बैठा दूर से आशा लगाए देख रहा है कि इस लड़ाई से कभी न कभी उसके काम की बात निकल आवेगी। वह बैठे बैठे सोचता है कि बहुत सी बातें जिन्हें लोगों ने अधूरे ही प्रमाणों पर उतावली करके झूठा ठहराया वे किसी न किसी रूप में आगे चल कर ठीक प्रमाणित होंगी। इस प्रकार धर्मोपदेशकों का पुराना द्वेष तो अब शान्त है।

आज कल के प्रधान विवाद।

यहाँ उन सब विवादों का वर्णन करना जो आज कल विद्या के भिन्न भिन्न विभागों में चल रहे हैं असम्भव है। मैं यहाँ थोड़े में प्रधान प्रधान विवादों का उल्लेख मात्र किए देता हूँ। भौतिक विद्या में शक्ति (Vitality) पर विवाद चल रहा है। रसायन में अणुओं की बनावट का झगड़ा है। प्राणिविज्ञान (Biology) में पैत्रिक परम्परा के नियमों की छान-बीन है। इन मुख्य विवादों के अतिरिक्त और विषयों में भी परस्पर विचार लड़ रहे हैं। शिक्षा-पद्धति में बच्चों को अधिक स्वतंत्रता देने के लाभ बतलाए जा रहे हैं। राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति में तो दुनिया की कौन ऐसी बात है जिस पर झगड़ा न हो—केवल 'धन और धरती' ही पर नहीं, अदन के पुराने बाग़ से लेकर स्त्री और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध तक पर विवाद छिड़ा है। इसी प्रकार गणित और विज्ञान की शाखाओं में आज कल का संशयवाद अखंडत्व (Continuity) के सम्बन्ध में है। इस शब्द का अभिप्राय मैं आगे चल कर खोलूँगा।

इन सब आंशिक विवादों से बढ़ कर गूढ़ और सिद्धांत-मूलक सब प्रकार के विज्ञान के आधारों की गहरी परीक्षा है जो आज कल हो रही है। एक प्रकार का दार्शनिक संशयवाद भी बढ़ती पर है

जिससे बुद्धि के शुद्ध निरूपण-क्रम पर भी अविश्वास किया जा रहा है और विज्ञान की पहुँच भी परिमित बतलाई जा रही है।

न्यूटन की पदार्थ-व्यवस्था।

केवल दार्शनिक ही नहीं वैज्ञानिक लोग भी पुराने सिद्धान्तों के खंडन में लगे हैं। वैज्ञानिक और गणितज्ञ इस बात का विचार करने लगे हैं कि क्या न्यूटन के चिरपरिचित और अच्छी तरह निर्धारित पदार्थ-नियमों के स्थान पर अधिक नवीन सिद्धान्तों का स्थापन नहीं हो सकता—ऐसे सिद्धान्त जिनके पास तक न्यूटन के नियम केवल कुछ कुछ पहुँचते हैं। सच तो यों है कि एक पूरा अन्यूटनिक सिद्धान्त ही निकाला गया है जिसके आधार हाल में जाने हुए वे परिवर्त्तन हैं जो प्रकाश के तुल्य वेग से गमन करते हुए पदार्थों में होते हैं। वास्तव में यह पाया गया है कि मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ वा गुण हैं। जैसे जैसे वेग बढ़ता है वैसे ही वैसे मात्रा बढ़ती है और आकृति में मोड़माड़ होता है पर साधारण अवस्था में हद से ज्यादा सूक्ष्म रूप से। मैं यहाँ तक इस बात को मानता हूँ पर मैं इसे इतनी हलचल डालनेवाली नहीं समझता जिससे न्यूटन की सारी पदार्थ-व्यवस्था ही उलट पुलट हो जाय। मात्रा का परिवर्त्तन तो जानी हुई बात है पर यह कहना बड़ी भारी भूल है कि मात्रा सदा समान नहीं रहती। इससे न्यूटन का 'दूसरा नियम' (Second law) ही खंडित हो जाता है। पृथ्वी, जलविन्दु आदि परिवर्त्तनशील मात्रा के उदाहरण हैं। परिवर्त्तनशील मात्रा तो बहुत देखी जाती है क्योंकि रगड़ से भी गतिवान् पदार्थ कुछ घिसते हैं यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म रूप से।

मात्रा सदा समान रहती है यह एक स्थूल बात है। मात्रा क्षमता (Energy) और वेग के हिसाब से होती है यह एक सूक्ष्म निरूपण है और बिलकुल ठीक हो सकता है। यह विद्युदण्ड (Electron) के विषय में भी ठीक घट सकता है जिसकी गति प्रकाश के तुल्य होती है। न्यूटन के ही दूसरे नियम के सहारे परीक्षा करके यह जाना गया कि वेग के साथ साथ मात्रा का परिवर्त्तन होता है। मेरा कहना यह है कि हम न्यूटन के नियमों का तिरस्कार न करें बल्कि उनके सहारे नई नई बातों का पता लगाते हुए परिशिष्ट रूप से उनकी कसर पूरी करें।

जितनी ही नई बातों का पता लगेगा उतनीही उलझन बढ़ेगी।

एक बात जो बहुत ध्यान देने की है वह यह है कि हमारे ज्ञान के अधिक सूक्ष्म और यथार्थ होने के कारण ही वह संशयवाद उत्पन्न हुआ है जिसका मैं ने ऊपर उल्लेख किया। वे सुगम नियम जिनका हम व्यवहार करते आते थे इस कारण सुगम थे और उनका पता लगना इस कारण सहज था कि स्थिति की पूर्ण जटिलता अन्वीक्षण साधनों की अपूर्णता के कारण हमसे छिपी थी। केपलर के नियम बिलकुल सटीक नहीं हैं। यदि उसके सामने वे सब बातें होतीं जो आज हमारे सामने हैं तो वह उन नियमों का पता शायद ही पा सकता। जैसा कि केपलर ने बतलाया था ग्रह वास्तव में दीर्घवृत्त (Ellipse) में नहीं भ्रमण करते बल्कि एक प्रकार के अतिचक्रालद (Hypocycloid) में भ्रमण करते हैं, सो भी ठीक ठीक नहीं।

भौतिक विज्ञान के अधिकांश विभागों में सुगमता के स्थान पर जटिलता आती जाती है। अब मेरा कहना यह है कि वे सीधे और सुगम नियम जहाँ तक उनकी पहुँच है वहाँ तक ठीक हैं। उनमें जो कसर है उसका पता आगे के यथार्थ आविष्कार से लगता चलेगा। जिन कारणों तक पुराने लोग नहीं पहुँच पाते थे आज उन तक हमारी पहुँच है। इससे सच पूछिए तो पुराने नियमों में कोई व्याघात नहीं होता बल्कि और अधिक कारणों का पता चल जाने से परिशिष्ट रूप से उनका संशोधन होता है। अस्तु, जो कुछ हो रहा है वह उन्नति ही के मार्ग पर।

अखंडत्व और खंडत्व का विवाद।

आज कल भौतिक विज्ञान में जो मुख्य विवाद चल रहा है उसके झुकाव का सारांश अखंडत्व और खंडत्व के विषय में है। ऊपर से देखने में सृष्टि के बीच हम पहले खंडत्व पाते हैं अर्थात् हम ऐसे पदार्थ देखते हैं जिन्हें अलग अलग गिन सकते हैं। फिर हम वायु तथा और और अन्तरवर्त्तियों का अनुभव करते हैं और अखंडत्व और प्रवाहित द्रव्य का समर्थन करते हैं। इसके अनन्तर हम अणुओं का पता लगाते हैं और फिर खंडत्व हमारे सामने आता है। तब हम ईथर का आविष्कार करते हैं। और फिर अखंडत्व पर विश्वास करते हैं। पर इस का अन्त यहीं नहीं होने का। अन्तिम परिणाम क्या होगा, या अन्तिम परिणाम कुछ होगा भी, यह बतलाना कठिन है।

आज कल की प्रवृत्ति तो प्रत्येक पदार्थ को सखंड वा अणुमय बतलाने की है। द्रव्य की व्यष्टि (unit) अणु है जैसे कि समाज की व्यष्टि प्राणी है। जैसे समाज की व्यष्टियों को एक एक गिन कर हम कहते हैं कि इतने प्राणी हैं वैसे ही द्रव्य के अणु भी गिने जा सकते हैं।

यह ठीक है कि अखंडत्व का भ्रम भी होता है जैसे कि जल में। वह देखने में एक अखंड प्रवाह जान पड़ता है पर है अणुमय। किन्तु उसके अंतरों में ईथर की स्थापना करके हम उसे फिर अखंड निश्चित करते हैं। हां! आसबर्न रेनल्ड्स (Osborne Reynolds) ने अलबत नदी की रेत के दृष्टान्त पर सखंड और कणमय (granular) ईथर की उद्भावना की है। वे कहते हैं कि बालुकाकणों, सिर के बालों आदि का गिनना इसलिए नहीं कठिन है कि गिनने को कोई वस्तु नहीं है बल्कि इस लिए कि गिनने के लिए वस्तु अत्यंत असंख्य हैं। एक बूँद के अणुओं को लीजिए; उनकी संख्या शायद अटलांटिक महासागर के बूँदों से भी अधिक होगी!

असम्भावित स्थानों में संख्या का अधिकार।

विद्युत् वा विद्युत्प्रवाह भी—सुन कर आश्चर्य होगा—अणुमय प्रमाणित हुआ है। फ़ैराडे और मैक्सवेल (Faraday and Maxwell) ने विद्युत्प्रवाह की व्यष्टि का अनुमान किया और जांस्टन स्टोने (Johnstone Stoney) ने उसका नामकरण (Election वा विद्युदणु) किया। क्रुक्स (Crooks) ने वायुशून्य कोश (vacuum) में विद्युदणु के कुछ गोचर प्रभावों की परीक्षा की और सन् १८९९ में जे० जे० टाम्सन (J. J. Thomson) ने इसी ब्रिटिश असोसिएशन के सामने उसकी माप तौल बतलाई।

चुंबक-शक्ति तक के अणुमय होने का सन्देह किया गया है और उसकी व्यष्टि वा अणु का नाम पहले ही से चुंबकाणु (magneton) रख दिया गया है। इतना सब होने पर भी मैं अपने पुराने विचार से नहीं डिगा हूँ। इन सब को मैं असम्भावित स्थानों में संख्या का अधिकार कहता हूँ। प्राणिविज्ञान के विषय में भी कह सकते हैं कि वह अणुवादी हो चला है। उसमें प्राणकोश (Cells) आदि के रूप में प्राकृतिक व्यष्टियाँ बहुत दिनों से थीं और प्राणकोश के परदों (cell-walls) आदि के रूप में उसमें खंडत्व का अधिकार था ही। अब उसके पैत्रिक परम्परा के नियमों (Laws of heredity) का अध्ययन कर मेंडल (Mendel) ने बतलाया है कि गर्भोत्पादक प्राणकोशों (Reproductive cells) में भी संख्या और खंडत्व प्रत्यक्ष है और सन्तति-भेद भी गिने और पहले से बतलाए जा सकते हैं। जहां डारविन के अनुसार अखंड भेदपरम्परा द्वारा फेर फार माना जाता था वहाँ उसके स्थान पर, वा कम से कम उसके साथ साथ अब रूपान्तर द्वारा सहसा विशिष्ट, असम्बद्ध और परंपराखंडित परिवर्त्तन माना जाने लगा है। जहाँ यह कहा जाता था कि प्रकृति अन्तर छोड़कर आगे नहीं कूदती वहाँ अ

यह कहा जाने लगा है कि उसके सिवा वह और करती क्या है? उसकी वह श्रृंखलाबद्ध गति अब देखने में खंडित जान पड़ती है।

पर इसमें सन्देह नहीं कि अखंडत्व ही विकाश सिद्धान्त का मूल है जैसा कि प्रायः सारे प्राणि-तत्त्वविदों का कथन है। योनियों और जातियों के बीच कोई कृत्रिम सीमा निर्धारित नहीं—क्षुद्र कीट से लेकर मनुष्य तक एक अखंड पैत्रिक श्रृंखला दिखाई देती है।

खंडत्व और शुद्ध गणित।

शुद्ध गणित में भी खंडत्व अपना रूप दिखाने लगा है, यहीं तक नहीं, इससे भी बढ़ कर दुरूह और असम्भावित विषयों का प्रतिपादन किया जा रहा है और द्रव्य की क्षमता (energy) तक अणु-मय बतलाई जाने लगी है। प्रोफ़ेसर प्लांक (Professor Planck) का क्षमताणु (quantum) वाद अत्यंत चित्ताकर्षक, और कुछ लोगों की समझ में अत्यन्त प्रबल है।

ज्योतिप्रवाह के भी सखंड और अणुमय सिद्ध होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। ज्योतिप्रवाह (radiation) के कणमय होने की चर्चा अब उतनी धीमी नहीं है जितनी कि कुछ पहले पड़ गई थी। कोई कोई ज्योतिप्रवाह तो अवश्य कणमय होते हैं। पर ईथर-सम्बन्धी ज्योतिप्रवाह में भी ऐसे लक्षण दिखाई दे जाते हैं जिनसे भ्रम होता है कि वह धब्बेदार है, स्थान स्थान पर विन्दुओं के रूप में है और उसकी अग्रधारा धब्बों और धज्जियों की बनी है। जे० जे० टाम्सन ने तो कह ही डाला है कि "अग्रधारा एक सम-प्रकाशित सतह की अपेक्षा काली सतह पर चमकीले धब्बों के अधिक सदृश है। इससे ईथर के रेशेदार होने का आभास मिलता है, इत्यादि।"

ज्योतिप्रवाह का महत्त्व।

इस बात में यथार्थता चाहे जितनी हो पर ज्योतिप्रवाह-सम्बन्धी जो विवाद है वह है बड़े काम का। इस विषय को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है? इस लिए कि यह ईथर और द्रव्य के बीच की सब से अधिक ज्ञात और परीक्षित श्रृंखला है। हम लोगों का जाना हुआ यही एक ऐसा गुण है जो अकेले ईथर के निर्लिप्त विस्तार पर प्रभाव डाल सकता है। विद्युत् और चुंबकशक्ति का लगाव उसके उस विशेष और एकान्त रूपान्तर से है जिसे विद्युदणु कहते हैं। बाक़ी और बहुत से व्यापारों का लगाव सीधे द्रव्य से है। ज्योतिप्रवाह यद्यपि वेग-प्रेरित विद्युदणु ही से उत्तेजित होता है पर आगे चल कर वह आकाशीयतत्त्व ईथर ही में विचरण करता है और एक विशिष्ट वस्तु की तरह सम तथा नियमित गति से गमन करता है। यदि ईथर द्रव्य से लिप्त और लदा न हो, सर्वथा मुक्त हो, तो भी ज्योति की गति चली चलेगी, उसे किसी और बात की अपेक्षा न होगी। इससे ज्योतिप्रवाह के द्वारा हम बहुत सी बातें जान सकते हैं। अब देखना है कि इस अणुवाद, कणवाद और खंडवाद को लोग कहाँ तक लेजाते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह बहुत दूर तक जा सकता है। पर जो बात है वह मैं कहे देता हूँ कि मैं अन्ततः अखंडत्व का समर्थक और आकाशरूप ईथर का पक्का विश्वासी हूँ।

कणों के अध्ययन की उन्नति।

इस खंडवाद की प्रवृत्ति को बड़ा भारी सहारा उस विलक्षण उन्नति से मिला है जो कणों के अन्वीक्षण और उनके क्रम-विभाग के अध्ययन में हुई है। गैसों के जो नियम हैं वे अधर में उड़ती महीन बुकनियों के सम्बन्ध में भी ठीक घटते पाए गए हैं। सब से बढ़ कर बात तो यह हुई कि पारदर्शक किरणों (X rays) के सहारे बिल्लौर आदि के कणों के क्रम देखे गए।

पुरानी बात का पक्ष।

मैं ने जिन विवादयुक्त बातों की सम्भावनाओं का ऊपर उल्लेख किया उनके विषय में मैं चाहता हूँ कि लोग पुराने पक्ष पर जमे रहें। मैं उन परीक्षा-

सिद्ध परिणामों को स्वीकार करता हूँ जिन पर बहुत से सिद्धान्त—जैसे सापेक्षिकता का—निर्भर हैं। पर मैं उन्हें उतना हलचल डालनेवाले नहीं समझता जितना कि उनके प्रवर्त्तक समझते हैं। मेरी समझ में ऐसा ढंग निकल सकता है जिससे पुरानी बातों को रखते हुए भी हम नई बातों को ग्रहण कर सकते हैं। लक्ष्यों को हटाने में धैर्य्य से काम लेना चाहिए। इन लक्ष्यों में सब से प्रधान अखंडत्व है। मैं शून्य आकाश में किसी सूक्ष्म से सूक्ष्म भौतिक शक्ति की क्रिया का अनुमान नहीं कर सकता। उसके लिए एक अखंड मध्यस्थ अवश्य चाहिए। मैं दिक् (space) और काल में खंडत्व नहीं मान सकता और न कोई ऐसी परीक्षा ही जानता हूँ जिससे इस प्रकार का सिद्धान्त निकल सके। हम दिक् (आकाश) और काल की परीक्षा का कोई ढंग नहीं जानते। हम उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन उपस्थित नहीं कर सकते। हम लोग केवल द्रव्य खंड की परीक्षा कर सकते हैं।

ईथर का वास्तविक अस्तित्व।

बहुत अच्छा, तो अब ईथर के विषय में क्या कहा जासकता है? वह एक काल्पनिक निरूपण मात्र है अथवा कोई भौतिक अस्तित्व है जिसकी हम कोई परीक्षा कर सकते हैं? यह तो मान ही लेना पड़ेगा कि ईथर की किसी प्रकार की परीक्षा अत्यन्त दुःसाध्य है। न वह गोचर है और न किसी प्रकार हमारी पकड़ में आ सकता है। उसके विषय में हम केवल इतना ही जानते हैं कि किस वेग से उसके द्वारा शक्तिप्रवाह गमन करते हैं। यही एक बात स्पष्ट और निर्दिष्ट है जिससे हम ईथर को एक भौतिक मध्यस्थ मानते हैं। यद्यपि वह ग्राह्य और गोचर नहीं है पर उसका भौतिक अस्तित्व अवश्य है। वह हमारे परीक्षालयों की पकड़ में नहीं आ सकता। यदि हम उसके बीच से कोई द्रव्य तेज़ी से ले जाँय और इस युक्ति से उसकी धर पकड़ करना चाहें तो भी नहीं कर सकते क्योंकि कोई पदार्थ-घटित सम्बन्ध नहीं मिलता। यदि प्रकाश को लेकर परीक्षा करते हैं तो भी सफलता नहीं होती। जब तक कि प्रकाश की गति हमारे सापेक्ष है तभी तक हम उसका अनुभव कर सकते हैं। पर जब एक द्रव्य की गति दूसरे के सापेक्ष नहीं है तब उसकी गति आदि का पता कुछ भी नहीं चलता। जैसे यदि दो मनुष्य साथ साथ समान गति से गमन करते हैं तो एक को दूसरे की गति नहीं मालूम हो सकती। इसी से यह विचार होता है कि किसी गति को ईथर के सापेक्ष बतलाना बात ही बात है। अब तक केवल द्रव्यखंडों की परस्पर सापेक्ष गति का पता चल सका है। यही बात 'सापेक्ष सिद्धान्त' की जड़ है। कहने में तो यह एक साधारण सी बात जान पड़ती है पर यह सापेक्ष सिद्धान्त अत्यन्त गहन और पेचीदा है। इसका प्रतिपादन प्रोफ़ेसर ईंस्टिन (Professor Einstein) ने बड़ी विलक्षण योग्यता के साथ किया है। बात यह है कि अब तक कोई ऐसी गति नहीं देखी गई जो केवल ईथर ही के सापेक्ष हो। भेद समझने के लिए गति का हिसाब लगाने में कोई न कोई ऐसी विलक्षण भेद-पूर्ति (compensation) बीच में अवश्य हो जाती है जिससे एकान्त गति का निर्धारण हो ही नहीं सकता। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के पास से होकर जाता है तभी कोई बात देखी जा सकती है। उस अवस्था में भी गतिवान् द्रव्य-खंड के बाहर ईथर में कोई गति वा फेरफार नहीं देखा जा सकता।

ईथर की गति की माप।

ईथर द्वारा गति की परीक्षा के लिए हमें ईथरी युक्ति ही को काम में लाना चाहिए। हम ज्योति प्रवाह से काम लें और पहले प्रकाश के वेग को उस गति के अनुकूल और फिर प्रतिकूल मिलावें। पर मिलान हम करें तो कैसे करें? यदि प्रकाश का प्रस्थान किसी दूर पर रक्खी हुई घड़ी के पास हो और हम प्रस्थान का समय उस घड़ी में दूरबीन द्वारा देखें तो इस युक्ति से भी एक प्रकार की भेद-पूर्ति होती है क्योंकि दूरबीन से भी हम प्रकाश की किरणों ही के सहारे देखते हैं। यदि अपनी

से हम प्रकाश छोड़ें और वह सामने दूर रक्खे हुए शीशे पर पड़ कर फिर हमारे पास प्रत्यावर्तित हो कर आवे तो भी यही बात होगी। यदि हम ऐसा प्रबन्ध करें कि दूर से छोड़े हुए प्रकाश के प्रस्थान का समय हमें तार द्वारा सूचित किया जाय तो उस तार की सूचना भी ईथर ही द्वारा हमारे पास आवेगी और भेद वा कसर की पूर्त्ति होगी, भेद ठीक न जान पड़ेगा। बिजली, चुंबकशक्ति, प्रकाश आदि सब ईथर ही के प्रभाव हैं। घनत्वयोजना (cohesion) द्वारा भी हम यह परीक्षा नहीं कर सकते क्योंकि यह बात निश्चित है कि ईथर ही विश्व में अणुओं का संयोजक है। तब कोई ऐसी क्रिया काम में लाई जाय जो ईथर पर अवलंबित न हो। पर ऐसी क्रिया हम लावेंगे कहाँ से ?

बात यह है कि हम लोगों का यह युग अत्यन्त सूक्ष्म कल्पनाओं का है। बीसवीं शताब्दी का बड़ा भारी आविष्कार है द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त। यह हम लोगों के समय का बड़ा भारी आविष्कार है। इस सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हमारे ही समय में हुआ है इससे हम इसके विषय में पूरी विवेचना नहीं कर सकते। इसे अभी पूर्ण रूप से जड़ पकड़ना है, उसके पूरे ब्योरों का अभी विकाश होना है। हाँ इतना इसके विषय में पहले से कह सकते हैं कि यह आगे चल कर किसी न किसी रूप में ठीक प्रमाणित होगा।

आगे चल कर इस सिद्धान्त से विलक्षण परिणाम निकलेंगे। इसके कारण बहुत कुछ उथल पुथल और संशय तो अभी से आरम्भ हो गया है। क्योंकि यदि यह सत्य है तो प्रत्येक भौतिक पारस्परिक क्रिया वैद्युतिक वा ईथरीय होगी। इसी से अड़चन पड़ती है। प्रत्येक प्रकार की शक्ति का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है। इससे जब तक हमारे सब साधन-यंत्र एक ही वेग से गमन करते हैं तब तक गति के पता लगने की कोई सम्भावना नहीं। इसी बात पर सापेक्ष सिद्धान्त का ज़ोर है। परिवर्तन शून्य तो नहीं होते पर वे एक दूसरे को ऐसा काट देते हैं कि किसी का पता नहीं लग सकता।

आकाश के ईथर के अन्वीक्षण की कठिनता।

यह ईथर का सर्वव्यापकत्व, एकरूपत्व और सर्वसाधकत्व है जिससे इसका निरीक्षण इतना कठिन है। किसी वस्तु के अन्वीक्षण के लिए विभिन्नताओं का होना आवश्यक है। यदि कुछ दूर पर ईथर के बीच सब क्रियाओं का सञ्चालन समान गति से हो रहा है तो उनमें से एक की गति का भी पता नहीं लग सकता। कोई ऐसी वस्तु ढूँढ़ी जाय जिसका प्रसार ईथर द्वारा न होता हो तो काम चले। पर प्रत्येक भौतिक व्यापार का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है, शायद आकर्षण (gravitation) को छोड़ कर। उसके सहारे शायद कभी कुछ पता चले पर अभी तक उसकी सञ्चारण गति आदि की परीक्षा कुछ भी नहीं हो सकी है। उसकी माप की कोई युक्ति अभी तक हाथ नहीं आई है। शायद द्रव्य की सृष्टि और उसके विनाश को छोड़ और किसी प्रकार यह परीक्षा हो भी न सके। द्रव्य से तात्पर्य आकर्षण व्यष्टि (gravitational unit) से है चाहे वह अणु, विद्युदणु जो कुछ हो। सम्भवतः गुरुत्व (weight) की व्यष्टि भी विद्युदणु है, जैसे कि मात्रा की। अन्यूटनिक पदार्थ-व्यवस्था, जिसमें मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ निश्चित हुई हैं, द्रव्य के वैद्युतिक सिद्धान्त ही का फल है। द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त बड़े मार्के का है और उससे बड़े बड़े परिणाम निकलेंगे। इसकी सहायता से हम उन परीक्षाओं को करते हैं जिनसे ईथर और द्रव्य के सम्बन्ध का कुछ आभास मिलता है। इसके स्थान पर जो सापेक्ष-वाद अग्रसर होना चाहता है वह निराकरण का सिद्धान्त है, निषेध करनेवाला निरूपण है। वह कहता है कि कुछ बातों का पता कभी लग ही नहीं सकता। ईथर और द्रव्य का कोई सम्बन्ध ही नहीं और न ईथर कोई वस्तु है। पर यदि हम उन वास्तविक परिवर्त्तनों को स्वीकार कर लेते हैं जो तीव्र वेग के कारण होते हैं तो हमारे आविष्कार के लिए सारा मैदान पड़ा है। इससे किसी दिन यह भी सम्भव है कि हम विद्युदणु की आकृति आदि के परिवर्तनों

का भी पता लगा लें, क्योंकि यद्यपि वह अत्यन्त सूक्ष्म है पर उसकी गति प्रकाश की गति के लगभग है। फिर कौन जाने इसी प्रकार आकाश के ईथर के गुणों तक भी हमारी पहुँच हो जाय, यद्यपि ईथर अत्यन्त चक्कर में डालनेवाला है।

भौतिक अखंडत्व की नींव।

ईथर भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ही का अधिकृत विषय है। कणों की परीक्षा आदि तो हम रासायनिकों से लेते हैं। भिन्न भिन्न रूपों में द्रव्य की परीक्षा तो सब वैज्ञानिक करते हैं पर आकाश के ईथर का अध्ययन भूतविज्ञान (physics) ही का विषय है। इस परम तत्त्व के महत्त्व का स्वीकार करनेवाला अकेला मैं ही नहीं हूँ। अपनी विलक्षण भ्रान्ति-कारिणी और अग्राह्य वृत्ति, अपनी विश्व-व्यापिनी और एकता-विधायिनी नित्यता, अपने अनन्त और अपार विस्तार तथा पूर्ण और नियमित गुण के कारण ईथर अत्यन्त कौतूहलप्रद और भौतिक ब्रह्मांड का सार तत्त्व है। सर जे० जे० टाम्सन ने विनिपेग (Winnipeg) नगर में कहा था—"ईथर दार्शनिकों की निरी कल्पना नहीं है। यह हमारे लिए वैसा ही आवश्यक है जैसी साँस लेने की हवा।......इस सर्वव्यापक तत्त्व का अनुसन्धान भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं का बड़ा भारी और परम मनोहर कर्त्तव्य है"। यह द्रव्य तो नहीं है पर भौतिक अवश्य है क्योंकि यह भौतिक ब्रह्मांड के अन्तर्गत है और भौतिक युक्तियों से जाना जा सकता है। पर इस कहने से यह न समझना चाहिए कि मैं इस बात को अस्वीकार करता हूँ कि इसके द्वारा सृष्टि की किसी और कोटि (भौतिक से परे) में मानसिक और आध्यात्मिक व्यापारों का साधन भी होता हो।

आकाशीय ईथर अखंडत्व का बड़ा भारी प्रवर्त्तक है। सम्भव है यह इससे भी महत्तर हो क्योंकि इसके विना भौतिक ब्रह्मांड की सृष्टि ही नहीं हो सकती। इसमें तो सन्देह नहीं कि अखंडत्व के लिए यह परम आवश्यक है, क्योंकि यही एक ऐसा व्यापक पदार्थ है जो द्रव्य-खंडों को परस्पर बाँधता है। यह एक ऐसा संयोजक और मिलाने-वाला मध्यस्थ है जिसके विना यदि द्रव्य रहता भी तो इधर उधर छितराए खंडों में रहता। यह जगत् और अणुओं के बीच का मध्यस्थ है। इतने पर भी लोगों के लिए इसका अस्तित्व अस्वीकार करना सम्भव है क्योंकि यह हमारी इन्द्रियों को ग्राह्य नहीं है, केवल दृष्टि को इसका अत्यन्त सूक्ष्म परिज्ञान हो सकता है, सो भी इतने घुमाव फिराव के साथ कि साधारण रीति से पता नहीं लग सकता।

भौतिक विज्ञान की परिमित पहुँच।

मेरा यह कहना है कि विज्ञान ठीक ठीक निषेध करने में असमर्थ है चाहे वह ईथर ही का क्यों न हो, और यदि वह ऐसा करता है तो अपने कर्तव्य के विरुद्ध करता है। विज्ञान को निषेध में नहीं फँसना चाहिए, प्रतिपादन ही की ओर ध्यान रखना चाहिए। जो सूक्ष्म सार-कल्पना (abstractions) के आधार पर है उसे अपने अधिकार के बाहर निषेध करने नहीं जाना चाहिए। ऐसा प्रायः होता है कि सार रूप से निरूपित जिन बातों पर विज्ञान की एक शाखा ध्यान नहीं देती उस पर दूसरी ध्यान देती है।

मैं देखता हूँ कि कुछ आलोचकों ने मुझे शक्ति-वादी (vitalist) कहा है। एक प्रकार से मैं हूँ भी। पर यदि शक्तिवाद से अभिप्राय है भौतिक और रासायनिक विज्ञान-नियमों के विरुद्ध एक अनिर्दिष्ट और अज्ञात शक्ति का सहारा लेना तो मैं ऐसा शक्तिवादी नहीं हूँ। इन नियमों में परिशिष्ट रूप से घटाव बढ़ाव हो सकता है पर इनका उल्लंघन किसी प्रकार नहीं हो सकता। विज्ञान का काम यही है कि जहाँ तक हो सके सर्वत्र इन नियमों के परिचा-लन का पता लगावे, और सच्ची प्रज्ञा (instinct) वही है जो विज्ञान की क्रियाओं में आध्यात्मिक और अज्ञात कारणों को लाना न देख सके। विज्ञान में अदृष्टवाद का सहारा लेना अनुचित है क्योंकि उससे परीक्षा और अनुसन्धान में रुकावट पड़ती है। यदि किसी घटना के विषय में केवल यही क

दिया जाय कि 'यह ईश्वर की लीला है' ग्रोर कुछ न कहा जाय तो वह घटना बिना समझी बूझी ही रह जाती है। सब के अन्त में जाकर यह कथन सत्य हो सकता है ग्रोर विश्वमात्र पर घट सकता है। पर धीरे धीरे करके परम्परा-क्रम से पहुँचते हुए बहुत से कारण बीच में होते हैं जिनका पता धैर्य्य के साथ लगाना चाहिए। ऐसा करने से हम बिजली, भूडोल आदि के प्राकृतिक कारणों तक पहुँचते हैं। मूल वा आदि कारण की व्यवस्था तक विज्ञान नहीं पहुँचता, वह केवल बीच के क्रमशः पहुँचते हुए कारणों की छान बीन करता है। इन्हीं के लिए वह है ग्रोर इन्हीं को ढूँढ़ना इसका काम है। पेड़ों का रस मूल से ऊपर कैसे चढ़ता है? इसके उत्तर में यदि कहा गया कि 'अज्ञात शक्ति के कारण' तो यह प्रश्न के परित्याग के अतिरिक्त ग्रोर कुछ भी न हुआ। सन्धियों में रस-सञ्चार शक्ति* (Osmosis) की क्रिया से विलक्षण परिणाम किस प्रकार उत्पन्न होते हैं यह जानने की बात है ग्रोर जानी गई है।

प्राण में अभौतिक तत्त्व।

बहुत से प्राणिविज्ञानवेत्ता अपने विषय की छानबीन करते हुए यह स्पष्ट देखते हैं ग्रोर बतलाते हैं कि प्राणियों के सब व्यापारों को समझने के पहले कुछ ऐसे कारणों को मान लेना आवश्यक है जिन पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया। जे० आर० मेयर (J. R. Mayer) के समय से यह बात बराबर निश्चित होती जाती है कि अपनी क्रिया में प्राणी ग्रोर वस्तुओं के समान भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुकूल तो चलता है पर वह ऐसी प्रणालियों का सूत्रपात करता है ग्रोर ऐसे ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है जो उसके बिना सम्भव नहीं। चिड़ियों का घोंसला लीजिए, मक्खियों का छत्ता लीजिए, जंगी जहाज़ लीजिए। जंगी जहाज़ पर से आते हुए गोलों का कारण तो हम क्षमता (energy) आदि कह कर बतला देंगे पर वह शत्रु ग्रोर मित्र की पहचान कैसे करता है इसका कोई वैज्ञानिक कारण हम नहीं बतला सकते। तूफ़ान ग्रोर अग्नि आदि की गति बतलाई जा सकती है। लाप्लेस (Laplace's) के मानयंत्र द्वारा हम अणुओं की प्रारम्भिक स्थिति, वेग आदि बतला सकते हैं, पर कोई गणितज्ञ मक्खी की उड़ान से बनी हुई परिधियों का हिसाब नहीं लगा सकता। यदि किसी वैज्ञानिक विद्युद्यंत्र में कोई मकड़ी आ जाय तो वह उसकी बातें को तब तक बतलाता जायगा जब तक उसे अभौतिक (भूतें से परे) बातें न मिलने लगेंगी। मुझे यह कहने में कोई खटका नहीं कि प्राण भौतिक नियमों के बीच एक अप्रमेय ग्रोर प्रयोजनीय तत्त्व का प्रवेश करता है। प्राण भौतिक नियमों में परिशिष्ट रूप से कुछ जोड़ देता है यद्यपि वह उनको ज्यों का त्यों रहने देता है ग्रोर उनके अनुकूल चलता है।

हम प्राण नहीं देखते, उसका प्रभाव मात्र देखते हैं। जीवित प्राणी ही द्वारा निरीन्द्रिय (inorganic) द्रव्य सेन्द्रिय (organic) में परिवर्तित होता देखा जाता है। यह परिवर्त्तन वास्तव में होता है ग्रोर उसकी प्रणाली का अध्ययन किया जा सकता है। इस परिवर्त्तन के लिए प्राण आवश्यक जान पड़ता है। यह परिवर्त्तन प्राणी ही के सहारे होता है यद्यपि इसकी प्रणाली भौतिक ग्रोर रासायनिक है। परीक्षालयों में भी इस प्रकार के परिवर्त्तन प्राणी ही के द्वारा होते हैं यदि प्राणी परीक्षक न हो तो वे न हों।

सड़ाव, ख़मीरी उबाल, ग्रोर व्याधि आदि केवल रासायनिक क्रियाएँ नहीं हैं। रासायनिक व्यापार वे हैं पर वे जीते जागते प्राणियों ही के अवलम्ब से होते हैं। जब ग्रोषध-विषय प्राणि-सम्बन्धी हो रहा है ग्रोर शक्तिसम्पन्न लोगों का ध्यान उष्ण प्रदेशों को उद्योगी जातियों के स्वस्थतापूर्वक रहने के योग्य बनाने की ग्रोर है तब प्राणिविज्ञान वालों को रसायन ग्रोर भूत विज्ञान के पीछे अपनी विद्या को छोड़

* स्याही में सोख्ते का एक कोना छुलाने से इसका कुछ अनुभव होता है।

बैठने का प्रयत्न न करना चाहिए । प्राणि-विज्ञान एक स्वतंत्र विद्या है, वह भूत-विज्ञान और रसायन से काम लेता है, उसके अधीन नहीं हो जाता ।

विज्ञान और अन्धविश्वास ।

वैज्ञानिक लोग अन्धविश्वास से चिढ़ते हैं, और उनका चिढ़ना ठीक भी है क्योंकि बहुत से प्रचलित अन्धविश्वास ऐसे हैं जिनसे कुढ़न और घृणा होती है । पर कभी कभी इस शब्द का व्यवहार ऐसी बातों के लिए भी होता है जिनके नियम अज्ञात होते हैं । स्वयं प्राणिशास्त्रविदों के बहुत से व्यवहार ऐसे हैं जो ऊपर से देखनेवालों को बिलकुल अन्धविश्वास-मूलक जान पड़ते हैं । मलेरिया ज्वर की शान्ति के लिए सर रोनल्ड रास (Sir Ronald Ross) बेदी बना कर माला फूल तो नहीं चढ़ाते पर तालाब में तेल देते हैं—मानो उसके देवता का अभिषेक करते हैं । हाल में पनामा की नहर खोदते समय रोग को दूर रखने के लिए अमेरिकावालों ने जो टीन के रद्दी बरतनों में छेद करने के विलक्षण कृत्य पर ज़ोर दिया था वह देखने में जंगलीपन के सिवा और क्या मालूम होता था ? और सब जाने दीजिए भूमि को अधिक उपजाऊ करने के लिए उसे जलाने वा ज़हरीली करने से बढ़ कर मूर्खता ऊपर से देखने में और क्या जान पड़ेगी ? जो बात निश्चित जान पड़ती है वह यह है कि द्रव्य के बिना प्राण की कोई भौतिक व्यक्तता नहीं हो सकती । इसी से कुछ लोगों का यह कहना, या इस कहने को पसन्द करना, स्वाभाविक ही है कि "मैं द्रव्य में प्रत्येक प्रकार के प्राण की सम्भावना और सामर्थ्य देखता हूँ" । ठीक है, पर प्रत्येक प्रकार के प्राण की नहीं । प्रत्येक प्रकार के प्राण की भौतिक व्यक्तता की । क्योंकि प्राण हमें द्रव्य द्वारा व्यक्त होने के अतिरिक्त और किस प्रकार व्यक्त हो सकता है ? यह भी कहा जाता है कि "प्राणी में हम रसायन और भूत-विज्ञान के नियमों के अतिरिक्त और कुछ पाते ही नहीं" । बहुत ठीक ! यह भी स्वाभाविक ही है क्योंकि लोग प्राण के भौतिक वा रासायनिक रूप वा व्यक्तता का तो अध्ययन ही कर रहे हैं । स्वयं प्राण का, अर्थात् प्राण, मन और चेतना का, अध्ययन तो वे करते नहीं हैं; इनको तो वे अपनी छानबीन के बाहर रखते हैं । द्रव्य ही है जो हमारी इंद्रियों को ग्राह्य है । भूतवाद भौतिक जगत् के उपयुक्त है—पर दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं बल्कि चलते हुए व्यापार की व्यवस्था के रूप में, बीच की कारण-परम्परा के अनुसन्धान के रूप में । इसके परे जो बातें हैं वे दूसरे विभाग की हैं और दूसरे उपायों से जानी जाती हैं । आध्यात्मिक बातों को रसायन और भूत-विज्ञान के शब्दों में बतलाना असम्भव है इसी से उनका अस्तित्व ही अस्वीकार किया जाता है, वे केवल भ्रान्ति-लक्षण माने जाते हैं । पर ऐसी अनधिकार मीमांसा अनुचित है ।

प्राण और मन ।

यद्यपि प्राण और मन शरीर-विज्ञान के बाहर हैं पर विज्ञान के बाहर नहीं हैं । यह कहना ठीक नहीं कि किसी वस्तु का हम उपयुक्त रीति से अनुसन्धान नहीं करते इसलिए उसका पता ही नहीं लग सकता । पर ऐसा कभी कभी कह दिया जाता है । ईथर इन्द्रियग्राह्य नहीं है इसीसे कुछ लोग कहने लगे हैं कि ईथर है ही नहीं । मन के विषय में भी कभी कभी यही कह दिया जाता है । प्राण का पता परीक्षालयों में नहीं लगता केवल उसकी रासायनिक और भौतिक व्यक्तता देखी जाती है पर यह मानना पड़ेगा कि वह एक विशेष रूप से द्रव्यों का परिचालन करता है । उसे हम निर्विकार (catalytic अर्थात् जो स्वयं विकृत न हो कर भी दो रासायनिक मिश्रणों में विकार उत्पन्न करता है) परिचालक कह सकते हैं । स्वयं प्राण के व्यापारों को समझने के लिए हमें सूक्ष्म जीवों की ओर न जाना चाहिए बल्कि स्वयं अपने को जीते जागते प्राणी समझ कर अपने ही अनुभवों की ओर ध्यान देना चाहिए । इस ओर ध्यान देते हुए यदि हम कोई भी दृष्टान्त ले लें तो प्राण के अस्तित्व को अस्वीकार करते न

बनेगा। यदि मन तथा उसकी प्रेरणा और क्रम-व्यवस्था इस कारण अस्वीकार की जाती है कि वह इंद्रियग्राह्य नहीं है तो एक ऐसे प्राणी का दृष्टान्त लीजिए जिसके सामने जगत् के सब नियम और व्यापार इसी प्रकार चल रहे हैं पर कोई मनुष्य वा जीव नहीं दिखाई देता। सोचिए तो कि ये सब व्यापार उसे कैसे जान पड़ेंगे। मान लीजिए कि इस दूसरे ग्रह के प्राणी को मनुष्य गोचर ही नहीं हैं। ऐसी अवस्था में इन व्यापारों को वह ऐसा ही बतलावेगा जैसा हम आज अपने व्यापारों को बतलाते हैं।

यदि वह फ़ोर्थ नदी के मुहाने (Firth of Forth) के पुल को देखेगा तो उसे पानी में उठे हुए खंभे दिखाई देंगे जो ऊपर की ओर जाकर विलक्षण रीति से मिल गए हैं। इन पर से वह कीड़ों की तरह की वस्तुएं बिना उनका प्रयोजन समझे आते जाते देखेगा। फिर मान लीजिए कि वह नील नदी की ओर देखता है और रेगिस्तान के बीच हरियाली उत्पन्न करने में उसकी उपयोगी गति की ओर ध्यान देता है। इसके उपरान्त आगे चल कर वह धारा के बीचों बीच उठता हुआ बाँध देखता है। उसके देखने में बड़े बड़े ढोंके एक प्रकार की ध्रुव शक्ति वा जड़ प्रवृत्ति (Heliotropism-पौधों की पत्तियों आदि के प्रकाश की ओर झुकने की प्रवृत्ति) द्वारा अपनी अपनी जगह पर जाकर बैठते जान पड़ेंगे। यहाँ तक तो उसे भूत-विज्ञान और रसायन के नियमों के आगे जाने की आवश्यकता न होगी; वह द्रव्य की क्षमता (energy) आदि द्वारा सब बातें समझ बूझ लेगा। उसे पहले किसी प्रकार की क्रम-व्यवस्था भी न दिखाई देगी। क्योंकि यद्यपि इस प्रकार के बाँध से पानी रुक कर ऊपर की ओर फैलता और वनस्पति उत्पन्न करता दिखाई देगा पर नीचे की ओर उसके इस प्रकार रुकने से और रेगिस्तान में नष्ट होने से हानि ही दिखाई देगी। पर इसके उपरान्त जब उसे नीचे फूटे हुए बड़े बड़े छेद दिखाई देंगे जिनसे नीचे नीचे आगे की ओर पानी बराबर जाता हुआ और अन्त में वनस्पति को लाभ ही पहुँचाता हुआ दिखाई देगा तब उसे 'उद्देश्य' का आभास मिलेगा।

क्रम-व्यवस्था का प्रमाण।

अब यदि इन दोनों बनावटों में से किसी के विषय में वह कहें कि इसे लंडन के एक इंजिनियर सर बेंजमिन बेकर (Sir Benjamin Baker-फ़ोर्थ नदी का पुल बनवानेवाले) ने बनाया है तो उसका यह कहना उसके साथियों को उपहासास्पद ही जान पड़ेगा। ऐसे कथन के विरुद्ध सबसे पक्की दलील तो यह होगी कि वह वहाँ है नहीं; और जो वस्तु जहाँ है नहीं वहाँ कोई काम नहीं कर सकती। यदि बहुत सी बातें मालूम होने से हम कहेंगे कि इस प्रकार के तटस्थ निरीक्षक को कोई अज्ञात परिचालक वा कर्त्ता मान लेना चाहिए; परन्तु साथ ही यह भी है कि व्यापारों को अज्ञात-शक्ति के कार्य्य बतलाना व्यर्थ होगा। रसायन और भौतिक विज्ञान के शब्दों ही में जितनी व्याख्या की जायगी उतनी ही स्पष्ट, निर्दिष्ट और जहाँ तक उसकी पहुँच है सत्य होगी। वह अपूर्ण होगी इसमें तो सन्देह नहीं। यह बात समझ रखनी चाहिए कि ऐसी अवस्थाओं में जो कुछ हम देखते हैं वह अन्तःकरण और द्रव्य की पारस्परिक क्रिया है, भ्रान्तिलक्षण (epiphenomenon) वा समन्वय (parallelism) नहीं हैं। उसमें हम द्रव्य और द्रव्यक्षमता (energy) के गुणों का ऐसे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए सीधा उपयोग देखते हैं जिनका प्रादुर्भाव अन्तःकरण में होता है। पर प्रतिपक्षी कहेंगे कि इस प्रकार के दृष्टान्त देना अनुचित है क्योंकि फ़ोर्थ नदी के पुल और नील नदी के बाँध के विषय में हम जानते हैं कि वे एक क्रम पर बने हैं और उनके बनानेवालों को भी हम जानते हैं।

अर्थात् ये कट्टर प्राणिविज्ञानवेत्ता बराबर कहेंगे कि "यह सब कुछ नहीं। जहाँ जो कुछ हम देखते हैं सब भूतविज्ञान और रसायन की क्रियाएँ हैं। ऐसे ऐसे कामों में जो अन्तःकरण की स्वतंत्र क्रिया

का भान होता है वह भ्रान्ति है। भौतिक और रासायनिक नियम ही जो कुछ हैं सो हैं और उन्हीं से सारी बातों के हेतु आदि का पता लग सकता है।" ठीक है! पर उनसे कुछ दूर ही तक का पता लगता है। वे सूर्यास्त के रंग, पर्वत शृंग की विशदता, जीवों के चमत्कार आदि के हेतु की व्याख्या कुछ अंशों ही तक करते हैं। क्या वे सब बातों के कारण पूर्ण रूप से बता सकते हैं? क्या वे हमारे आनन्द की उमंग, और सौन्दर्य्य के भाव आदि का पूरा पूरा हेतु दे सकते हैं? क्या इनके द्वारा (भौतिक और रासायनिक से) अधिक उच्च, महान् आनन्दप्रद बातों का आभास नहीं मिलता जिनके लिए जीवन की यह सब हाय हाय है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृतिक पदार्थों के भीतर एक गूढ़ रहस्य भरा हुआ है। कट्टर वैज्ञानिक इस विषय में जो बातें बतलाते हैं वे यद्यपि अपनी पहुँच के अनुसार ठीक हैं पर आंशिक हैं। जब हम मोर की पूँछ की रंगविरंगी चंद्रिकाओं और ज़ेब्रा की पीठ पर की धारियों में रंगों का विचित्र मेल देखते हैं कि किस प्रकार वे अपनी अपनी जगह पर एक निश्चित नमूने और नक़शे को भरते हुए बैठे हैं तब यह कहना अत्यन्त कठिन होजाता है कि ऐसी क्रमव्यवस्था के साथ अंगों का परस्पर मेल केवल पदार्थ नियमों द्वारा होता है। फूल उर्वरता के लिए कीड़ों को आकर्षित करते हैं, और फल बीजों को फैलाने के लिए जानवरों को आकर्षित करते हैं। पर उनके सम्बन्ध में इतनी ही व्याख्या काफ़ी नहीं है। हमें स्वयं कीड़ों की स्थिति को समझना समझाना है। फूलों में इतनी सुन्दरता केवल कीड़ों को आकर्षित ही करने के लिए नहीं है। हमें जीवन के लिए जो इतनी हाय हाय रहती है उसे समझना चाहिए। जीव अपनी स्थिति के लिए इतना प्रयत्न क्यों करते हैं। इस प्रयत्न का कोई रहस्य होगा और विकाश का कोई उद्देश्य होगा। इस रीति पर विचार करने से हमारे सामने जीवन और विकाश का प्रश्न आता है।

जिस पदार्थ-योजना से जीवन का विकाश होता है वह बहुत कुछ जान ली गई है। स्वाभाविक ग्रहण-प्रवृत्ति (Natural Selection) का सिद्धान्त जहाँ तक पहुँचता है कारण आदि बताता है। पर यदि इतने सौन्दर्य्य की आवश्यकता कीड़ों के लिए है तो हम वन, पर्वत और मेघमाला आदि के सौन्दर्य्य के विषय में क्या कहेंगे? उनके सौन्दर्य्य से कौन सा काम निकलता है, कौन सा भौतिक अर्थ-साधन (utility) होता है। विज्ञान सौन्दर्य्य की विवेचना नहीं करता। न करे, पर उसका अस्तित्व अवश्य है। मैं उसके विषय में यहाँ तर्क वितर्क नहीं करना चाहता। मैं केवल इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि हमारे अनुसन्धान में ब्रह्मांड की सारी बातें नहीं आजातीं। इससे यदि हम निषेध करने चलते हैं और कहते हैं कि भूत-विज्ञान और रसायन ही के अन्तर्गत हम सारी बातों को ला सकते हैं तो हम केवल संकीर्ण पांडित्य का दम्भ दिखाते हैं और अपने मनुष्य-जन्म के अधिकार की पूर्णता और समृद्धि खोते हैं। इसके विरुद्ध एक भावुक पूर्वीय कवि की उक्ति कितनी उचित है—

जगत् अपनी दृष्टि को तेरे चरणों पर झुकाए सारे मौन नक्षत्रों के साथ स्तम्भित और चकित खड़ा है'।

हमारी भौतिक पहुँच बहुत थोड़ी है। हमारी इन्द्रियाँ द्रव्य ही को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हैं, उसके अतिरिक्त और बातों का बोध हमें सीधे नहीं होता। हमारे अंग द्रव्य में इच्छानुकूल परिवर्त्तन उपस्थित करने के उपयुक्त हैं, इसके अतिरिक्त हम और कुछ नहीं कर सकते। हमारा मस्तिष्क भौतिक जगत् के शेषांश से हमारा सम्बन्ध कराता है। हमारी इन्द्रियाँ हमें द्रव्य के क्रम और गति की सूचना देती हैं और हमारे अंग हमें उन क्रमों में परिवर्त्तन करने में समर्थ करते हैं। मानवजीवन के लिए बस इतना ही सामान हमारे पास है। इन अधिकारों को ले कर हमने जो कुछ किया है वह मनुष्य-जाति के इतिहास में दर्ज है।

विकाश में अखंडत्व।

विज्ञान द्वारा जो हमने यह जान लिया कि विकाश वास्तव में होता है सो बहुत कुछ किया। विज्ञान की दृष्टि से विकाश परम सत्य है। विकाश भ्रान्ति नहीं है। सृष्टि काल पाकर होती है। दिक्काल और द्रव्य सार-निरूपण (Abstractions) हैं पर सत्य हैं। अनुभव से उनकी प्रतिपत्ति होती है। काल ही विकाश का प्रवर्त्तक है। 'सैकड़ों वर्ष आते जाते हैं और एक जंगली फूल को उन्नत और पूर्ण करते हैं" । जीते जागते चलते फिरते सत् (Reality) से हम उसके एक स्थूल रूप का सारग्रहण (Abstract) करते हैं और उसे द्रव्य कहते हैं, इसी प्रकार उसकी अग्रसरता वा उन्नति के तत्त्व को हम साररूप से ग्रहण करते हैं और उसे काल कहते हैं। जब इन दोनों सारों का संयोग और सहकार्य्य होता है तब हमें फिर सत् का भान होता है। विकाशसिद्धान्त में काल का वास्तविक अस्तित्व मिलता है।

मुझे सारी भौतिक सत्ता भूत से भविष्य की ओर जाती हुई एक गति के रूप में दिखाई देती है। उसका एक ही अंश वा क्षण जो वर्त्तमान कहलाता है व्यक्त वा प्रत्यक्ष होता है *। भूत का अत्यन्ताभाव नहीं होता। उसका लेखा हमारी स्मृति में रहता है, द्रव्य में रहता है और वह वर्त्तमान का आधार होता है। भविष्य वर्त्तमान का फल है और विकाश की उपज है।

सृष्टि करघे के तैयार माल के समान है। बुनावट का नक़शा नमूना वहाँ किसी न किसी रूप में पहले से रहता है। एक बार नमूने पर चलानेवाली पटरियाँ लगा दी जाती हैं फिर तो उस कालरूपी करघे में बहुत से स्वतंत्र परिचालक हो जाते हैं जो तन्तुजाल में जैसा फेर फार चाहें कर सकते हैं अर्थात् यदि वे काल-व्यवस्था के अनुकूल चलते हैं तो माल अच्छा होता है और प्रतिकूल चलते हैं तो बुरा। मेरी समझ में लोक में जो त्रुटियाँ दिखाई देती हैं उनका समाधान इससे होजाता है। स्वतंत्रता और किसी शर्त्त पर दी ही नहीं जा सकती। उसका सौदा इससे सस्ता हो ही नहीं सकता। अपने कर्म्मों द्वारा सुख वा दुःख उत्पन्न करने की सामर्थ्य भ्रम नहीं है सत्य है। चेतन कर्ता की यह एक ऐसी सामर्थ्य है जिसके ऊपर उसकी भलाई बुराई छोड़ दी गई है। अतः जो माल तैयार वा जो फल उत्पन्न होता है वह कोई पूर्व निर्धारित वा अटल वस्तु नहीं, यद्यपि हम आचरण के पूरे परिचय द्वारा कभी कभी उसका निश्चय कर सकते हैं। काल की एकरूप गति के अतिरिक्त और कोई वस्तु अटल नहीं। कपड़ा बुना जायगा यह बात तो रहती है पर उसका नक़शा नमूना न पूरा निश्चित रहता है और न पदार्थ-नियम द्वारा उसका कोई हिसाब किताब हो सकता है।

जहाँ केवल निरींद्रिय (Inorganic) द्रव्य का मामला रहता है वहाँ सब बातें निश्चित होती हैं। पर जहाँ कहीं पूर्ण चेतना का प्रवेश होता है वहाँ नई शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और चेतन अंशों की सामर्थ्य और इच्छा का प्रभाव समष्टि पर पड़ता है। इस समष्टि को प्रेरणा बाहर से नहीं भीतर से होती है और प्रेरणा करनेवाली शक्ति प्रत्येक क्षण अन्तर्व्याप्त रहती है। इस प्रेरणा-शक्ति के हम एक क्षुद्र अंश हैं पर बिलकुल निकम्मे नहीं।

विकाशोन्नति सत्य है, यह एक बड़े महत्त्व का सिद्धान्त है। सामाजिक उन्नति के लिए हमारे प्रयत्न इसलिए उचित हैं कि हम समष्टि-विधान के एक अंग हैं; अंग भी कैसे जो चेतन होगया है, जो थोड़ा बहुत समझता है कि वह क्या कर रहा है और उसका उद्देश्य क्या है। अस्तु-समष्टि में उद्देश्य और विधान का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि हम

* श्रीकृष्ण भगवान् ने भी गीता में अर्जुन से कहा है—
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत !।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवता ॥

उसके एक अंग हो कर अपने आप में उनका अनुभव करते हैं।

विज्ञान और आध्यात्मिक अन्वेषण।

या तो हम अमर हैं या नहीं हैं। हम अपना भविष्य नहीं जानते, पर हमारा किसी प्रकार का भविष्य है अवश्य। जो अस्वीकार करते हैं वे वैसे ही भ्रान्त हो सकते हैं जैसे वे जो स्वीकार करते हैं। लोग वैज्ञानिकों को अधिकारी समझ उनसे ऐसी बातों की जिज्ञासा करते हैं अतः उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि वे लोगों को भ्रम में न डालें। वैज्ञानिक लोग मानव जीवन के आगे के भविष्य को नहीं जान सकते। न सही, पर वे उस पर धूल क्यों डालें? जो बात जैसी है वैसी ही रहेगी, चाहे हम उसे जानें या न जानें। यदि हम बिना समझी बूझी बातें कह जाँयगे तो हमारी भावी सन्तति को हमारी असत्यता का पता लग जायगा। मैं उन लोगों में हूँ जिनकी धारणा है कि विज्ञान की अनुसन्धान-प्रणाली उतनी परिमित नहीं है जितनी समझी जाती है। उसका उपयोग और दूर तक हो सकता है और आध्यात्मिक अनुसन्धान भी नियम-बद्ध किए जा सकते हैं। इसके लिए प्रयत्न होने देना चाहिए। जो भूतवाद (Materialistic hypothesis) के सिद्धान्तों को उन्नत और परिवर्द्धित किया चाहते हैं वे ख़ुशी से जहाँ तक चाहें वहाँ तक करें, पर हमको आध्यात्मिक विभाग में अनुसन्धान करना चाहिए और देखना चाहिए कि अन्त में विजय किसकी होती है। अनुसन्धान की जो प्रणाली उनकी है वही हमारी है, भेद केवल विषय का है। इनमें से किसी को भी दूसरे को भला बुरा न कहना चाहिए।

यद्यपि मैं यहाँ कट्टर विज्ञान का प्रतिनिधि बन कर खड़ा हूँ पर अपने ३० वर्ष के आध्यात्मिक अनुसन्धान के अनुभव को बिना कहे न रहूँगा और हमारे सभापति भी शायद विज्ञान की कट्टरता से बद्ध और परिमित होकर न बोलेंगे जैसा कि आज कल का फ़ैशन है।

शरीर-वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रहता है। यहाँ पर यदि न्याय से पूछा जाय तो मैं केवल इतना ही नहीं कहता कि जो बातें अभी अदृष्टवाद के अन्तर्गत समझी जाती हैं वे वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा जाँची और नियमबद्ध की जा सकती हैं बल्कि यहाँ तक कहता हूँ कि जहाँ तक परीक्षा हुई है उनसे मुझे यही निश्चय हुआ है कि स्मृति आदि अन्तःकरण वृत्तियाँ द्रव्य के उस सम्बन्ध ही तक परिमित नहीं हैं जिसके द्वारा हमें वे व्यक्त होती हैं और शरीर-वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रहता है। परीक्षा द्वारा मुझे यह प्रतीत होता है कि शुद्ध भूत-निर्लिप्त ज्ञान का हमारे साथ पारस्परिक व्यापार भौतिक विभाग में दिखाई देता है और इस प्रकार घुमाव फिराव के साथ वह हमारी वैज्ञानिक परीक्षा के अन्तर्गत आ सकता है। इससे आशा होती है कि शायद धीरे धीरे हम लोग अधिक विस्तृत, शायद ईथरीय, स्थिति को और फिर उन नियमों को जिनके अनुसार शून्य के बीच पारस्परिक व्यापार-व्यवस्था होती है, समझ सकें। कुछ सच्चे और विश्वस्त अन्वेषक आशापूर्वक ज्ञान के एक नए क्षेत्र का आभास दे रहे हैं। इससे और अधिक हम यह कह सकते हैं कि सत्य की छानबीन के लिए एकमात्र वैज्ञानिक ही प्रणाली नहीं है, यद्यपि यह प्रणाली हमारे उपयुक्त है।

नये युग के प्रदर्शक।

बहुत से वैज्ञानिकों को अब भी ब्रह्मविद्या वा परमात्म-विद्या (Theology) से चिढ़ मालूम होती है क्योंकि उनके पूर्ववर्त्तियों को तत्सम्बन्धी बहुत से अत्युक्त वितंडावादों का सामना करना पड़ा था। उन्हें अपने ढँग पर सत्य और स्वतंत्रता का रास्ता साफ़ करने में बहुत लड़ना झगड़ना पड़ा था। इस लड़ाई झगड़े की नौबत दुर्भाग्यवश आई थी और उसका बहुत कुछ बुरा प्रभाव अब तक रह गया है। उन बुरे प्रभावों में से एक यह है जिसके कारण हमारी सहानुभूति सत् के अन्य आध्यात्मिक आदि

रूपों की ओर नहीं होती और हम उनसे खिँचे रहते हैं। यह हम कभी नहीं कह सकते कि इस लोक में सत्य का प्रादुर्भाव केवल दो एक शताब्दियों से ही होने लगा। वैज्ञानिक काल के पूर्व की प्रतिभा की—कवियों और महात्माओं की प्रतिभा की—पहुँच भी बड़े महत्त्व की थी। उन प्राचीन महात्माओं का ब्रह्मांड की आत्मा के विषय में बहुत कुछ प्रवेश था। उनके पीछे जो उनके अनुयायी हुए उनको इतनी सूझ नहीं थी, उनमें केवल हठ और दुराग्रह था जिसके कारण वे नए (वैज्ञानिक) युग का आभास देने वालों को पत्थर मारते थे।

अन्त में इस नए युग की विजय हुई और अब पत्थर हमारे (नए युग के वैज्ञानिकों के) हाथ में है। पर हम भी जो उन पुराने धर्म्माचार्यों की नक़ल करें तो यह मूर्खता है। हम यह कह कर कि ब्रह्मांड के अनेक प्रकार के रहस्यों की छानबीन के लिए हमारी ही प्रणाली उपयुक्त है और सब प्रणालियाँ कुछ नहीं हैं, पुरानी भूल को क्यों दोहरावें। ब्रह्मांड के विषय में हमारी जो धारणा है उससे वह कहीं बढ़ कर है; खोज की कोई एक प्रणाली उसके सारे रहस्यों को पूरा छान नहीं सकती।

सच्चे धर्म का मूल मनुष्य जाति के अन्तःकरण में, और वस्तुओं की सत्यता में है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपनी अनुसन्धान प्रणाली से हम उसका ग्रहण नहीं कर सकते। परमात्मा के कार्य हमारी किसी विशेष इन्द्रिय को ग्राह्य नहीं हैं, और हमारी अनुसन्धान प्रणाली ऐसी है जिससे किसी अखंड एकरूपता का पता ही नहीं लग सकता। यहाँ पर सापेक्षिकता का सिद्धान्त चलता है इससे जब तक हमें कोई व्याघात और भेद नहीं मिलते तब तक हमें कोई परिज्ञान नहीं होता। हम लोग अपने चारों ओर की अन्तर्व्याप्त विभूति को देख सुन नहीं सकते; इतना ही कर सकते हैं कि काल रूपी करघे से निकल कर पूर्णता की ओर अनन्त गति से गमन करते हुए वस्त्र को भूतों से परे उस परमात्मा का परिधान समझें।

हिंदी पर प्राकृत भाषाओं का प्रभाव।

[ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]
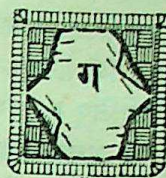
गत वर्ष जब कलकत्ते में साहित्य-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन होनेवाला था उस समय वहाँ की स्वागतकारिणी समिति ने मुझ से ऊर्ध्व लिखित विषय पर लेख भेजने की आज्ञा दी थी। पर उस वर्ष समय कम रहने से मैं उसका पालन न कर सका। इस वर्ष भागलपुर के सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री ने फिर मुझे उक्त विषय पर लेख भेजने के लिए आज्ञा देने की कृपा की है। यद्यपि इस वर्ष इस विषय पर लेख भेजने के लिए कई ऐसे विद्वानों से भी प्रार्थना की गई है जो इस विषय में अपने को प्रसिद्ध कर चुके हैं और जिनके सामने मेरा कुछ कहना साहस मात्र है फिर भी सम्मेलन की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके मैं दो चार बातें इस विषय में कहना चाहता हूँ।

'प्राकृत' शब्द के भाषा अर्थ में दो अर्थ होते हैं एक प्रकृति अर्थात् जन साधारण के बोल चाल की भाषा जो समय समय पर भिन्न भिन्न होती आई है और वैदिक भाषा से लेकर आज तक की बोल चाल की भाषाएँ हिंदी, बँगला, मरहठी, गुजराती, पंजाबी आदि सभी जिसके अन्तर्भूत हैं, दूसरे प्रकृति* अर्थात् संस्कृत से व्याकरण-नियम द्वारा बनाई हुई कल्पित प्राकृत भाषा जो नाटकों और जैन-साहित्य में मिलती है।

पहले के विषय में तो हमें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं केवल इतना कहना है कि साहित्य की भाषा सदा लौकिक वा प्रांतिक भाषा से विलक्षण होती आई है। यद्यपि उसमें सभी प्रान्तों

*'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवः तत आगतो वा प्राकृतम्' हेमचन्द्र। तथा 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात्प्राकृतं मतम्' प्राकृतचंद्रिका।

की भाषा के शब्द होते हैं और उसे सर्वसाधारण समझ भी सकते हैं पर वह किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं होती बल्कि वह एक ऐसी भाषा होती है जिसे समझ तो सभी सकते हैं पर उसमें लिख केवल विद्वान् ही सकते हैं, इसीलिए ऐसी भाषा को देववाणी देवगिरा आदि कहते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी-भाषा ही को लीजिए। इसे समझते सब हैं पर विशुद्ध रूप से केवल पढ़े लिखे लोग ही लिख और बोल सकते हैं। यद्यपि इसका ढाँचा एक प्रान्त का है पर अब इसे सर्वथा प्रान्तिक नहीं कह सकते क्योंकि इसके विस्तार के कारण इसमें दिल्ली, मेरठ के अतिरिक्त और और प्रान्तों की बोलियों के शब्द ही नहीं बल्कि संस्कृत, फ़ारसी और अँगरेज़ी तक के शब्द मिल गये हैं। यही अवस्था वैदिक भाषा की है। उसमें म्लेच्छ भाषा तक के शब्द हैं और कितने ही प्रान्तिक प्रयोग भी हैं*।

अब दूसरी प्राकृत का हाल सुनिए। इसके प्रधान दो भेद हैं—आर्य्य प्राकृत और जैन प्राकृत।

आर्य्य प्राकृत के वररुचि आदि विरचित कई व्याकरण हैं और जैन प्राकृत के हेमचन्द्राचार्य्य आदि के ग्रन्थ हैं। इन प्राकृतों में यद्यपि उस समय की प्रांतिक बोल चाल के शब्द हैं पर वे सर्वथा न बोल चाल ही की भाषाएँ हैं और न ऐसी ही भाषाएँ है जिनका प्रयोग किसी समय में विद्वानों में होता था। इन ग्रन्थों के देखने से यह भी अनुमान होता है कि वैयाकरणों ने प्राकृत के सौरसेनी, मागधी, पैशाची अपभ्रंश इत्यादि अनेक भेद किये हैं। पर यह उनका साहस मात्र है क्योंकि यह कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उन वैयाकरणों के पास ऐसे साधन थे जिनसे वे सभी प्रांतों की प्राकृत बोलियों का अवगाहन करने में समर्थ हुए होंगे। श्रद्धा करनेवाले महात्माओं की तो बात ही जुदी है। जिनके मत में त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तक हो सकते हैं वे लोग सब कुछ मान सकते हैं और उनके लिए सब कुछ संभव है। पर इस प्रमाण-प्रधान युग में शायद ही कोई ऐसे महात्मा सभ्य समाज के सामने खड़े होकर यह कहने का साहस करें कि "वे लोग त्रिकालदर्शी थे अतः उन लोगों ने जो कुछ लिखा सब अपने योग बल द्वारा जान कर ही लिखा, और उस समय भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में उन्हीं भाषाओं का प्रचार था जो उन वैयाकरणों के सूत्रों से सिद्ध

---

* वैदिक मन्त्रों में अनार्य्य शब्द भी हैं यह मेरा निज का सिद्धान्त नहीं। हम से बहुत पूर्व के महर्षि जैमिनि ने भी वेदों में ऐसे शब्दों का होना स्वीकार किया है। मीमांसादर्शन अध्याय १ पाद ३ सू० १० चोदितं तु प्रतीयेताविरोधात् प्रमाणेन।

इस पर शबर स्वामी लिखते हैं:—अथ यान् शब्दान् आर्य्या नकस्मिंश्चिदर्थे आचरन्ति, म्लेच्छास्तु कस्मिंश्चिन्प्रयुञ्जन्ते यथा पिक, नेम, सत तामरसादिशब्दास्तेषु सन्देहः, किं निगम निरुक्तव्याकरणवशेन धातुतोऽर्थः कल्पयितव्यः, उत यत्र म्लेच्छा आचरन्ति स शब्दार्थ इति। शिष्टाचारस्य प्रमाणमुक्तं नाशिष्टस्मृतेः। तस्मान्निगमादिवशेनार्थकल्पना। निगमादीनां चैवमर्थवत्ता भविष्यति। अनभियोगश्च शब्दार्थेष्वशिष्टानाम्, अभियोगश्चेतरेषाम्। तस्माद्धातुतोर्थः कल्पयितव्य इत्येवं प्राप्ते ब्रूमः—चोदितमशिष्टैरपि शिष्टानवगतं प्रतीयेत, यत् प्रमाणेनाविरुद्धं तदवगम्यमानं न न्याय्यं त्यक्तुम्। यत्तु शिष्टाचारः प्रमाणमिति—तत्प्रत्यक्षानवगतेऽर्थे। यत्त्वभियुक्ताः शब्दार्थेषु शिष्टा इति, तत्रोच्यते-अभियुक्ततरापक्षिणां पोषणे बंधने च म्लेच्छाः। यत्तु निगमनिरुक्तव्याकरणानामर्थवत्तेति—तत्तेषामर्थवत्ता भविष्यति, न यत्र म्लेच्छैरप्यवगतः शब्दः। अपि निगमादिभिरर्थे कल्प्यमाने अव्यवस्थितः शब्दार्थो भवेत्—तत्राऽनिश्चयः स्यात्। तस्मात् पिक इति। (वाजसनेयिसंहितायां) कोकिलो ग्राह्यः नेमोर्द्ध (हिंत जनिम नेमभूद्यतम् ऋ० ६। ६८। ५) तामरसं (?) पद्मं, सत (स तेन द्रोणकलसम् वा सं० १६। २७) इति दारुमयं पात्रं, परिमण्डलं शतछिद्रम्।'

अर्थात् पिक, नेम, तामरस, सत इत्यादि शब्द विदेशी हैं।

इसी प्रकार कहीं 'कोवेद' का 'कुविद' जैसे—कुविन्मां गोपां करसे जनस्य इत्यादि, कहीं 'रत्न' का 'रतन', कही देवा का देवासो, हंति का हनति, इत्यादि इत्यादि लौकिक प्रयोग मिलते हैं जिनमें किसी को निपात, किसी को आर्ष, किसी को व्यत्यय कह के वैयाकरण अपना पल्ला छुड़ाते हैं।

होती हैं"। अपने इस विचार की पुष्टि में हम यहाँ कुछ स्थालीपुलाक न्याय से ऐसे प्राकृत शब्दों के नमूने पेश करते हैं जिनका वा जिनके विकारों का प्रयोग किसी काल में किसी भाषा में किसी प्रकार से कोई समझदार मान ही नहीं सकता। इससे यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि नाटकों वा जैनियों की प्राकृत भी कभी बोलचाल की भाषा न थी, यह केवल वैयाकरणों की गढ़ी हुई एक कल्पित भाषा थी जिसका प्रयोग केवल लिखने में उन वैयाकरणों के पीछे होने लगा।

संस्कृत	प्राकृत
पताका	पडाआ
पन्थः	पहो
पिशाचः	पिसल्लो, पिसाओ
प्रतिज्ञा	पईणा
मयूखः	मोहो, मउहो
भजनम्	भाअणं, भाणं
प्रभूत	बहुअ
भ्रमर	भसर
अपस्मारः	अम्हलो
पद्मः	पडमो, पोम्मो
रत्नम्	रअणं, रयणं
ललाटः	णड़ालो, णिडालो, णलाडो
बज्रम्	बइरं
विष्णु	आदियो
शकटः	सअड़ो
स्थानम्	ठीणं, थीणं

बात यह है कि आदि प्राकृत वैयाकरण ने—चाहे वह चंड वा जो कोई हो—अपने समय की जीती जागती भाषा के थोड़े से अपूर्ण और अव्याप्त नियम बनाए। पीछे कुछ काल बीत जाने पर जब आदि वैयाकरण की भाषा भी बोलचाल से उठ गई तब कुछ वैयाकरण उन अपूर्ण नियमों को अतिव्याप्त बनाकर उनके अनुसार सिद्ध करके बहुत से नये शब्द गढ़ने लगे, जैसे प्राचीन वैयाकरण ने एक नियम किया कि स्वर के परे 'क' का लोप हो जाता है (पर यह नियम उनका बिलकुल व्यापक नहीं था) जैसे 'कोइल' (कोकिल) आदि शब्दों में। फिर क्या था पीछे के महात्माओं ने जितने इस प्रकार के 'क' कार मिले सब का लोप करना शुरू किया और 'सकल' से 'सअल' आदि बहुत से शब्द गढ़ डाले। वृत्तिकारों ने भी सूत्रों के उदाहरण देने में यही ग़लती की है। यद्यपि आदि आचार्यों ने साफ़ कह दिया था कि हमारे ये नियम विभाषा वा विकल्प से लगते हैं। सारांश यह कि एक समय की प्रचलित भाषा के अपूर्ण और अव्याप्त नियमों को लेकर दूसरे समय के लोगों ने, जब कि उन नियमों की चरितार्थता की जाँच का साधन नहीं रह गया (अर्थात् वह भाषा उठ गई जिसे देख कर ये अपूर्ण नियम बने थे), बहुत से बेढंगे शब्द बना डाले और एक कल्पित भाषा की सृष्टि की। यहीं तक नहीं, संस्कृत के समकक्ष एक नया सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण खड़ा करने के लिये सैकड़ों नये नियम बनाए गए। जान बूझ कर भाषा का यह कृत्रिम ढड्ढा खड़ा करने में हेमचन्द्र ने बड़ी बहादुरी दिखाई। संज्ञा शब्दों के उदाहरण तो ऊपर दिए गए। कुछ उन क्रियाओं और धातुओं के उदाहरणों का भी नमूना देखिये जो इन त्रिकालज्ञ वैयाकरणों के सूत्रानुसार बनती हैं। यहाँ एक बात बतला देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि इन सूत्रकारों ने मनमाने आदेश किए हैं उनका लक्ष्य नाद वा स्फोट के नियम पर नहीं था और न उन्होंने निरुक्त (Philology) पर ही कुछ ध्यान दिया।

संस्कृत 'म्लै हर्षक्षये' धातु के स्थान में वररुचि ने 'म्लैवावाओ' सूत्र से वा और वा ओ आदेश किया है। भला सोचिये तो सही कि 'म्लै' का किस स्फोट नियम से वा और वा ओ होगा। इसी प्रकार हेमचंद्राचार्य्य ने संस्कृत कथ धातु के स्थान में 'कथेर्धोतीरवज्जर-पज्जरोप्पाल-पिसुण, सङ्घबोल्लजम्प सीससाहाः।' से बज्जर, पज्जर, उप्पाल, पिसुण,

सङ्कबोल्ल, चव, जम्प, सीस, साह आदेश कर डाले हैं। अब पाठक विचारिये तो सही क्या इन सब का कथ से विकृत होकर निकलना संभव है। मेरी समझ में तो वज्र, से वज्जर, पज्जर; उपल से उप्पाल; पिसुन से पिसुण; शंस वा शंक से सङ्क, ब्रुव से बोल्ल, चर्व से चव, जल्प से जम्प, शिक्ष वा शिष से सीस, तथा शास् से संह निकला है। इसी प्रकार 'स्मृ' धातु के स्थान में 'झरेझर्झर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुहाः' से झर झूर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुस् आदेश किए हैं जिनमें 'सुमर' को छोड़ शेष सब कल्पित तथा दूसरे संस्कृत शब्दों से बने प्रतीत होते हैं। 'विम्हर' 'विस्मृ' का और 'पम्हुसं' 'प्रस्मृ' का विकार प्रतीत होता है जिसे 'विम्हुः पम्हुस् विम्हर वीसराः' में उन्होंने स्वीकार किया है। इनमें 'वीसर' अति शुद्ध प्रतीत होता है।

आजकल कितने विद्वान् जिनका यह कथन था कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा प्राकृत से निकली है उसके शब्दों को शैारसेनी आदि प्राकृत के भेदों से न सिद्ध होते देख दुराग्रह वश यह कहा करते हैं कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा अपभ्रंश नामक प्राकृत भाषा से निकली है। हम ऐसे विद्वानों और उनके वाक्यों को 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' माननेवाले शिष्यों के लिये कुछ अपभ्रंश प्राकृत के शब्दों को उनके माने हुए संस्कृत के प्रकृति रूपों के साथ यहाँ उदाहृत करके सानुरोध उन से विचार करने की प्रार्थना करते और पूछते हैं कि क्या वे महात्मा यह बताने का परिश्रम उठावेंगे कि ये शब्द भाषातत्त्व और निरुक्त (Philology) के किस नियम के अनुसार अपनी प्रकृति से (वैयाकरणों की मानी हुई प्रकृति) से निकले हैं और क्या वे तीन काल में भी उन्हें उन उन संस्कृत शब्दों का विकार सिद्ध करने में कृतकार्य्य हो सकेंगे।

संस्कृत	प्राकृत
उद्भुत	ढकरि
अपस्कंद	दडबड
शीघ्रं	बहिल्लं
कैातुक	कोड्ढ
कृकट	घप्पलो
वद	बोल्ल
भय	द्रवक
असाधारण	सड्ढल
मूढ़	नलिअ
तक्ष	छोल्ल

हमें यहाँ प्राकृत वैयाकरणों की कुछ अयोग्यता का परिचय देना आवश्यक जान पड़ता है। वह यह है कि उन वैयाकरणों ने जिस प्रकार अपने अपने कल्पित प्राकृत भाषाओं को नियमों से जकड़ बंद किया है उस प्रकार वे अपभ्रंश को नहीं कर सके। पहिले तो उन लोगों ने अपभ्रंश को छुआ ही नहीं है। पर जिन्होंने उसे छूने की चेष्टा की है जैसे हेमचंद्रादि ने वे केवल विभक्ति और प्रत्ययों ही पर लिख कर रह गये हैं और 'शैारसेनीवत्' लिख कर ही अपना पीछा छुड़ाया है जिससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि उन लोगों ने अपभ्रंश शब्दों के अवगाहन करने में अपनी असमर्थता को समझा था जो वास्तव में ठीक भी था। संस्कृत भाषा के अतिरिक्त यदि और किसी भाषा का पूर्ण रूप से अवगाहन किया गया तो वह पाली भाषा है जिसे उसके सुयोग्य वैयाकरणों और कोशकारों ने संस्कृत की समकक्ष भाषा बना दिया और पीछे से बैाद्धों को यह कहने का साहस दिलायाः—

> सा मागधी मूलभासा नरायाआदि कप्पिका।
> ब्राह्मणा चास्सुता लापा सुम्बुद्धा चापिमासिरे॥

अपभ्रंश भाषा जिसका हेमचन्द्र पूरा अवगाहन नहीं कर पाया वह अवश्य मारवाड़ की भाषा है जिसके उदाहरणों में उसने अपनी शैारसेनी आदि कल्पित प्राकृतों के कुछ शब्दों को इधर उधर ठूस कर उसे कुछ अधिक क्लिष्ट कर दिया।

अब हम इसका विचार पाठकों ही पर छोड़ते हैं, वे ही विचार कर देखें, कि क्या वह कल्पित

प्राकृत जो व्याकरणों के सहारे बनती है कभी भारत-वर्ष के किसी प्रान्त की बोलचाल की भाषा वा विद्वानों की भाषा थी। जिन लोगों ने उन उन व्याकरणों को पढ़ा है उन्हीं ने उस भाषा में भले ही पुस्तकें आदि लिखी हैं जैसा कि नाटकों में और जैन-साहित्य में देखा जाता है। फिर जिनका प्रचार ही नहीं था उनसे अपनी भाषा का विकाश मानना भ्रम नहीं तो क्या है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि कुछ इने गिने शब्द जैसे भुआल गाहा इत्यादि तुलसीदास के रामायण तथा अन्य काव्यों में मिलते हैं पर इसका कारण यह है कि तुलसीदासजी संस्कृत के पण्डित थे और उन्होंने* नाटकादि को पढ़ा था और काव्यपरम्परा की रीति पर रामायण को बनाया था। अन्य कवियों ने भी उन्हें अपने पूर्ववर्ती कवियों से लिया था।

यहाँ यह भी कह देना अनुचित न होगा कि हिन्दी कविता के प्रवाह के उद्गम संस्कृत और प्राकृत काव्य हैं और गद्य हिन्दी-भाषा का उद्गम लोकभाषा है। अतः काव्यों में प्राकृत शब्द मिलने से हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि हमारी हिन्दी-भाषा पर प्राकृत का प्रभाव पड़ा है। हाँ, यदि आप प्राकृत का अर्थ लें भिन्न भिन्न कालों में प्रचरित प्रजाजनों की भाषा तब भी यह कहना उचित न होगा कि उसका प्रभाव हिन्दी-भाषा पर पड़ा है वा पड़ सकता है। यह भले ही माना जा सकता है, और यह मानना ठीक भी है, कि हिन्दी-भाषा अपने पूर्व की प्रचलित भाषाओं से निकली है। उन पूर्वप्रचरित भाषाओं के कुछ नमूने गौतमबुद्ध के उपदेशों, अशोक के शिलालेखों, तथा इधर चंद आदि ग्रन्थों में पाए जाते हैं।

—:०:—

* तुलसीदास के प्राकृत ज्ञान का प्रमाण यह है।
ये प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने॥

बुद्धघोष *।

परिचय।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान सायण का है, पाली साहित्य में ठीक वही स्थान बुद्धघोष को प्राप्त है। उसका तथा उसके रचित ग्रन्थों का दक्षिणी (लंका, बरमा और स्याम के) बौद्धों में प्राचीन काल से बहुत अधिक आदर है। उन लोगों के धार्म्मिक और नैतिक जीवन पर बुद्धघोष के लेखों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और वे लोग उसे देवतुल्य मानते हैं।

बुद्धघोष के असली नाम का अब तक पता नहीं चला है। "बुद्धघोष" एक व्यक्तिगत पदवी मात्र है जो उसे या तो बौद्ध होने के समय या बाद में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करने के कारण मिली थी। इस प्रकार की व्यक्तिगत पदवियों अथवा उपनामों की प्रथा, बुद्ध के बाद कई सौ वर्षों तक, बहुत अधिक प्रचलित थी और उन दिनों बुद्धप्रिय, बुद्धगुप्त, बुद्धमित्र, बुद्धभद्र और बुद्धघोष, इन्द्रघोष, आर्य्यघोष और मञ्जुघोष आदि नाम अधिकता से रक्खे जाते थे।

यद्यपि दक्षिणी बौद्धों में बुद्धघोष का बहुत आदर है और उन लोगों में उनके सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएं भी प्रचलित हैं, तथापि चीन, जापान, और मंगोलिया के बौद्ध उनके नाम से एक दम अपरिचित हैं। भिलसा और मथुरा आदि स्थानों में अब तक जो शिलालेख पाये गये हैं उनसे मालूम होता है कि उस समय भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में बुद्धघोष बौद्ध-समाज का एक प्रमुख था और लगभग पचास वर्षों तक समस्त भारत में वह बहुत आदरणीय रहा। चीनी यात्री फाहियान् जब सन् ४०५ से ४०९ के मध्य में पाटलीपुत्र गया था तो उस समय उसे वहाँ एक "विद्वान्

* इण्डियन एण्टिक्वेरी (The Indian Antiquary) के अप्रैल सन् १८९० के अङ्क के एक लेख के आधार पर।

ब्राह्मण" मिला था। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह "विद्वान् ब्राह्मण" वही बुद्धघोष था। लंका वालें के कथनानुसार बुद्धघोष ने लंका के राजा महानाम के* राजत्वकाल में ग्रोर बरमा वालें के कथनानुसार बरमा के राजा व्यांगडैक के † समय में अपना धार्म्मिक जीवन आरम्भ किया था।

बरमावासियें में बुद्धघोष के संबंध में जो दन्त-कथाएं प्रचलित हैं उनसे मालूम होता है कि यह ब्राह्मण था ग्रोर विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक की,—जिसमें बुद्ध के सब अवतारें का पूरा विवरण है—रचना के लिए लंका भेजा गया था। सन् ३९७ के लगभग वह बहुत सी पाली पुस्तकें लंका से बरमा ले गया था। बरमा में बैाद्ध-धर्म का पहले पहल उसी ने प्रचार किया था ग्रोर अन्त में भारतीय ब्राह्मणों के भय से उसने अपना अधिकांश जीवन भी वहीं बिताया था। इसके सिवा स्याम के कुछ बैाद्धों का यह भी कथन है कि बुद्धघोष ने गैातम बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष बाद लंका में जाकर बैाद्ध-धर्म्म का प्रचार किया था। लेकिन लंकावालें के कथनानुसार लंका में उसी समय महीन्द्र ने बैाद्ध धर्म का प्रचार किया था। पहले वह भारत से बरमा गया था ग्रोर वहाँ से सन् ४०० के लगभग कुछ पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ लाने के लिए लंका भेजा गया था। वहाँ तीन वर्षों तक रह कर उसने अनेक ग्रन्थों के भाष्य पाली भाषा में किये ग्रोर प्रति-लिपियाँ लीं। जब वह लंका से लैाटने लगा तब वहाँ के निवासियें ने बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं उनको भेंट की थीं।

लेकिन लंकावासियें का मत इससे बहुत भिन्न है। वहाँ के बहुत प्राचीन ग्रोर मान्य ग्रन्थ महावंश में लिखा है—"राजा महानामन् के राजत्व-काल में जम्बूद्वीप (भारत) से लंका में एक विद्वान् आया था जिसका नाम बुद्धघोष था। राजा महानामन् ने उससे बुद्ध के बहुत से उपदेश संग्रह कराए ग्रोर लिखवाये थे।" दूसरी पुस्तक राजरत्नाकरी में लिखा है—"राजा महानामन् के समय में जम्बूद्वीप से बुद्धघोष आया था जिसने बुद्ध के २५७२५० उपदेशों में पाली भाषा में ३६०५५० उपदेश ग्रोर बढ़ाए थे।" राजावली नाम की इतिहास-पुस्तक में लिखा है कि महानामन् के पुत्र ने बुद्धघोष तथा एक ग्रोर बैाद्ध को भारत से बुलवाया था ग्रोर वही लोग अपने साथ अनेक ग्रन्थ आदि लेते गए थे। लेकिन महावंश का जो अनुवाद टरनर (Hon. George Turnour) साहब ने किया है, उसमें बुद्धघोष का कुछ विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। उसमें जो कुछ लिखा है, उसका तात्पर्य्य यह है—"मगध देश में एक बहुत ही विद्वान् ब्राह्मण युवक रहा करता था। वह तीनें वेदें का ज्ञाता ग्रोर बहुत अच्छा वक्ता था। वह वास्तविक "ज्ञान" की प्राप्ति के लिए समस्त प्रदेश में घूमता घूमता अन्त में एक बैाद्ध-विहार में पहुँचा। वहाँ उसकी भेंट महा-स्थविर रेवत से हुई। पहले रेवत ग्रोर उस ब्राह्मण में कुछ शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह ब्राह्मण हार गया। इसके बाद रेवत ने उस ब्राह्मण की विद्वत्ता ग्रोर योग्यता से प्रसन्न होकर उसे बैाद्ध धर्म में दीक्षित कर लिया ग्रोर उसे "बुद्धघोष" की पदवी दी। इसके बाद उसने जम्बू द्वीप में "ज्ञानादयन" नामक ग्रन्थ की रचना की ग्रोर "अभिधर्म" नामक ग्रन्थ की "धर्मसंगिनी" टीका पर कुछ लिखा। तदुपरान्त उसने पिटकत्रय की "परित्तवकथन" नामक टीका करने का विचार किया। उस पर रेवत ने उसे लंका जाकर महीन्द्र रचित सिंहली भाषा की "अथ्थकथा" वा टीका पढ़ने ग्रोर पाली भाषा में उसका अनुवाद करके उसके द्वारा संसार का उपकार करने की सम्मति दी। तदनुसार वह महानाम के समय में लंका आया। वहाँ वह अनुराधापुर के महा-विहार में रहने ग्रोर "अथ्थकथा" ग्रोर "थेरवाद" सुनने लगा। कुछ समय बाद उसने वहाँ के प्रधान पर अथ्थकथा का अनुवाद करने की अपनी इच्छा प्रकट की ग्रोर पुस्तकों की सहायता माँगी। प्रधान ने उसकी

* महानामन् सन् ४१० में लंका का राजा हुआ था।

† व्यांगडैक का देहान्त सन् ४१३ में हुआ था।

योग्यता की परीक्षा के लिए पहले उसे केवल एक ही गाथा दी और कहा कि यदि इसका ठीक अनुवाद करने में तुम सफलता प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें और ग्रन्थ भी दे दिये जायँगे। वहीं कुछ समय तक बहुत परिश्रम करके उस गाथा पर उसने विशुद्धि-मग्ग" (विशुद्धि-मार्ग) नामक प्रसिद्ध टीका तैयार की। टीका समाप्त कर चुकने पर जब उसने उसे पढ़ना चाहा तो देवताओं ने वह टीका लुप्त कर दी। इस पर उसने दूसरी टीका की; पर वह भी पहली की भाँति लुप्त हो गई। उसने फिर तीसरी टीका की। तीसरी बार टीका तैयार हो जाने पर देवताओं ने उसकी दृढ़ता से प्रसन्न होकर पहली दोनों टीकाएं भी उसे दे दीं। जब लोगों ने उन तीनों टीकाओं का मिलान किया तो उन्हें मालूम हुआ कि मानों वह तीनों एक दूसरे की नक़ल हैं। उन तीनों टीकाओं में कहीं एक अक्षर का भी फरक न था! इस प्रकार जब बुद्धघोष की विद्वत्ता विहार के अधिकारी को मालूम हो गई तब उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे सब ग्रन्थ दे दिए। वहीं रह कर उसने सिंहली भाषा की अथ्थकथा का पाली भाषा में बहुत उत्तम अनुवाद कर डाला। उसके अनुवाद और टीका का बड़े बड़े आचार्य्य आदर करते हैं। अपना उद्देश्य पूरा करके बुद्धघोष जम्बूद्वीप लौट गया।" लेकिन यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि उक्त अंश असली महावंश में नहीं है बल्कि उसके उस अंश में है जो बाद में तेरहवीं शताब्दी में बढ़ाया गया था।

बुद्धघोष की जीवनी में तीन बातें ऐसी विचारणीय हैं जिनपर विद्वानों का मत-भेद है। (१) (उसका) आरम्भिक जीवन, (२) लंका-यात्रा और (३) अन्तिम जीवन। उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में लोगों में उतना मतभेद नहीं है जितना और बातों में। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वह जन्म का ब्राह्मण था, बहुत अच्छा विद्वान् था और शायद बौद्ध-धर्म्म का विरोधी भी था। युवावस्था में ही वह बौद्ध हो गया था। कोई कोई विद्वान् उसे प्राकृत का भी अच्छा ज्ञाता और लेखक मानते हैं। कुछ लोग उसे बरमा का निवासी बतलाते हैं, लेकिन यह उनका भ्रम है *। एक विद्वान् के कथनानुसार वह भारत के ब्राह्मणों के भय से भाग कर बरमा चला गया था; लेकिन इस मत की पुष्टि के लिए और कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके सिवा उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी तक और कुछ पता नहीं चला है।

बौद्ध होजाने के बाद बुद्धघोष लंका गया था। महास्थविर रेवत ने ही उसे लंका जाकर सिंहली भाषा सीखने और वहाँ से त्रिपिटक का अनुवाद कर लाने के लिए कहा था। वहीं उसने विशुद्धि-मार्ग नामक भाष्य किया था। किसी किसी का कथन है कि विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक वहाँ पहले से ही तैयार थी; बुद्धघोष ने उसकी नक़ल की थी। लेकिन यह बात ठीक नहीं है। कहा जाता है कि भाष्य लिखने के लिए स्वयं भगवान् बुद्ध ने उसे लोहे की एक क़लम दी थी। बरमावालों के कथनानुसार बुद्धघोष ने ही लंका में बौद्धधर्म्म का प्रचार किया था; लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम होती है, क्योंकि उससे पहले ही महिन्द वहाँ बौद्ध-धर्म्म का प्रचार कर आया था और वहाँ उस धर्म्म के अनेक ग्रन्थ और अनुयायी वर्त्तमान थे। हाँ, यह सम्भव है कि बुद्धघोष ने वहाँ उस धर्म्म का प्रसार और अधिक किया हो।

लंका में बुद्धघोष ने विशुद्धिमार्ग नामक भाष्य के अतिरिक्त वहांवालों के लिए बुद्ध के असंख्य उपदेशों का संग्रह भी किया था। इसके सिवा वह लंका से पाली भाषा की अनेक पुस्तकें बरमा ले गया था और वहाँ उसने बौद्ध धर्म्म और पाली भाषा तथा लिपि का प्रचार किया था।

उसके जीवन का अन्तिम भाग बरमा में बौद्ध-धर्म्म का प्रचार करने में व्यतीत हुआ था। उसके

* बरमावालों को अब उनका भ्रम मालूम हो चला है और वहां के नवीन विद्वान् बुद्धघोष का जन्म-स्थान भारत ही मानते हैं।

बरमा पहुँचने के समय से वहाँवालों ने एक नया सम्वत् भी चलाया था, पर वह शायद अधिक दिनों तक नहीं चला। बरमा के बाद उसने स्याम देश में भी बौद्धधर्म्म का प्रचार किया था। उन्हीं दिनों में उसने और भी अनेक काम किये थे। लंका आने से पूर्व ही वह "ज्ञानोदय" और "अर्थशालिनी" नाम की दो पुस्तकें लिख चुका था। लंका से वह कात्यायन का पाली व्याकरण भी ले आया था जिसका उसने बरमी भाषा में अनुवाद और भाष्य किया। बुद्धवंश पर जो टीका हुई है वह भी बुद्धघोष की ही बतलाई जाती है। बरमा में जो मनुस्मृति है उसके विषय में भी यही कहा जाता है कि उसे बुद्धघोष लंका से लाया था; लेकिन उस स्मृति में इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है।

बुद्धघोष का बिलकुल ठीक समय भी अभी तक निश्चित नहीं हो सका है इस विषय में विद्वानों का बहुत मतभेद है। कोई तो उसे ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं और कोई कोई उसे ईसा के ६०० वर्ष बाद तक का बतलाते हैं। कुछ लोग तो उसे और भी आगे पीछे घसीट ले जाते हैं; लेकिन वह सम्भवपर नहीं है। अधिकांश प्रमाण इसी बात के मिलते हैं कि वह चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवित था।

—:०:—

गुजराती समाचार-पत्र।

[ले० पंडित श्रीसांवलजी नागर]

पाश्चात्य देशीय अँग्रेज़ विद्वानों के परिचय से, विद्या की अपूर्व उन्नति के कारण, हम भारतवासियों को जो जो अपूर्व लाभ हुए हैं उनमें सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय लाभ मुद्रण-कला का अन्वेषण और उसका प्रचार है। जिस प्रकार प्राचीन आर्यों की विद्वत्ता उनके तत्त्वज्ञान के ग्रंथों से स्मरणीय है, बौद्ध-राज्य का अस्तित्व उसके स्तूपों और भू-गर्भ-स्थित प्राचीन मूर्तियों से जाना जाता है, यवनों का नामस्मरण उनके मक़बरों और बड़े २ राज-प्रासादों से अविचल है उसी भाँति अँग्रेज़ी-राज्य का अस्तित्व भारत के इतिहास में छापे की कला के प्रचार से स्मरणीय रहेगा। इतिहास-विज्ञ महाशयों को भली भाँति विदित है कि इस कला के अन्वेषण का सौभाग्य अँग्रेज़ों को नहीं वरन् जर्मनीवालों को प्राप्त है। सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी प्रदेश के गटनबर्ग ने इस कला को निकाल उसे परिमार्जित किया और वहीं से वह योरोप में प्रचलित हुई। अँग्रेज़ों के संसर्ग से इस देश में भी इसका शुभागमन हुआ। जब से इस कला का आगमन हुआ है, आर्य प्रजा की स्थिति पलट गई है। इसमें सन्देह नहीं, कि जिन अँग्रेज़ों के उद्योग से इसका यहाँ प्रचार हुआ, प्रत्येक भारतवासी उनके कृतज्ञ हैं।

अँग्रेज़ी भाषा में "प्रेस" शब्द के दो अर्थ हैं, मुद्रण-कला और समाचार पत्र। मुद्रण-कला के आविष्कर्त्ता गटनबर्ग थे। योरोप, अमेरिका और एशिया आदि की बुद्धि-शक्ति के परिमार्जित करने और उसे सर्वोपरि सुशिक्षित बनाने में इस कला ने एक अद्भुत शक्ति प्रदर्शित की है। जर्मनी में केवल धर्मग्रन्थों के छापने के अभिप्राय से इस कला का प्रारम्भ हुआ; परन्तु अन्यान्य भूभागों में, राज्य-सम्बन्धी आलोचनाओं को सबके सामने प्रगट करने की इच्छा से इस कला का प्रचार हुआ जिसका वर्त्तमान स्वरूप समाचारपत्र हैं। इन समाचारपत्रों की उत्पत्ति; जिनमें राज्य-सम्बन्धी, सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को प्रगट करनेवाले और जन-समाज की उन्नति एवं अवनति-सम्बन्धी समाचार हों, योरोप में हुई है।

सब से प्रथम इङ्गलेंड देश में एक समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया जिसमें केवल समाज-सुधार-सम्बन्धी ख़बरें रहती थीं। इसके उपरान्त एक दो पत्रों में राज-कर्मचारियों की आलोचनाएं

भी होने लगीं; परन्तु राज-दंड के भय से, इन्हें बड़ी २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यद्यपि उस देश में स्वतंत्रता देवी की पूर्ण कृपा थी तथापि सन् १८८१ के पूर्व मुद्रण-कला को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त न थी। परन्तु वर्त्तमान समय की तरह कार्य-करने वाले प्रेसों का प्रचार इङ्गलैंड देश में सन् १७०४ से १७४० ई० तक में हुआ। इस रीति के उत्पादक स्वफ्टि, डीफो, बोलिङ्गब्रक, और पलटनी नामक सज्जन थे। यही कार्य फ्रान्स देश में सन् १७८९ से और जर्मनी में सन् १७९६ से प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त सज्जनों के प्रयत्न का लाभ सबसे प्रथम "लण्डन टाइम्स" को हुआ। वाल्टर नामक एक सज्जन ने सन् १७८५ में "डेली यूनीवर्सल रजिस्टर" नामक पत्र निकाला; परन्तु कई कारणों से तीन वर्ष के पश्चात् इसका नाम बदल देना पड़ा और उसका नया नाम "दी टाइम्स" निश्चय हुआ जो आज तक प्रसिद्ध और प्रचलित है। ५० वर्ष लों यह केवल एक साधारण समाचारपत्र था, परन्तु सन् १८३७ से इसकी स्थिति का परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। यहाँ तक कि आज कल यह एक जग-प्रसिद्ध समाचारपत्र हो रहा है। इस पत्र के कई वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद कई समाचारपत्रों का जन्म हुआ, और आज दिन केवल ग्रेट ब्रिटेन में ही—जो भारतवर्ष से ⅑ हिस्सा छोटा है, ३१८५ दैनिक और साप्ताहिकपत्र प्रकाशित हो रहे हैं! सम्पूर्ण योरोप में इस समय २५०० के लगभग तो केवल दैनिक पत्र निकलते हैं।

भारतवर्ष में इस कला का प्रवेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से हुआ था। सबसे प्रथम धर्मग्रंथ 'बाइबिल' के प्रकाशित करने की अभिलाषा से, अँग्रेज़ों ने, सन् १७८६ ई में बंगाल प्रदेश के श्रीरामपुर नामक नगर में एक प्रेस खोला था। पहिले पहल इसमें अँग्रेज़ी भाषा ही में कार्य होता था। लार्ड वेलस्ली के सुशासन में, सरकार के अधीनस्थ "दी वर्ल्ड"; "कलकत्ता गज़ेट" आदि इसी प्रेस से प्रकाशित किये जाते थे। उस समय मद्रास प्रान्त में इस कला का प्रवेश हुआ था कि नहीं यह अज्ञात है। परन्तु बम्बई प्रान्त में "बाम्बे हेरल्ड", "कुरियर", "गज़ेट" इत्यादि पत्र निकलने लगे थे।

सन् १७१२ के पूर्व गुजराती और हिन्दी (नागरी) अक्षरों का प्रेसों में कहीं पता भी न था। सन् १६७० ई० में "दिव" बन्दर के भीमजी पारिख नामक एक वैश्य ने बम्बई के गवर्नर के द्वारा एक पत्र डाइरेक्टरों के बोर्ड को भेजा, जिसमें यह लिखा हुआ था कि यदि सरकार नागरी अक्षरों को ढाल दे तो वह एक प्रेस खोल कर कार्य करने को तैयार हैं। उस पत्र में यह भी प्रार्थना की गई थी कि सरकार किसी सुयोग्य मनुष्य को भेजकर इस कार्य में सहायता करे। इसके अनुसार कोर्ट आफ़ डाइरेक्टरों ने ८००) वार्षिक वेतन पर मि० हेनरी हिल को एक मशीन, थोड़े अँग्रेज़ी अक्षर और कुछ और सामान के सहित भारतवर्ष में भेजा। परन्तु मि० हिल अक्षर ढालना न जानते थे अतएव महाशय भीमजी को आरम्भ में हताश होना पड़ा। भीमजी पारेख ने पुनः कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स की सेवा में निवेदनपत्र भेजा और सन् १६७८ ई० में डाइरेक्टरों ने एक (अक्षर खोदने एवं ढालने के कार्य में) चतुर व्यक्ति को भेजा जिसकी सहायता से भीमजी ने नागरी अक्षर बना कर ढाले। इसके पश्चात् सन् १७९० ई० में रुस्तमजी खुरशेदजी नामक एक पारसी सज्जन ने अँग्रेज़ी अक्षरों में पञ्चाङ्ग प्रकाशित किया। इसी समय "बम्बे कुरियर" के सर्वस्व मि० डगलास निकलसन ने छः महाराष्ट्रों को कम्पोज़ करना सिखलाया और यहीं से देशी कम्पोज़िटरों की वृद्धि प्रारम्भ हुई।

जिस तरह नागरी अक्षरों के बनानेवाले भीमजी पारिख थे उसी भाँति गुजराती अक्षरों के बनानेवाले पारसी जाति के फ़रदुनजी मर्जबान थे। उन्होंने गुजराती अक्षर बना कर सन् १८१२ में 'समाचार' नामक प्रेस खोला। इसी प्रेस से सन् १८२२ ई० से "बम्बई समाचार" नामक पत्र भी निकलने लगा और अभी तक बराबर निकल रहा है। इसके बाद सन् १८३० ई० में सरकार की ओर से भी एक प्रेस

खोला गया। धीरे २ नागरी, गुजराती और अँग्रेज़ी प्रेस खुलने लगे। यहाँ तक कि सन् १८६७ में इस प्रान्त में प्रेसों की संख्या २५ थी और आज से दो वर्ष पूर्व इसकी संख्या १५० के ऊपर हो गई थी।

गुजराती तथा नागरी अक्षरों को चित्ताकर्षक बनानेवाला टामस ग्राहम और सूरत का जीवन नामक एक लोहार था। सन् १८३५ में टामस ग्राहाम ने, अक्षर खोदने और ढालने की युक्ति जीवनदास लोहार को बतलाई। १२ प्वाइंट के सादे पाइका अक्षर जो बम्बई की कई फ़ाउंडरियों में बनते हैं, इसी जीवनदास के परिश्रम का फल हैं।

सीसे के अक्षर बनने के पूर्व भारतवर्ष में शिला-छाप द्वारा पुस्तक, पञ्चाङ्गादि छापने की रीति प्रचलित थी। सबसे प्रथम सरकारी फ़रमान, सर्क्यूलर, नोटिस इत्यादि इसी शिला द्वारा छपते थे। पाश्चात्य देशों में प्रेसों की स्थापना पुस्तकों के प्रकाशित करने की अभिलाषा से हुई परन्तु इस देश में समाचारपत्रों की इच्छा से इसकी स्थापना हुई।

बम्बई प्रान्त का देशी भाषा का सबसे पुराना पत्र "बम्बई समाचार" है। सन् १८२२ में इसका जन्म हुआ। यह पत्र सन् १८३२ में दैनिक होकर, कई कारणों से १८३३ में साप्ताहिक हुआ; परन्तु गुजराती-भाषा-भाषियों के उत्साह और उद्योग से पुनः सन् १८५५ में दैनिक हो गया और अभी तक सर्वोत्तम दैनिकों में इसकी गणना है। गुजराती के प्रसिद्ध दैनिक "जामेजमशेद" (जो पायनियर के आकार से कुछ कम नहीं है) का जन्म सन् १८३१ में हुआ था। पहले यह साप्ताहिक था किन्तु भाषा-प्रेमियों के उत्साह से सन् १८५३ से दैनिक हो गया है। पारसी समाज का यह मुख्य पत्र है। यद्यपि हिन्दू-समाज-सुधार का यह उपदेशक है तथापि पारसियों के समाज-सुधार और नेशनल कांग्रेस के बिलकुल विरुद्ध है। और यही कारण है कि हिन्दु और यवन-समाज में इसका आदर कम है। इसी प्रकार सन् १८५० से सन् १८८० तक "दैनिक चाबुक" "व्यापार समाचार" "भीमसेन" "अख़बार सौदागर" आदि कई दैनिक पत्र निकले परन्तु कई कारणों से "अख़बार सौदागर" को छोड़ सब बन्द हो गये। हिन्दी-भाषा-भाषियों को यह सुन कर बड़ा हर्ष होगा कि गुजराती भाषा में सन्ध्या समय भी पत्र निकलते हैं। इस समय सन्ध्या समय निकलनेवाले दैनिकों में "साँझ वर्त्तमान" सर्वश्रेष्ठ है। कुछ काल तक "पारसी" भी सन्ध्या समय प्रकाशित होता था परन्तु अब फिर प्रातःकाल निकलता है। इस समय राष्ट्रीय विषयों की आलोचनाओं के लिये "बम्बई समाचार" सबसे अग्रगण्य और सर्वोत्तम है। समाज सुधार के लिये "पारसी" प्रसिद्ध है। दूसरे दो दैनिकों की कोई ख़ास नीति (Policy) नहीं है। वे हर एक विषयों की कुछ कुछ आलोचनाएँ करते हैं। यह सब पत्र पारसियों के अधीन हैं। शोक है कि हिन्दु-समाज से अभी तक एक भी दैनिक नहीं निकलता। अब चारों ओर से गुर्जर प्रेमी उद्योग कर रहे हैं। आशा है; परमात्मा उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी करेंगे।

गुजराती भाषा के साप्ताहिक पत्रों में सब से प्राचीन "रास्तगोफ़्तार" है। इसका जन्म, वयोवृद्ध महात्मा दादाभाई नौरोजी के सम्पादकत्व में सन् १८५१ में हुआ है। इसके एक ही वर्ष के बाद, साहित्य-प्रेमी कृष्णदास जी ने गुर्जर भाषा के प्रसिद्ध सेवी मंगलदास नथ्थूभाई तथा लक्ष्मीदास खीमजी की सहायता से "सत्यप्रकाश" नामक पत्र प्रकाशित किया। सन् १८६० ई० में उपर्युक्त दोनों पत्र एक कर दिये गये। जिस प्रकार "इन्दुप्रकाश" के संचालक भारत-रत्न मि० तैलंग, मि० रानाडे, मि० चन्द्रावरकर आदि थे उसी प्रकार "रास्तगोफ़्तार" के संचालक मि० दादाभाई नवरोजी, फ़रदूनजी, सोराबजी शापुरजी, काब्राजी इत्यादिक महान् पुरुष-रत्न थे। सन् १८८० तक इस की गणना सर्वोत्तम पत्रों में थी परन्तु काङ्ग्रेस की नीति के विरुद्ध होने के कारण इसकी महत्ता और उपयोगिता कम हो गई और इसकी ग्राहक-संख्या भी घट गई। "सत्य-प्रकाश" के बाद "सत्यदीपक" नामक पत्र भी सन् १८६२ में निकाला गया, परन्तु गुर्जर-साहित्य-तत्वज्ञ श्री-

युत मोहनलाल और श्रीमान् महीपतरामजी के संचालक रहते हुए भी, दैवयोग से यह पत्र दो वर्ष के बाद बन्द हो गया। इसके बाद, सन् १८६२ में "खोजादोस्त" सन् १८७० में "आर्य्यमित्र" सं० १८८२ में "यज़दांदोस्त" सं० १८५८ में "पारसीपंच" "लिबर्टी" आदि कितने ही पत्र निकले परन्तु धीरे धीरे सभों का अन्त हो गया। तो भी गुर्जर-भाषा-भाषी हताश न हुए वरन् उद्योग करते ही गये। सं० १८८० में प्रसिद्ध "गुजराती" का जन्म हुआ। राष्ट्रीय आलोचनाओं के साथ साथ सर्वसाधारण की अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न करना, जैसा कि कांग्रेस का मुख्य नियम है इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था और अभी तक है। इसी भाँति सं० १८८२ में "कयसरे हिन्द" सन् १८६० में "गुजरात मित्र" नामक कई पत्र निकले जो अभी तक विख्यात हैं और जिनकी ग्राहक-संख्या भी यथेष्ट है।

बम्बई प्रान्त के अँग्रेजी समाचारपत्रों में सबसे पहला नम्बर "बाम्बे हेरल्ड" का है। इसका जन्म १७८९ में हुआ था। इसके बाद क्रम से सन् १७९० में "बाम्बेकुरियर" और सं० १७९१ में "बाम्बे गजेट" प्रकाशित हुए थे। इसके बाद "बाम्बे" "क्रानिकल" "अरगस" "इडीस" "टाइम्स आफ़ इंडिया" आदि निकलने लगे। टाइम्स का जन्म सन् १८३८ में हुआ है। यह भारतवर्ष में सर्वप्रसिद्ध उत्तम पत्र है। बम्बई प्रान्त के गुजराती और अँग्रेज़ी समाचारपत्रों का उपर्युक्त अल्प इतिहास हैं। इससे मालूम होता है कि कितने ही पत्र दैनिक से साप्ताहिक हुए, कितने ही बंद हो गये, कितने ही के संचालकों को तरह तरह की असुविधाएं झेलनी पड़ीं, घाटे सहने पड़े, अपमानित भी होना पड़ा, परन्तु वे निरुत्साही, निरुद्योगी एवं कर्त्तव्यच्युत न हुए। गुर्जर-भाषा-सेवियों ने सब कुछ सहन कर, अपनी मातृ-सेवा से मुख न मोड़ा, और यही कारण है कि वे अपने भाषा भांडार की पूर्ति में सफली-भूत हुए। परन्तु हिन्दी-साहित्य-सेवियों में यह बात नहीं है। ज़रा ज़रा सी बातों पर निरुत्साही होना, किसी निस्वार्थी-साहित्य-सेवी से ईर्ष्या कर उसे अपमानित करने का प्रयत्न करना, हानि देख कार्य से विमुख होना आदि तो इनके लिये बाएं हाथ का खेल है। जिस सर्व-गुण-आगरी नागरी के किसी समय संसार की राष्ट्रभाषा होने की सम्भावना है, जिस नागरी के पक्षपाती ही नहीं वरन् सेवक गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी एवं महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर सरीखे भारत-रत्न मद्रासी भी हों, उस लिपि में सर्व-गुण-सम्पन्न एक दैनिक पत्र भी न हो, यह कितने महान् दुःख की बात है। अंत में मेरी हिन्दी-प्रेमियों से भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी के आज्ञानुसार यही प्रार्थना है कि—

> उठहु उठहु सब भ्रातृ-गण,
> उठहु मिटावहु सूल।
> निज भाषा उन्नति करहु,
> प्रथम जो सब को मूल ॥ १ ॥
>
> काव्य कला शिक्षा अमित,
> ज्ञान अनेक प्रकार।
> सब देशन सों लै करहु,
> भाषा मांहि प्रचार ॥ २ ॥
>
> प्रचलित करहु जहान में,
> निज भाषा करि यत्न।
> राज काज दर्बार में,
> फैलावहु यह रत्न ॥ ३ ॥

—:०:—

मनोविकारों का विकाश।

ईर्षा

जैसे दूसरे के दुःख को देख दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख वा भलाई को देख कर भी एक प्रकार का दुःख होता है जिसे ईर्षा कहते हैं। ईर्षा की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है इससे इस का प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है और

पशुओं में तो होता ही नहीं। ईर्षा एक संकर भाव है जिसकी सम्प्राप्ति आलस्य, अभिमान और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं तब कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि एक उस खिलौने को लेकर फोड़ देता है जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना मुझे मिले या न मिले दूसरे के काम में न आवे अर्थात् उसकी स्थिति मुझ से अच्छी न रहे। ईर्षा पहले पहल इसी रूप में व्यक्त होती है।

ईर्षा प्राप्ति की उत्तेजित इच्छा नहीं है। एक के पास कोई वस्तु है और दूसरे के पास नहीं है तो वह दूसरा व्यक्ति इस बात के लिए तीन प्रकार से दुःख प्रकट कर सकता है—

१—क्या कहें हमारे पास भी वह वस्तु होती!

२—हाय! वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती तो अच्छा था।

३—वह वस्तु किसी प्रकार उसके हाथ से निकल जाती, चाहे जहाँ जाती।

इन तीनों वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि इनमें दूसरे व्यक्ति की ओर जो लक्ष्य है उसे क्रमशः विशेषत्व प्राप्त होता गया है और वस्तु की ओर जो लक्ष्य है वह कम होता गया है। पहले वाक्य से जो भाव झलकता है वह ईर्षा नहीं है, साधारण स्पर्द्धा अर्थात् लाभ की उत्तेजित इच्छा का एक अच्छा रूप है। उसमें वस्तु की ओर लक्ष्य है, व्यक्ति की ओर नहीं। ईर्षा व्यक्तिगत है और स्पर्द्धा वस्तुगत। दूसरे वाक्य में ईर्षा का कुछ, और तीसरे में पूरा आभास है। इन दोनों में से एक (दूसरे) में दूसरे को वञ्चित न रख सकने का दुःख गौण और दूसरे (तीसरे) में प्रधान वा एकान्त है।

स्पर्द्धा में किसी सुख अर्थात् ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से किसी व्यक्तिविशेष को सम्पन्न देख अपनी त्रुटि पर दुःख होता है, फिर प्राप्ति की एक प्रकार की उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न होती है, वा यदि इच्छा पहले से होती है तो उस इच्छा को उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार की वेगपूर्ण इच्छा वा इच्छा की उत्तेजना अन्तःकरण की उन प्रेरणाओं में से है जो मनुष्य को अपने उन्नति-साधन में तत्पर करती है। इसे कोई संसार को सच्चा समझने वाला बुरा नहीं कह सकता। यह उत्तेजना ऐश्वर्य्य, गुण वा मान के किसी चित्ताकर्षक रूप वा प्रभाव के साक्षात्कार से उत्पन्न होती है और कभी कभी उस ऐश्वर्य्य गुण वा मान को धारण करने वाले की पूर्वस्थिति के परिज्ञान से बहुत बढ़ जाती है। किसी अपने पड़ोसी वा मित्र की विद्या का चमत्कार और आदर देख विद्याप्राप्ति की इच्छा उत्तेजित होती है और यह जान कर कि पहले वह एक बहुत साधारण बुद्धि वा वित्त का मनुष्य था, यह उत्तेजना आशा-प्रेरित होकर और भी बढ़ जाती है। प्राप्ति की इस उत्तेजित इच्छा के लिए सम्पन्न व्यक्ति ऐसा मूर्त्तिमान् और प्रत्यक्ष आधार हो जाता है जिससे अपनी उन्नति वा सम्पन्नता की भी आशा बँधती है और कार्य्यक्रम की शिक्षा मिलती है। किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छावाले को किसी ऐसे व्यक्ति को देख जिसने अपने पुरुषार्थ से उस वस्तु को प्राप्त किया हो, कभी कभी बड़ा सहारा हो जाता है और वह सोचता है कि 'जब उस मनुष्य ने उस वस्तु को प्राप्त किया तब क्या मैं भी नहीं कर सकता?'। ऐसे सम्पन्न व्यक्ति की ओर जो इच्छुक वा स्पर्द्धावान् का बार बार ध्यान जाता है वह उसकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्त्तन करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए। स्पर्द्धा में अपनी कमी वा त्रुटि पर दुःख होता है, दूसरे की सम्पन्नता पर नहीं। स्पर्द्धा में दुःख का विषय है "मैंने उन्नति क्यों नहीं की?" और ईर्षा में दुःख का विषय है "उसने उन्नति क्यों की?"। स्पर्द्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्षा कमी।

ऊपर के विवरण से यह बात झलक गई होगी कि ईर्षा एक अनावश्यक वस्तु है, इससे उसकी

गणना मूल मनोवेगों में नहीं हो सकती। यह यथार्थ में कई भावों के रासायनिक मिश्रण से संघटित एक विष है। जब किसी विषय में अपनी स्थिति को रक्षित रख सकने वा समुन्नत कर सकने के निश्चय में अयोग्यता वा आलस्य आदि के कारण कुछ कसर रहती है तभी इस इच्छा का उदय होता है कि किसी व्यक्तिविशेष की स्थिति उस विषय में हमारे तुल्य वा हम से बढ़ कर न होने पावे। यही इच्छा बढ़ कर द्वेष में परिवर्त्तित हो जाती है और तब उस दूसरे व्यक्ति का अनिष्ट, न कि केवल उसी विषय में बल्कि प्रत्येक विषय में वांछित हो जाता है। वैर और द्वेष में अन्तर यह है कि वैर अपनी किसी वास्तविक हानि के प्रतिकार में होता है, पर द्वेष अपनी किसी हानि के कारण वा लाभ की आशा से नहीं किया जाता।

यह बात ध्यान देने की है कि ईर्षा व्यक्तिविशेष से होती है। यह नहीं होता कि जिस किसीको ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से सम्पन्न देखा उसी से ईर्षा हो गई। ईर्षा उन्हीं से होती है जिनके विषय में यह धारणा होती है कि लोगों की दृष्टि हमारे साथ साथ उन पर भी अवश्य पड़ेगी वा पड़ती होगी। अपने से दूरस्थ होने के कारण अपने साथ साथ जिन पर ध्यान जाने का निश्चय नहीं होता उनके प्रति ईर्षा नहीं उत्पन्न होती। काशी में रहनेवाले किसी धनी को अमेरिका के किसी धनी की बात सुन कर ईर्षा नहीं होगी। हिन्दी के किसी कवि को इटली के किसी कवि का महत्त्व सुन कर ईर्षा नहीं होगी। सम्बन्धियों, बाल-सखाओं, सहपाठियों और पड़ोसियों के बीच ईर्षा का विकाश अधिक देखा जाता है। लड़कपन से जो दो आदमी एक साथ उठते बैठते देखे गए हैं उन्हींमें से कोई एक दूसरे की बढ़ती से जलता हुआ भी पाया गया है। यदि दो साथियों में से कोई किसी अच्छे पद पर पहुँच गया तो वह इस उद्योग में देखा जाता है कि दूसरा किसी अच्छे पद पर न पहुँचने पावे। प्रायः अपनी उन्नति के गुप्त बाधकों का पता लगाते लगाते लोग अपने किसी बड़े पुराने मित्र तक पहुँच जाते हैं। जिस समय संसर्ग-सूत्र में बाँध कर हम औरों को अपने साथ एक पंक्ति में खड़ा करते हैं उस समय सहानुभूति, सहायता आदि की सम्भावना आरोपित होने के साथही साथ ईर्षा और द्वेष की सम्भावना की नीवँ भी पड़ जाती है। अपने किसी आचरण से हम भलाई ही भलाई की सम्भावना का सूत्रपात करें और इस प्रकार भविष्य के अनिश्चय में बाधा डालें यह कभी हो नहीं सकता। भविष्य की अनिश्चयात्मकता अटल और अजेय है, अपनी लाख विद्या बुद्धि से भी हम उसे बिलकुल हटा नहीं सकते।

अब ध्यान देने की बात यह निकली कि ईर्षा के सञ्चार के लिए ईर्षा करनेवाले और ईर्षा के पात्र के अतिरिक्त स्थिति पर ध्यान देनेवाले समाज की भी आवश्यकता है। इसी समाज की धारणा पर प्रभाव डालने के लिए ही ईर्षा की जाती है, ऐश्वर्य्य, गुण वा मान का, गुप्त रूप से बिना किसी समुदाय को विदित कराए, सुख वा सन्तोष भोगने के लिए नहीं। ऐश्वर्य्य वा गुण में हम चाहे किसी व्यक्ति से वस्तुतः बढ़ कर वा उसके तुल्य न हों, पर यदि समाज की यह धारणा है कि हम उससे बढ़ कर वा उसके तुल्य हैं तो हम संतुष्ट रहेंगे, ईर्षा का घोर कष्ट न उठाने जाँयगे। कैसी अनोखी बात है कि वस्तु की प्राप्ति से वञ्चित रह कर भी हम समाज की धारणामात्र से सन्तुष्ट होते हैं! ईर्षा सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है। इसके प्रभाव से हम दूसरे की बढ़ती से अपनी कोई वास्तविक हानि न देख कर भी व्यर्थ दुखी होते हैं। समाज के संघर्ष से जो अवास्तविकता उत्पन्न होती है वह हम पर प्रभाव डालने में वास्तविकता से कम नहीं। वह हमें सुखी भी कर सकती है, दुखी भी। फ़ारसी मसल है "मर्गे अंबोह जशने दारद"। हम किसी कष्ट में हैं इसी बीच में कोई दूसरा व्यक्ति हम से अपना भी वही कष्ट वर्णन करने लगता है तो हमारे मुँह पर कुछ हँसी आ जाती है और हम कुछ आनंदित होकर कहते हैं "भाई! हम भी तो इसी बला में गिरफ़्तार हैं"। यदि दस पाँच आदमी वही

कष्ट बतलानेवाले मिलें तो हमारी हँसी कुछ बढ़ भी जाती है। एक बार किसी ने अपने सम्बन्धी के मरने पर एक विद्वान् से पूछा कि "हम धैर्य्य कैसे धारण करें ?" उसने कहा कि थोड़ी देर के लिए सोचो कि इसी संसार में लाखों अनाथ इधर उधर ठोकर खा रहे हैं, लाखों बच्चे बिना मा बाप के हो रहे हैं, लाखों विधवाएँ आँसू बहा रही हैं। यदि हमें कोई कष्ट है तो क्या दूसरों को भी उसी कष्ट में देख कर थोड़ी देर के लिए हमारा वह कष्ट वास्तव में कुछ घट जाता है ? यदि नहीं घटता है तो यह हँसी कैसी, यह धैर्य्य कैसा ? यह हँसी केवल स्थिति के मिलान पर निर्भर है, जिससे अपनी स्थिति के विशेषत्व का परिहार होता है। यह समाज-शक्ति का एक गुण है कि कभी कभी स्थिति के बने रहने पर भी उसके विशेषत्व के परिहार से तत्सम्बन्धी भावना में अंतर पड़ जाता है। पर यह अंतर ऐसा ही है जैसे रोते रोते सो जाना वा फोड़ा चिराते समय क्लोरोफ़ार्म सूँघ लेना।

समाज में पड़ते ही मनुष्य देखने लगता है कि उसकी स्थिति दोहरी हो गई है। वह देखता है कि "मैं यह हूँ" और "मैं यह समझा जाता हूँ"। इस दोहरेपन से उसका सुख भी दोहरा हो जाता है और दुःख भी। 'मैं बड़ा हूँ' इस निश्चय के साथ एक यह निश्चय और जुड़ जाने से कि 'मैं बड़ा समझा जाता हूँ' मनुष्य के आनन्द वा सुख के अनुभव में वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'मैं क्षुद्र हूँ' इस धारणा के साथ 'मैं क्षुद्र समझा जाता हूँ' इस धारणा के योग से दुःख के अनुभव की वृद्धि होती है। इस प्रकार स्थिति के एकान्त और सामाजिक दो विभाग हो जाने से कोई तो दोनों विभागों पर दृष्टि रख सकते हैं और कोई एक ही पर। शक्ति और प्रतिभा सम्पन्न मनुष्य पहले यह प्रयत्न करते हैं कि 'हम ऐसे हों'। फिर वैसे हो जाने पर यदि आवश्यक हुआ तो यह प्रयत्न भी करते हैं कि 'हम ऐसे समझे जाँय'। इन दोनों के प्रयत्न जुदे जुदे हैं। संसार में शक्ति-सम्पन्न सब नहीं होते, इससे बहुत से लोग स्थिति के पहले विभाग के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता है उनमें अपने को असमर्थ देख दूसरे ही विभाग से किसी प्रकार अपना सन्तोष करना चाहते हैं और उसी पर दृष्टि रख कर प्रयत्न करते हैं। ईर्षा ऐसे लोगों के हृदय में बहुत जगह पाती है और उनके प्रयत्नों में सहायक भी होती है। भाव-परिवर्तन आदि के बल से जिस समुदाय के प्राणी परस्पर ऐसे सन गए हैं कि अपने इन्द्रियानुभव और भावनाओं तक को जवाब देकर दूसरों के इन्द्रियानुभव और भावनाओं द्वारा निर्वाह कर सकते हैं उसी में ईर्षा का विकाश हो सकता है। अतः ईर्षा का अनन्य अधिकार मनुष्य जाति ही पर है। एक कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते को कुछ खाते देख उसे स्वयं खाने की इच्छा कर सकता है, पर वह यह नहीं चाह सकता कि चाहे हम खाँय या न खाँय वह दूसरा कुत्ता न खाने पावे। दूसरे कुत्तों की दृष्टि में हमारी स्थिति कैसी है, इसकी चिन्ता उस कुत्ते को न होगी।

अपने विषय में दूसरों के चित्त में अच्छी धारणा उत्पन्न करने का प्रयत्न अच्छी बात है। इस प्रयत्न को जो बुरा रूप प्राप्त होता है वह असत्य के समावेश के कारण—दूसरों की धारणा की अवास्तविकता और अपनी स्थिति की सापेक्षकता के कारण। जब हम अपने विषय में दूसरों की झूठी धारणा और अपनी स्थिति के सापेक्षिक रूप मात्र से सन्तोष करना चाहते हैं तभी बुराइयों के लिए जगह होती है और ईर्षा की राह खुलती है। जैसी स्थिति हमारी नहीं है, जैसी स्थिति प्राप्त करने की योग्यता हममें नहीं है, हम चाहते हैं कि लोग हमारी वैसी स्थिति समझें। जैसी स्थिति से वास्तव में हमें कोई सुख नहीं है वैसी स्थिति किसी दूसरे के समान वा दूसरे से अच्छी स्वयं समझने से नहीं बल्कि दूसरों के द्वारा समझी जाने से ही हम सन्तोष करते हैं। ऐसे असत्य आरोपों के बीच यदि ईर्षा ऐसी असार वृत्ति का उदय हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद यह धारणा हो सकती है कि ईर्षा अप्राप्त वस्तु ही के

लिए होती है। पर यह बात नहीं है। हमारे पास जो वस्तु है उसे भी दूसरे के पास देख कर कभी कभी हमें बुरा लगता है, हम दुखी होते हैं। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि एक ऊँची जाति का आदमी किसी नीच जाति के आदमी को अपने ही समान वस्त्र आदि पहने देख बुरा मानता और कुढ़ता है। इसका कारण यह स्थायी बुद्धि वा अहंकार है कि 'हम ऊँचे हैं वह नीचा है, हम बड़े हैं वह छोटा है'। मर्य्यादावादी लोग शायद इसे श्रेणी के नियम का पालन कहेंगे। वे कहेंगे कि यदि कोई नीच है तो नीच की वर्दी में आवे, ग़रीब है तो ग़रीब की वर्दी में आवे। चाहे कोई कुछ कहे, पर इस प्रकार का भाव अहंकार ही है। समाज में यह भाव प्रकट करने के स्थान पर कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उससे श्रेष्ठ है जो दूसरा करता है' यह भाव प्रकट करना अधिक कल्याण-कर और सन्तोष-विधायक है कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उस कार्य्य से केवल भिन्न है जो दूसरा करता है।' न्यायाधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। न्यायाधीश ईंटें जोड़ना नहीं जानता, कारीगर न्याय करना नहीं जानता। समाज-कल्याण के विचार से न्यायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि 'हम तुमसे बड़े हैं, हमारा काम तुमसे श्रेष्ठ है'। जिस जाति में इस छोटाई बड़ाई का अभिमान जगह जगह जम कर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न भिन्न वर्गों के बीच स्थायी ईर्षा स्थापित हो जाती है और संयुक्त शक्ति का विकाश बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। यदि समाज में उन कार्यों की, जिनके द्वारा भिन्न भिन्न प्राणी जीवन-निर्वाह करते हैं, परस्पर छोटाई बड़ाई का ढिँढोरा न पीटा जाय, बल्कि उनकी विभिन्नता ही स्वीकार की जाय तो बहुत सा असन्तोष दूर हो जाय, राजनैतिक स्वत्व की आकांक्षा से स्त्रियों को पुरुषों की हद में न जाना पड़े, सब पढ़े लिखे आदमियों को सरकारी नौकरियों ही के पीछे न दौड़ना पड़े। जहाँ इस छोटाई बड़ाई का भाव बहुत प्रचार पा जाता है और जीवन-व्यवहारों में निर्दिष्ट और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है वहाँ लोगों की शक्तियाँ केवल कुछ विशेष विशेष स्थानों की ओर प्रवृत्त होकर उन उन स्थानों पर इकट्ठी होने लगती हैं और समाज के कार्य्य-विभाग का क्रम खंडित हो जाता है अर्थात् कुछ विभाग सूने पड़ जाते हैं और कुछ आवश्यकता से अधिक भर जाते हैं जैसा कि आजकल इस देश में देखा जा रहा है। यहाँ कृषि, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य आदि की ओर तब तक पढ़े लिखे लोग ध्यान न देंगे जब तक कुछ पेशों और नौकरियों की शान लोगों की नज़रों में समाई रहेगी। इस प्रकार की शान प्रायः किसी शक्ति के अनुचित प्रयोग में अधिक समझी जाती है। कोई पुलिस का कर्मचारी जब अपने पद का अभिमान प्रकट करता है तब यह नहीं कहता कि 'मैं जिस बदमाश को चाहूँ पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। बल्कि यह कहता है कि 'मैं जिसको चाहूँ उसको पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। अधिकार-सम्बन्धी अभिमान अनौचित्य की सामर्थ्य का अधिक होता है। यदि अधिकार के अनुचित उपयोग की सम्भावना दूर कर दी जाय तो स्थान स्थान पर अभिमान की जमी हुई मैल साफ़ हो जाय और समाज के कार्य्य-विभाग चमक जाँय। यदि समाज इस बात की पूरी चौकसी रक्खे कि पुलिस के अफ़सर उन्हीं लोगों को कष्ट दे सकें जो दोषी हैं, माल के अफ़सर उन्हीं लोगों को क्षतिग्रस्त कर सकें जो कुछ गड़बड़ करते हैं, तो उन्हें शेष लोगों पर जो निर्दोष हैं, जिनका मामला साफ़ है और जिनसे हर घड़ी काम पड़ता है, अभिमान प्रकट करने का अवसर कहाँ मिल सकता है? जब तक किसी कार्य्यालय में छोटे से बड़े तक सब अपना अपना नियमित कार्य्य ठीक ठीक करते हैं तब तक एक के लिये दूसरे पर अपनी बड़ाई प्रकट करने का अवसर नहीं आता है, पर जब कोई अपने कार्य्य में त्रुटि करता है तब उसका अफ़सर उसे दंड देकर अपनी बड़ाई वा अधिक सामर्थ्य दिखाता है। सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त

७

करने ग्रैार दूसरे को नम्र करने की सामर्थ्य का नाम है। अधिकार की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त करने की सामर्थ्य है ग्रैार धन वा गुण की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को नम्र करने की सामर्थ्य है। इससे विदित हुग्रा कि यह छोटाई बड़ाई हर समय तमाशा दिखाने के लिये नहीं है, बल्कि ग्रवसर पड़ने पर संशोधन वा शिक्षा के लिये है। किसी ग्रवध के तग्रल्लुक़ेदार के लिये बड़ाई का यह स्वाँग दिखाना ग्रावश्यक नहीं है कि वह जब मन में ग्रावे तब कामदार टोपी सिर पर रख, हाथी पर चढ़ ग़रीबों को पिटवाता चले। किसी दिहाती थानेदार के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि वह सिर पर लाल पगड़ी रख गँवारों को गाली देकर हर समय ग्रपनी बड़ाई का ग्रनुभव करता ग्रैार कराता रहे। ग्रभिमान एक व्यक्तिगत गुण है, उसे समाज के भिन्न भिन्न व्यवसायों के साथ जोड़ना ठीक नहीं। समाज में स्थान स्थान पर ग्रभिमान के ग्रजायबघर स्थापित होना ग्रच्छा नहीं। इस बात का ध्यान रखना समाज का कर्त्तव्य है कि धर्म ग्रैार राजबल से प्रतिष्ठित संस्थाग्रों के ग्रंतर्गत ग्रभिमानालय ग्रैार ख़ुशामदख़ाने न खुलने पावें।

इसी प्रकार किसी बड़े धनी वा गुणी का यह हर घड़ी का एक काम न हो जाना चाहिए कि वह ग्रैारों के धन वा गुण से ग्रपने धन वा गुण का मिलान किया करे ग्रैार ग्रपनेसे कम धनी वा गुणी लोगों से ग्रपनी श्रेष्ठता देख दिखाकर संतोष किया करे। इस प्रकार सन्तोष करना वस्तु को छोड़ छाया पर सन्तोष करना है। इस प्रकार के सन्तोष का सुख मनुष्य के लिये स्वाभाविक है पर वह ऐसे ही ग्रवसरों तक के लिए निर्दिष्ट है, जब किसी त्रुटि का संशोधन हो, कठिनता का निराकरण हो वा ग्रावश्यकता की पूर्त्ति हो। उसे ऐसे ग्रवसरों के ग्रतिरिक्त ग्रैार ग्रवसरों में घसीटना बुराई है। कई ग्रादमी किसी रास्ते के पत्थर को हटाने में लगे हैं ग्रैार वह नहीं हिलता है। एक दूसरा ग्रादमी ग्राकर ग्रकेले उस पत्थर को हटा कर फेंक देता है। उस समय उसे ग्रपने को बल में ग्रैारों से बढ़ कर देख संतोष ग्रैार ग्रानन्द होगा ग्रैार शेष लोग भी उसके कृत्य से प्रभावित रहने के कारण उस समय उसके इस सापेक्षिक ग्रानन्द वा ग्रानन्द-प्रदर्शन से कुढ़ेंगे नहीं, बल्कि कुतूहल-युक्त होंगे ग्रैार शायद कुछ शिक्षा भी ग्रहण करेंगे। पर यदि उसे इस बड़ाई के ग्रानन्द का चसका लग जायगा ग्रैार वह हर घड़ी उसका ग्रनुभव करना चाहेगा, उसे प्रकट किया करेगा तो यह एक प्रकार का दुर्व्यसन हो जायगा ग्रैार ग्रहंकार के नाम से पुकारा जायगा। फिर उसके चित्त में ग्रपने चारों ग्रोर ग्रपनेसे घट कर धन, मान, गुण वा बल देखने की स्थायी इच्छा स्थापित हो जायगी ग्रैार जो वस्तु उसे प्राप्त है उसे भी दूसरों को प्राप्त करते देख उसे कुढ़न वा ईर्षा होगी। उसके ग्रहंकार से ग्राहत होकर दूसरे लोग भी उसकी उन्नति न देखना चाहेंगे ग्रैार उससे एक प्रकार की उचित ईर्षा रक्खेंगे। इस प्रकार ईर्षा की ग्रच्छी खेती होगी। सारांश यह कि ग्रभिमान हर घड़ी बड़ाई भोगने का दुर्व्यसन है ग्रैार ईर्षा उसकी सहगामिनी है। इस बड़ाई के ग्रनुभव को भोगने का जिसे दुर्व्यसन हो जाता है उसके लिये उन्नति का द्वार बंद सा हो जाता है। उसे हर घड़ी ग्रपनी बड़ाई ग्रनुभव करते रहने का नशा हो जाता है, इससे उसकी सामग्री के लिये वह सदा ग्रपनेसे घट कर लोगों की ग्रोर दृष्टि डाला करता है ग्रैार ग्रपने से बड़े लोगों की ग्रोर नशा मिट्टी होने के भय से देखने का साहस नहीं करता। ऐसी ग्रवस्था में वह उन्नति की उत्तेजना ग्रैार शिक्षा से वञ्चित रहता है। इसीसे ग्रभिमान को 'मद' भी कहते हैं। दुर्व्यसन किसी प्रकार का हो, मद है।

यह तो कहा ही जा चुका है कि ईर्षा दूसरे की ग्रसम्पन्नता की इच्छा की ग्रपूर्त्ति है। ऐसी इच्छा यदि किसी हानि के बदले में ग्रथवा हानि की ग्राशंका से हो तो वह शुद्ध ईर्षा नहीं है। किसी दूसरे से हानि उठा कर उसकी हानि की ग्राकांक्षा करना केवल बुराई का बुराई से जवाब देना है ग्रैार क्रोध

वा वैर के अन्तर्गत है। इसी प्रकार यदि किसी की सम्पन्नता से हमें क्लेश वा हानि की आशंका है और हम उसकी ऐसी सम्पन्नता की अनिच्छा वा उसका दुःख करते हैं तो केवल अपना बचाव करते हैं—आजकल के शब्दों में अपनी रक्षा के स्वत्व का उपयोग करते हैं। यदि हम किसी अन्यायी को कोई अधिकार पाते देख कुढ़ते हैं तो केवल अपने वा समाज के बचाव की तैयारी करते हैं, ईर्षा नहीं करते। यदि हमें निश्चय है कि हमारा कोई मित्र इतना घमंडी है कि जो उसे किसी वस्तु की प्राप्ति होगी तो वह हमसे ऐँठ दिखा कर हमारा अपमान करेगा, तो हमारा यह चाहना कि वह मित्र वह वस्तु न पावे अथवा इस बात पर दुखी होना कि वह मित्र वह वस्तु पा गया, ईर्षा नहीं बचाव की चिन्ता है। इसीसे अभिमानियों से ईर्षा करने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। लोग इस अधिकार का उपयोग भी ख़ूब करते हैं। क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, क्या व्यवहार में, मानवजीवन के सब विभागों में इस अधिकार का उपयोग होते देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि अच्छे से अच्छे लेखकों के गुणों पर, उनके अभिमान से आहत लोगों के प्रयत्न वा उदासीनता से, बहुत दिनों तक परदा पड़ा रहा है और वे ज़िंदगी भर भवभूति के इस वाक्य पर संतोष किए बैठे रहे हैं—

"उत्पात्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

अभिमान-ग्रस्त गुण को लोग देख कर भी नहीं देखते हैं। अभिमानी स्वयं अंधा हो कर दूसरों की आँखें भी फोड़ता है। न उसे दूसरों के उत्कृष्ट गुण की ओर ताकने का साहस होता है और न दूसरों को उसके गुण को स्वीकार करने की उत्कंठा होती है। अभिमान दोनों ओर ज्ञान का निषेध करता है। अतः जिस प्रकार अभिमान न करना श्रेष्ठ गुण है उसी प्रकार दूसरे के अभिमान को देख क्षुब्ध न होना भी श्रेष्ठ गुण है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ईर्षा दूसरे की किसी वस्तु की प्राप्ति वा प्राप्ति की सम्भावना से उत्पन्न दुःख है, चाहे वह वस्तु हमें प्राप्त हो वा न हो। अतः ईर्षा धारण करनेवालों के दो रूप होते हैं, एक असम्पन्न और दूसरा सम्पन्न। असम्पन्न रूप वह है जिसमें ईर्षा करनेवाला दूसरे को ऐसी वस्तु प्राप्त करते देख दुखी होता है जो उसके पास नहीं है। ऐसे दुःख में आलस्य वा असामर्थ्य से उत्पन्न प्राप्ति की निराशा, दूसरे की प्राप्ति से अपनी सापेक्षिक छोटाई का बोध, दूसरे की असम्पन्नता की इच्छा, और अंत में इस इच्छा की अपूर्त्ति के मूर्त्तिमान् कारण उस दूसरे व्यक्ति पर एक प्रकार का मीठा क्रोध, इतने भावों का मेल रहता है। किसी वस्तु को हम नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरा उसी को प्राप्त करता है। हम समझते हैं कि लोगों की दृष्टि जब हमारी स्थिति पर पड़ती होगी तब उसकी स्थिति पर भी पड़ती होगी। इससे उनकी दृष्टि में हमारी स्थिति अवश्य कुछ न्यून जँचती होगी। अस्तु, स्थिति की समानता के लिए हम चाहते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को न प्राप्त करता वा खो देता। पर वह दूसरा व्यक्ति जीता जागता प्रयत्नवान् प्राणी होने के कारण उसे प्राप्त करता वा रक्षित रखता है। इससे हमारी इच्छा-पूर्त्ति में बाधा होती है और हम बाधक के ऊपर मन ही मन चिड़चिड़ाते हैं। ईर्षा में क्रोध का भाव किस प्रकार मिला रहता है इसका प्रमाण बराबर मिलता रहता है। दूसरे व्यक्ति को किसी वस्तु से सम्पन्न देख यदि कोई उससे ईर्षा करता है तो केवल यही नहीं होता कि वह उसी वस्तु को उससे अलग करके वा अलग करने का प्रयत्न करके सन्तोष कर ले, बल्कि वह उस सम्पन्न व्यक्ति को अवसर पाने पर, बिना किसी अन्य कारण के, कुवाक्य भी कह बैठता है। जी दुखाने का यह प्रयत्न बिना किसी प्रकार के क्रोध के नहीं हो सकता। इसी कारण जैसे 'क्रोध से जलना' कहा जाता है वैसे ही 'ईर्षा से जलना' भी कहा जाता है। अब यहाँ पर लगे हाथों यह भी देख लेना चाहिए कि यह क्रोध है किस प्रकार का। यह क्रोध बिलकुल जड़ क्रोध है। जिसके प्रति ऐसा क्रोध किया जाता है उसके मानसिक उद्देश्य की ओर

नहीं ध्यान दिया जाता। यदि हम असावधानी से दौड़ते समय किसी सोए आदमी से टकरा कर उस पर बिगड़ने लगें, या रास्ते में पत्थर की ठोकर खा कर उसे चूर चूर करने पर उतारू हों तो हमारा यह क्रोध जड़ क्रोध होगा; क्यों कि हमने यह विचार नहीं किया कि क्या वह आदमी हमें ठोकर खिलाने के लिए ही सोया था, या वह पत्थर हमारे पैर में लगने के ही नामाक़ूल इरादे से वहाँ आ पड़ा था। यदि हमारे पास कोई वस्तु नहीं है और दूसरा उसे प्राप्त करता है तो वह इस उद्देश्य से नहीं प्राप्त करता कि उससे हम अपनी हेठी समझ कर दुखी हों और हमारी इच्छापूर्त्ति में बाधा पड़े। यह दूसरी बात है कि पीछे से यह मालूम करके भी कि उसकी प्राप्ति से हम अपनी हेठी समझ समझ कर बेचैन हो रहे हैं, वह हमारे दुःख में सहानुभूति न करे और उस वस्तु को लिए आनन्द से कान में तेल डाले बैठा रहे। प्रायः तो ऐसा होता है कि किसी वस्तु को प्राप्त करनेवाले मनुष्य को पहले यह ख़्याल भी नहीं होता कि उसकी प्राप्ति से किन किन महाशयों की मानहानि हो रही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईर्षा धारण करने वालों के दो रूप होते हैं, असम्पन्न और सम्पन्न। असम्पन्न रूप का दिग्दर्शन तो ऊपर हो चुका। सम्पन्न रूप वह है जिसमें जो वस्तु हमें प्राप्त है उसे दूसरे को भी प्राप्त करते देख हमें दुःख होता है। असम्पन्नता में दूसरे को अपने से बढ़ कर होते देख दुःख होता है, सम्पन्नता में दूसरे को अपने बराबर होते देख दुःख होता है। असम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से घट कर न रहें, बराबर रहें और सम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से बढ़ कर रहें, उसके बराबर न रहें। सम्पन्न ईर्षा में आकांक्षा बढ़ी चढ़ी होती है, इससे उसका अनौचित्य भी बढ़कर होता है। असम्पन्न ईर्षा वाला केवल अपने को नीचा समझे जाने से बचाने के लिए आकुल रहता है, पर सम्पन्न ईर्षावाला दूसरे को नीचा समझते रहने के लिए आकुल रहता है। असम्पन्न ईर्षा में निराशा का भाव और अपनी कमी का दुःख मिला रहता है, इससे उसकी कलुषता उतनी गहरी नहीं जान पड़ती। निराश और अभाव-पीड़ित मनुष्य जैसे इधर उधर भूलता भटकता फिरता है वैसे ही ईर्षा की राह में भी जा पड़ता है। पर सम्पन्न ईर्षालु की स्थिति ऐसी क्षोभ-कारिणी नहीं होती। हमारा कोई साथी है जो किसी वस्तु में हम से कम है। उसकी कमी और अपनी बड़ाई देख दिखा कर हर घड़ी प्रसन्न होने का हमें दुर्व्यसन हो गया है। इसी बीच उसको भी वह वस्तु प्राप्त हो जाती है और हमें जान पड़ता है कि हमारी स्थिति जो सापेक्षिक थी मारी गई। अपने आनन्द में इस प्रकार बाधा पड़ते देख हम अपने साथी की उस प्राप्ति से दुखी होते हैं और मन ही मन उस पर कुढ़ते भी हैं। साथी को बहुत दिनों तक तो इसका पता ही नहीं चलता, पीछे पता चलने पर भी वह हमारे इस दुःख में कुछ भी सहानुभूति नहीं करता। हमारी कुप्रवृत्ति का कारण बिना अवसर के हर घड़ी बड़ाई का अनुभव वा स्थिति की सापेक्षिकता का सुख भोगने की लत है। किसी स्थिति की वास्तविकता पर मुख्य और सापेक्षिकता पर गौण दृष्टि रखनी चाहिए। सापेक्षिकता नज़र का खेल है और कुछ नहीं। यदि हमें पेट भर अन्न नहीं मिलता है, पर लोग समझते हैं कि हम अपने किसी साथी से अच्छे वा धनी हैं तो लोगों की इस धारणा से हमारा पेट नहीं भर सकता। लोगों की इस धारणा से आनन्द होता है, पर वह उस आनंद का शतांश भी नहीं है जो वास्तविक स्थिति के अन्य प्रभावों से प्राप्त होता है। अतः स्थिति के और वास्तविक आनन्दों को छोड़ इस छाया-रूपी आनन्द पर मुख्य रूप से ध्यान रखना प्रमाद और स्थिति की रक्षा का बाधक है। यदि हम किसी वस्तु के वास्तविक रूपों की ओर ध्यान रख आवश्यक प्रयत्न न करते रहेंगे तो उसकी सँभाल नहीं कर सकते।

कभी कभी ऐसा होता है कि लोगों की धारणा का कुछ मूल्य होता है, अर्थात् उससे कोई वास्तविक

स्थिति प्राप्त होती है। जैसे, यदि किसी गाँव में मूर्ख और विद्वान् दो वैद्य हैं तो लोग दूसरे को अधिक निपुण समझ उसके पास अधिक जाँयगे और उसकी आमदनी अधिक होगी। अब यदि पहला वैद्य भी परिश्रम करके वैद्यक पढ़ लेगा और लोगों की यह धारणा हो जायगी कि यह भी विद्वान् है तो उस दूसरे वैद्य की आमदनी कम हो जायगी। ऐसी अवस्था में उस दूसरे वैद्य का पहले वैद्य की उन्नति से कुढ़ना शुद्ध ईर्षा नहीं, हानि का दुःख वा झुँझलाहट है। ईर्षा निःस्वार्थ होनी चाहिए।

ईर्षा का दुःख प्रायः निष्फल ही जाता है। अधिकतर तो जिस बात की ईर्षा होती है वह ऐसी बात होती है जिस पर हमारा वश नहीं होता। जब हम में अपनी ही स्थिति में अनुकूल परिवर्त्तन करने की सामर्थ्य नहीं है तब हम दूसरे की स्थिति में कहाँ तक परिवर्त्तन कर सकते हैं। जितनी जानकारी हमें अपनी स्थिति से हो सकती है उतनी दूसरे की स्थिति से नहीं। किसी स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए उसके अंग प्रत्यंग का परिचय आवश्यक होता है। पर कभी कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जिनमें ईर्षा की तुष्टि का साधन सुगम होता है। जैसे यदि किसी आदमी को किसी दूसरे से कुछ लाभ पहुँचने वाला होता है वा पहुँचता होता है तो हम उस दूसरे से उसकी कुछ बुराई कर आते हैं और उसे उस लाभ से वञ्चित कर देते हैं। पर हमारी यह सफलता निरापद नहीं। यदि वञ्चित व्यक्ति को हमारी कार्रवाई का पता लग गया तो वह क्रुद्ध होकर हमारी हानि करने के लिए हमसे अधिक वेग के साथ यत्न करेगा। हमने तो केवल ज़रा सा जाकर ज़बान हिलाने का कष्ट उठाया था पर वह हमारी हानि करने के लिए पूरा परिश्रम करेगा। ईर्षा में प्रयत्नोत्पादिनी शक्ति बहुत कम होती है। उसमें वह वेग नहीं होता जो क्रोध आदि में होता है, क्योंकि आलस्य और नैराश्य के आश्रय से तो उसकी उत्पत्ति ही होती है। जब आलस्य और नैराश्य के कारण अपनी उन्नति के हेतु प्रयत्न करना तो दूर रहा, हम अपनी उन्नति का ध्यान तक अपने मन में नहीं ला सकते तभी हम हार कर दूसरे की स्थिति की ओर बार बार देखते हैं और सोचते हैं कि यदि उसकी स्थिति ऐसी न होती तो हमारी स्थिति जैसी है वैसी ही रहने पर भी बुरी न दिखाई देती। अपनी स्थिति को ज्यों की त्यों रख सापेक्षिकता द्वारा सन्तोष लाभ करने का ढीला यत्न आलस्य और निराशा नहीं तो और क्या है? जो वस्तु उज्वल नहीं है उसे मैली वस्तु के पास रख कर हम उसकी उज्वलता से कब तक और कहाँ तक सन्तोष कर सकते हैं? जो अपनी उन्नति के प्रयत्न में बराबर लगा रहता है उसे न तो निराशा होती है और न हर घड़ी दूसरे की स्थिति से अपनी स्थिति के मिलान करते रहने की फ़ुरसत। ईर्षा की सबसे अच्छी दवा है उद्योग और आशा। जिस वस्तु के लिए उद्योग और आशा निष्फल हो उस पर से अपना ध्यान हटा कर सृष्टि की अनन्तता से लाभ उठाना चाहिए।

जिससे ईर्षा की जाती है उस पर उस ईर्षा का क्या प्रभाव पड़ता है यह भी देख लेना चाहिए। ईर्षा अनावर्ती मनोवेग है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी मनुष्य को अपने से ईर्षा करते देख हम भी उसके बदले में ईर्षा नहीं करने लगते। दूसरे को ईर्षा करते देख हम उससे घृणा करते हैं। दूसरे की ईर्षा का फल भोग हम उससे क्रोध करते हैं, जिसमें अधिक अनिष्ट-कारिणी शक्ति होती है। अतः ईर्षा एक ऐसी बुराई है जिसका बदला यदि मिलता है तो कुछ अधिक ही मिलता है। इससे इस बात का आभास मिलता है कि व्यवस्थापक सर्वात्मा के क़ानून में ईर्षा एक पाप वा जुर्म है। अपराधी ने अपने अपराध से जितना कष्ट दूसरे को पहुँचाया, अपराधी को भी केवल उतना ही कष्ट पहुँचाना सामाजिक न्याय नहीं है, अधिक कष्ट पहुँचाना न्याय है; क्योंकि निरपराध व्यक्ति की स्थिति को अपराधी की स्थिति से अच्छा दिखलाना न्याय का काम है।

ईर्षा अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है। वह अपने धारणकर्त्ता स्वामी के सामने भी मुँह खोल कर

नहीं आती। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी धारणकर्त्ता उसका हरम की बेगमों से अधिक परदा करता है। वह कभी प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने नहीं आती। उसका कोई बाहरी लक्षण धारणकर्त्ता पर नहीं दिखाई देता। क्रोध में आँखें लाल होां, भय में आकुलता हो, घृणा में नाक भी सिकुड़े, करुणा में आँसू आवे, पर ईर्षा में शायद ही कभी असावधानी से ठंडी साँस निकल जाय तो निकल जाय। ईर्षा इतनी कुत्सित वृत्ति है कि सभा समाज में, मित्रमंडली में, परिवार में, एकान्त कोठरी में, कहीं भी स्वीकार नहीं की जाती। लोग अपना क्रोध स्वीकार करते हैं, भय स्वीकार करते हैं, घृणा स्वीकार करते हैं, लोभ स्वीकार करते हैं, पर ईर्षा का नाम कभी मुँह पर नहीं लाते; ईर्षा से उत्पन्न अपने कार्य्यों को दूसरी मनोवृत्तियों के सिर मढ़ते हैं। यदि हमें ईर्षा के कारण किसी की प्रशंसा अच्छी नहीं लग रही है तो हम बड़ी गंभीरता और सज्जनता प्रकट करते हुए उसके दोषों और त्रुटियों का निदर्शन करते हैं। वैर ऐसी बुरी वृत्ति तक कभी कभी ईर्षा को छिपाने का काम दे जाती है।

—:o:—

जम्बू-राजवंश।

सन् ६६७ (विक्रमी सम्वत् ७२४) में राजा विक्रमपाल ने दिल्ली के महाराज राय तालूक पर चढ़ाई की थी। उस समय जम्बू के राजा कीर्त्तिधर ने एक बड़ी सेना साथ लेकर राय तालूक की सहायता की थी। युद्ध में राजा विक्रमपाल मारा गया और राय तालूक विजय प्राप्त करके १४४ राज्यों का सम्राट् बना। उसी समय से दिल्ली-पति और कीर्त्तिधर में बड़ी मित्रता हो गई और वे परस्पर एक दूसरे के सहायक बन गये। कीर्त्तिधर ने ६० वर्षों तक बड़ी उत्तमता से राज्य किया। उसके बाद क्रम से उसका पुत्र अजयधर, पौत्र विजयधर और प्रपौत्र वज्रधर जम्बू का राजा हुआ। इन तीनों ने सब मिला कर १६२ वर्ष तक राज्य किया था। वज्रधर के पुत्र सूर्य्यदेव ने राज्याधिकार पाकर न्याय, शासन आदि सात विभाग बनाये थे और प्रत्येक विभाग के लिए एक अलग मन्त्री नियत किया था। वह एक दिन में केवल एक विभाग का कार्य्य देखता था और इस प्रकार एक सप्ताह में सब विभागों की देखरेख हो जाया करती थी। उसके ७२ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका पुत्र भोजदेव राजा हुआ, जिसने ६६ वर्षों तक राज्य किया। भोजदेव के चार पुत्र थे, पर राज्य उनमें से सबसे बड़े करणदेव को मिला था। इसी प्रकार कई पीढ़ियों तक राज्य चलने के बाद राजा भोजदेव द्वितीय राजा हुआ। वह बहुत बुद्धिमान् और अच्छा राजनीतिज्ञ था। भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े महाराजाओं से, विशेष कर पंजाब-पति महाराज जयपाल से उसकी बहुत मित्रता थी।

सन् ९७५ (संवत् १०३२) में ग़ज़नी के बादशाह नसीरुद्दीन सुबक्तगीन ने भारत पर चढ़ाई करने का विचार किया। इससे पूर्व उसने क़ाबुल के अनेक प्राचीन हिन्दू निवासियों को मरवा डाला था। महाराज जयपाल ने नसीरुद्दीन के मुक़ाबले के लिए राजपूतों की बहुत बड़ी सेना एकत्र की थी, जिसमें भोजदेव ने भी बहुत अधिक सहायता दी थी। अपने पुत्र अवतारदेव पर राजकार्य्य छोड़कर भोजदेव स्वयं युद्ध में गया था और वहीं वह मारा गया था। तब से अवतारदेव पर जयपाल और भी अधिक कृपा रखने लगा। नसीरुद्दीन की मृत्यु के बाद उसके पुत्र महमूद (ग़ज़नवी) ने सन् १००० (सं० १०५७) में भारत पर आक्रमण किया। उस समय भी जयपाल ने जम्बू-राज की सहायता से उसका मुक़ाबला किया; लेकिन उसमें उसे सफलता न हुई और उसका पुत्र इन्द्रपाल युद्ध से भाग कर पहाड़ों में जा छिपा। इसके बाद महमूद की और चढ़ाइयों के समय अवतारदेव ने मुसलमानों के ख़ूब दाँत खट्टे किये और एक युद्ध में महमूद के एक शाहज़ादे को भी घायल कर दिया। अवतारदेव

के ४४ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका पुत्र यशदेव राजा हुआ, जिसने जसरौटा नामक नगर बसाया और ३० वर्ष तक न्यायपूर्वक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र संग्रामदेव और फिर पौत्र जगदेव जम्बू का राजा हुआ। जगदेव के समय में महमूद के वंशज मलिक .खुसरो ने भारत का कुछ अंश जीत लिया और उसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी की कई चढ़ाइयाँ हुईं। इसी जगदेव की सहमति से सुलतान ग़ोरी ने स्यालकोट का क़िला बनवाया था। इसीके बाद .ग़ोरी ने पृथ्वीराज को युद्ध में परास्त करके उन्हें .क़ैद कर लिया था और उनकी आँखें निकलवा ली थीं।

सन् १३९२ में तैमूरलंग ने भारत पर चढ़ाई की, दिल्ली को अपने अधीन कर लिया और वहाँ बहुत से लोगों को मरवा डाला। वहाँ से तुर्किस्तान लौटते समय उसने हरद्वार में कई हज़ार यात्रियों का भी वध करा डाला था। वहाँ से कुछ दूर आगे बढ़ने पर पहाड़ों में उसे बहुत बड़ी सेना के साथ जम्बू का राजा मालदेव मिला और उसने मुसलमानी सेना को मार भगाया। ४० वर्ष तक राज्य करने के बाद सन् १३९९ (सं० १४५६) में मालदेव का देहान्त हो गया। उसकी तीसरी पीढ़ी में राजा ब्रह्मदेव हुआ, जिसके राजत्वकाल (सन् १५२५) में जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने भारत पर अधिकार करने की इच्छा से इस देश में प्रवेश किया। बहलोलपुर और स्यालकोट होता हुआ वह पानीपत पहुँचा और वहाँ उसने सुलतान इब्राहीम शाहसूर को परास्त किया था। उसी समय सिक्ख-धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक का जन्म हुआ था।

इसके बाद दो ढाई शताब्दियों तक जम्बू के राजवंशियों की कोई उल्लेख-योग्य बात नहीं हुई। सन् १७८२ (सं० १८३९) में जम्बू में राजा भोजराज देव का राज्य आरम्भ हुआ। भोजराज देव का एक सम्बन्धी दलसिंह था, जिससे उनकी बहुत शत्रुता थी। एक दिन उसने अपने एक सरदार मियाँ साहब .ज़ोरावरसिंह से कहा कि यदि वह किसी प्रकार दलसिंह के प्राण ले सके तो उसे एक जागीर दी जायगी। पर .ज़ोरावरसिंह इस पर राज़ी नहीं हुए। लेकिन .ज़ोरावरसिंह के छोटे भाई मियाँ मोटे ने यह बात स्वीकार करली और कुछ सिपाहियों को साथ ले जाकर दलसिंह और उसके साथियों को मार डाला। उस समय दलसिंह के सम्बन्धियों में से केवल अजीतसिंह नामक उनका एक बहुत छोटा पुत्र बच रहा था। महाराज रणजीतसिंह के पिता महान्सिंह से भोजराज देव की बड़ी मित्रता थी, पर अपने राज्यारोहण के पाँच वर्ष बाद उन दोनों में शत्रुता हो गई। एक बार भोजराजदेव जब बहुत बीमार पड़ा तो महान्सिंह ने अवसर पाकर अपनी सेना सहित उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी और जम्बू लूट लिया। महान्सिंह के चले जाने पर भोजराज देव फिर पूर्ववत् शासन करने लगा और अन्त में जंगी मिसल के सरदारों के झगड़े में मारा गया और उसकी रानी उसके मृत-शरीर के साथ जम्बू में सती हो गई। उस समय उसका पुत्र और राज्य का अधिकारी सुवर्णदेव केवल एक वर्ष का था, इसलिए राज्य का कुल कारबार मियाँ मोटा करता था। बालक सुवर्णदेव ग्यारह वर्ष का होकर मर गया और भोजराजदेव के वंश का अन्त हो गया। उस समय राज्याधिकार दलसिंह के पुत्र राजा अजीतसिंह को दिया गया।

कुछ ही दिनों बाद अजीतसिंह, रानी बुन्दराल और मियाँ मोटा में कुछ खटपट हो गई और मियाँ मोटा वहाँ से नाराज़ होकर पुरमण्डल नामक स्थान पर चला गया। उसी समय से .ज़ोरावरसिंह भी अपनी जागीर में रहने लगा। अजीतसिंह में शासन करने की योग्यता बिलकुल न थी, इसलिए रानी बुन्दराल ने धीरे धीरे कुल राज्याधिकार अपने हाथ में ले लिये। उस समय महाराजा रणजीतसिंह का प्रतिनिधि भाई हुकुमसिंह जम्बू के आस पास के ताल्लुक़ों का अधिकारी था। उसने एक बार रणजीतसिंह की आज्ञा से जम्बू पर चढ़ाई की, पर उसे मार्ग में ही मियाँ मोटा ने कुछ राजपूतों को साथ

लेकर रोक लिया और लड़कर मार भगाया। इस युद्ध में ज़ोरावरसिंह के प्रपौत्र गुलाबसिंह ने अपने दादा की इच्छा के विरुद्ध मियाँ मोटा का साथ दिया और अच्छी वीरता दिखलाई । यही गुलाब सिंह आगे चल कर जम्बू और काश्मीर के राजा हुए । उक्त युद्ध सन् १८०८ में हुआ था और उस समय गुलाबसिंह की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी । गुलाबसिंह अपने जीवन में प्रायः इस बात का ज़िक्र किया करते थे कि उन्हें शत्रुओं के सिर पर वार करने के लिए उचकना पड़ता था। एक दिन गुलाबसिंह अपने दादा के एक घोड़े पर सवार होकर जंगलों में निकल गये। वहाँ उस घोड़े को कुछ चोट आ गई । जब ज़ोरावरसिंह को यह बात मालूम हुई तो वह गुलाबसिंह पर बहुत बिगड़े। इसलिए गुलाबसिंह नाराज़ होकर घर से कुछ लोगों के साथ पेशावर की ओर भाग गये। उनकी इच्छा क़ाबुल तक जाने की थी, क्योंकि उन्होंने सुना था कि वहाँ शाह शुजा फ़ौज भरती कर रहा है । लेकिन सिन्ध नदी के किनारे पहुँचने पर उनके हिन्दू साथियों ने पेशावर जाने से इनकार कर दिया, क्योंकि उन्हें मियाँ मोटे की नाराज़गी का भय था। इसलिए वहाँ से लौट कर वह सुखू परगने में दीवान ख़ुशवक्तराय के पास पहुँचे । सुखू परगना सरदार निहालसिंह अटारीवाले की जागीर थी और उसका प्रबन्ध उक्त दीवान के हाथ में था । दीवान ने गुलाबसिंह का बहुत आदर सत्कार किया, क्योंकि उसी अवसर पर ज़ोरावरसिंह के यहाँ के एक पुराने जमादार ने, जो उस समय वहाँ उपस्थित था, उनका परिचय करा दिया था । उन्हीं दिनों दीवान के अधीनस्थ एक ज़मींदार ने सिर उठाया था और सांग के क़िले के निकट दीवान के कुछ सिपाहियों को परास्त किया था। इस पर गुलाबसिंह ने अपने साथ थोड़ी सी सेना ले जाकर उस ज़मींदार को परास्त कर दिया । इसी बीच में गुलाबसिंह की वीरता और रण-कुशलता का समाचार महाराज रणजीतसिंह तक पहुँचा और उन्होंने मियाँ मोटा को आज्ञा लिख भेजी कि गुलाबसिंह को भेज दो। जब यह समाचार दीवान ख़ुशवक्तराय को मिला तो उन्होंने गुलाबसिंह को एक उत्तम घोड़ा देकर आदरपूर्वक विदा किया। जब गुलाबसिंह जम्बू पहुँचे तो मियाँ मोटा उन्हें लेकर स्यालकोट से दस कोस दक्षिण उसका नामक स्थान पर पहुँचे जहां महाराज रणजीतसिंह की छावनी थी। यह घटना सन् १८१० की है।

गुलाबसिंह दो वर्षों तक वहाँ यों ही रहे। इसके बाद राजा ध्यानसिंह ने उन्हें तथा उनके पिता मियाँ साहब केसरसिंह को अच्छे वेतन पर सेना में भरती कर लिया।

फ़तहख़ाँ बारकज़ाई ने सन् १८१३ में महाराज रणजीतसिंह को इस शर्त पर आठ लाख रुपए वार्षिक देना स्वीकार किया था कि महाराज साहब उसे काश्मीर को अपने अधीन करने में सेना द्वारा सहायता देंगे। महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली और तदनुसार दीवान मोहकमचन्द को बहुत बड़ी सेना के साथ उसकी सहायता के लिए भेजा। उस समय अफ़गान साम्राज्य की ओर से अतामुहम्मद काश्मीर का शासन करता था। दीवान मोहकमचन्द ने अतामुहम्मद को परास्त करके फ़तहख़ाँ से अपना रुपया माँगा। पहले तो फ़तहख़ाँ ने रुपया देने में आनाकानी की, पर बाद में वह रुपये देकर और अपने भाई मुहम्मद अज़ीम को काश्मीर का शासक बनाकर क़ाबुल चला गया। मार्ग में उसने अटक के क़िले पर भी अधिकार करना चाहा, पर ज्योंही दीवान मोहकमचन्द को उसका यह विचार मालूम हुआ, त्योंही उन्होंने उस पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में गुलाबसिंह ने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था, लेकिन उनके पिता केसरसिंह बहुत ज़ख़्मी हो गये थे। फ़तहख़ाँ को भगा कर जब सिक्ख सेना लौटने लगी तो मार्ग में गुलाबसिंह को पता लगा कि रानी बुन्दराल ने दो दुष्टों के द्वारा मियाँ मोटासिंह को मरवा डाला।

जब मुहम्मद अज़ीम का शासन काश्मीर में भली भांति जम गया तो उसने सिक्खों को कर देना बन्द कर दिया। इसलिए सिक्ख-सेना फिर उस पर आक्रमण करने के लिए सन् १८१६ में काश्मीर की ओर रवाना हुई। जब सिक्खसेना दीवान रामदयाल और दलसिंह की अधीनता में पीरपंजल पार करके काश्मीर की सीमा में पहुँच गई तो रजावरी के शासक राजा आजख़ां ने विश्वासघात करके सिक्ख सेना का पक्ष छोड़ दिया और उसे रसद आदि देना बन्द कर दिया। यही नहीं, बल्कि उसने और भी दुष्टता यह की कि महाराज रणजीतसिंह को कई समाचार इस आशय के भेजे कि उनकी सेना पीर-पंजल में नष्ट हो गई। गुलाबसिंह उस समय मण्डी में थे। उन्होंने इन समाचारों पर विश्वास कर लिया और उलटे बशाहिर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ही उनकी सेना ने बड़ी कायरता दिखलाई और इधर उधर भागने लगी। उसी अवसर पर आसपास के ज़मीदारों ने भी सिर उठाया और उन्हें दिक़ करना चाहा; पर गुलाबसिंह ने लड़ भिड़ कर उन सबको परास्त कर दिया। गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर उन्हें पुरस्कार-स्वरूप एक जागीर मिली और उनका बहुत आदर हुआ।

इसके बाद महाराज रणजीतसिंह गढ़दनाले का क़िला फ़तह करने के लिए जालन्धर दोआब की तरफ़ गये। इधर कुछ दिनों से गुलाबसिंह जम्मू में ख़ाली बैठे हुए थे, इसलिए यह सुअवसर देख वह ठीक समय पर महाराज की सहायता के लिए उनके पास आ पहुँचे। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने जो धीरता दिखलाई थी उसके उपलक्ष में उन्हें महाराज ने रामगढ़ की जागिर दे दी। महाराज रणजीतसिंह अपने सहायकों का उत्साह बढ़ाने के लिए प्रायः इस प्रकार जागिरें दे दिया करते थे। उसी वर्ष महाराज ने नवाब मुजफ्फ़रख़ां को अधीन करने के लिए मुलतान पर चढ़ाई की। इस युद्ध में एक बार एक बड़ा सरदार मारा गया और महाराज ने उसकी लाश मँगवाने की आज्ञा दी। जिस स्थान पर वह लाश गिरी थी वहाँ चारों ओर से गोलियाँ बरस रही थीं। इसलिए किसी को वहाँ जाकर उस मृत सरदार का शव लाने का साहस न हो सका। गुलाबसिंह सबसे आगे झपट कर बढ़े और सबके देखते देखते वह लाश उठा लाये। नवाब के अधीन होने और नज़राना दे चुकने के बाद महाराज लाहौर लौट गये और गुलाबसिंह जम्मू चले गये।

सन् १८१७ में गुलाबसिंह को महाराज की ओर से रिआसी की जागीर मिली। इनसे पहले यह जागीर दीवानसिंह के पास थी, जो मियाँ मोटासिंह के हत्याकारियों में सम्मिलित था। रिआसी के क़िले पर अधिकार करके गुलाबसिंह ने दीवान अमीरचन्द की सम्मति से उसकी मरम्मत कराई और वहाँ थोड़े से सिपाही छोड़कर वह महाराज से मिलने लाहौर गये। पर वहाँ से उन्हें शीघ्र ही लौट आना पड़ा, क्योंकि उस क़िले पर एक दूसरे जागिरदार भूपदेव के आदमी अधिकार करने की चेष्टा करने लगे थे। लौट कर गुलाबसिंह ने इन उपद्रवियों को परास्त किया और उनके सरदार सरतापा को क्रोध में आकर अपने हाथ से टुकड़े टुकड़े कर डाला और इसी प्रकार उसके अन्य साथियों को भी मरवा कर उनकी लाशें पेड़ों पर लटकवा दीं। उधर भूपदेव और दीदू अपने सिपाहियों सहित मियाँ मोटासिंह की जागीर में जाकर लूट मार करने लगे। इसलिए गुलाबसिंह ने रिआसी को ज़ोरावरसिंह के सपुर्द करके उस ओर प्रस्थान किया और कई लड़ाइयों के बाद मियाँ दीदू को पहाड़ों में मार भगाया।

काश्मीर की हिन्दू प्रजा पर अफ़ग़ानसरकार के कर्मचारी बहुत अधिक अत्याचार करते थे, इसलिए महाराज रणजीतसिंह ने उस प्रान्त को अपने अधीन करना चाहा। उसी अवसर पर संयोगवश (सन् १८१९ में) पण्डित बीरबल तथा और कई आदमी काश्मीर से भाग कर लाहौर पहुँचे और महाराज से काश्मीर अपने अधीन कर लेने की प्रार्थना करने लगे। महाराज ने भी तदनुसार युद्ध आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने

जब्बारख़ां का मुक़ाबला करके उसे परास्त किया था। काश्मीर जीत कर महाराज ने दीवान मोतीराम को वहाँ का शासक (गवर्नर) बनाया और गुलाबसिंह को जम्बू-प्रान्त दे दिया। गुलाबसिंह को सिक्ख-सरकार के लिए सेना रखने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का कर न देना पड़ता था।

काश्मीर और पेशावर से लौट कर महाराज ने डेरा ग़ाज़ीख़ाँ पर चढ़ाई की, जिसमें गुलाबसिंह भी अपनी सेना सहित सम्मिलित थे। उसी अवसर पर गुलाबसिंह के दादा ज़ोरावरसिंह का देहान्त हो गया और केसरसिंह छुट्टी लेकर जम्बू चले गये। इसके बाद पेशावर के यूसुफ़जइयों को दमन करने में भी गुलाबसिंह ने महाराज को बहुत सहायता दी थी।

यद्यपि जम्बू सिक्ख-साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया गया था और वहाँ के प्रबन्ध के लिए उक्त सरकार की ओर से दो सरदार नियुक्त थे तो भी मियाँ दीदू उसके आस पास के गाँवों में लूट मार करता फिरता था। इसके सिवा बहुत से राजपूत और ज़मींदार भी उसके सहायक हो गये थे। सिक्खसरदार कभी कभी इन उपद्रवियों के सरदारों को पकड़ लिया करते थे और उन्हें क़ैद या देश-निकाले की सज़ा देते थे। लेकिन मियाँ दीदू के उपद्रव दिन पर दिन बढ़ते जाते थे। एक बार जम्बू से कुछ फल महाराज के लिए आ रहे थे। मियाँ दीदू ने मार्ग में ही वे सब फल लूट लिये और उनके बदले टोकरों आदि में गोबर और कीचड़ भर दिया। जब यह समाचार लाहौर में महाराज तक पहुँचा तो वह बहुत क्रुद्ध हुए। उसी समय उन्होंने मियाँ दीदू को दण्ड देने का विचार किया। उस अवसर पर गुलाबसिंह ने महाराज को उस शेर का क़िस्सा सुनाया, जिसकी मोछें सोने के समय एक चूहा काट जाया करता था और जिसने विवश हो कर उस चूहे के लिए एक बिल्ली पाली थी। इसका अभिप्राय यह था कि पंजाब-केसरी एक बहुत छोटे शत्रु के लिए स्वयं कोई कष्ट न करें और उसका भार गुलाबसिंह पर सौंप दें। महाराज को भी यह बात पसन्द आ गई और उन्होंने गुलाबसिंह को अपना दोशाला ओढ़ाकर कई सरदारों के साथ जम्बू की ओर भेजा। गुलाबसिंह ने मियाँ दीदू के उन साथियों को छुड़वा दिया जो क़ैद किये जा चुके थे और इस प्रकार और लोगों की सहानुभूति प्राप्त की। मियाँ दीदू ने भागने की चेष्टा की, पर वह सिक्ख-सिपाहियों द्वारा मारा गया। गुलाबसिंह उसके दो लड़कों को पकड़ कर लाहौर ले गये। एक बार शिकार में जब गुलाबसिंह एक निराले जंगल में पहुँचे तो वहाँ उन्होंने दीदू के एक पुत्र वसन्तसिंह से कहा कि मैं तुम्हारे पिता की हत्या करने वाला हूँ, इसलिए तुम इस समय मुझसे अपने पिता का बदला ले सकते हो। वसन्तसिंह ने बहुत नम्र होकर उत्तर दिया कि मैं आपके अनुग्रह और कृपापूर्ण व्यवहारों से बहुत दब गया हूँ।

(शेष आगे)

—:०:—

सूचना और सम्मति।

बंबई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक व्यापार-कालिज खुला है, जिसमें व्यापार की शिक्षा दी जायगी। अभी जब तक अलग भवन न बन जायगा यह कालिज एलफिंस्टन कालिज ही में रहेगा। शिक्षा का समय सबेरे ८ से १० बजे तक और सन्ध्या को ५ से ७ बजे तक रक्खा गया है। इससे निकले हुए छात्रों को बंबई यूनिवर्सिटी की बी० सी० (Bachelor of Commerce) की उपाधि मिलेगी। इस कालिज की स्थापना के लिए जो उद्योग मि० के० सुब्रह्मण्य ऐयर ने किया उसके लिए बंबई के श्रीमान् गवर्नर महोदय ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। अभी मि० सुब्रह्मण्य ऐयर ही इस कालिज के प्रधान प्रिंसिपल नियुक्त हुए हैं। शेष अध्यापकों के नाम ये हैं—

१ श्रीनीलकंठ सदाशिव तकाखे एम० ए०-अँगरेज़ी के अध्यापक।

२ श्रीरामचन्द्र महादेव जोशी एम० ए०; एल एल० बी-अर्थशास्त्र के अध्यापक।

३ श्रीभास्करराव विट्ठलदास मेहता एम० ए०; एल एल० बी०-व्यापारक़ानून के अध्यापक।

४ मि० सोराबजी शकूर जी (इंजिनियर)-हिसाब किताब के अध्यापक।

—:०:—

इस सभा की रिपोर्ट देखने से पाठकों को मालूम ही होगा कि विज्ञान के प्रचार के लिये प्रयाग में एक विज्ञानपरिषद् स्थापित हुई है जो हिन्दी और उर्दू में विज्ञान-विषय की पुस्तकें बनवाएगी और व्याख्यान आदि का भी प्रवन्ध करेगी। परिषद् क्या कर रही है, इसका पता वह अपनी छपी अपील में इस प्रकार देती है—

"परिषद् ने......पहले पहल प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना का काम अपने हाथ में लिया है। उसके कई सदस्य रसायन, भौतिक तथा जीव-विज्ञान पर छोटी पुस्तकें लिख रहे हैं और इस कार्य्य में योग देने के लिए कई कालिजों के उन विद्वान् अध्यापकों ने, जो हमारी प्रान्तीय (?) भाषा में ग्रन्थ लिख सकते हैं, सूचना दी है। परिषद् की कार्य्य-कारिणी समिति के विषयानुसार छ विभाग किये गए हैं जिनमें ग्रन्थ-रचना कार्य्य के अतिरिक्त वैज्ञानिक परिभाषा पर भी विचार होता है और शीघ्र ही परिभाषा का प्रकाशन भी सामयिकपत्रों में प्रारम्भ हो जायगा। अभी अर्थाभाव के कारण व्याख्यानादि का प्रवन्ध नहीं हुआ है किन्तु पत्रों में निवन्ध भेजना सदस्यों ने प्रारम्भ कर दिया है"।

हिन्दीप्रेमियों को चाहिए कि वे इस परिषद् की धन से पूरी सहायता करें, और नहीं तो कम से कम २) वार्षिक चंदा देकर इसके सदस्य अवश्य हो जायँ। पत्र-व्यवहार आदि इस पते से करना चाहिए—अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम० ए०, उपमंत्री विज्ञान-परिषद्; म्योर कालेज, इलाहाबाद।

—:०:—

फ़ैज़ाबाद में गत प्रान्तीय कान् फ़्रेंसों के अवसर पर देशी भाषाओं, विशेष कर हिन्दी के सम्बन्ध, में जो भाव प्रकट किये गए वे अत्यन्त निन्दनीय और अभिमान-सूचक थे। बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त ने जो हिन्दी-भाषा के अधिक व्यवहार पर ज़ोर दिया वह इस लिए जिसमें ये कान्फ़्रेंसें अभिनय मात्र न हों, जिन्हें अधिकांश लोग केवल दूर से देखें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि बाबू शिवप्रसाद के विरोध के लिए ऐसे लोग खड़े हुए जिन्होंने अभी तक कोई सार्वजनिक कार्य्य नहीं किया है, और जो इधर थोड़े ही दिनों से अपना फ़ुरसत का वक्त अपने को 'पबलिक मेन' प्रकट करने में लगाने लगे हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि केवल देशी भाषाओं का विरोध करने से ही 'भारत-प्रसिद्ध' होने की योग्यता नहीं प्रमाणित होती। यदि कान् फ़्रेंसें प्रान्तीय न होतीं, भारतीय होतीं, तो इस प्रकार का विरोध किसी अंश में उचित भी था।

—:०:—

हाल में ब्रिटिश असोसिएशन के सामने डाक्टर मेकडौनल ने 'हास्य' पर एक लेख पढ़ा था। उन्होंने कहा कि अब तक हास्य के जितने हेतु-निरूपण हुए हैं उनमें एक भी ठीक नहीं प्रमाणित हुआ। स्पेंसर ने हास्य का कारण यह बतलाया था कि शरीर की फ़ालतू शक्ति उन प्रेरक नाड़ियों के द्वारा निकलती है जिनका व्यवहार बहुत अधिक होता है जैसे श्वासवाहिनी तथा मुँह को खोलने और बंद करने वाली नाड़ियाँ। पर बहुत सी अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें मस्तिष्क से किसी फ़ालतू शक्ति का वहिष्कार नहीं होता। जैसे किसी आदमी को अपनी टोपी पर बैठा देख देखनेवालों को हँसी छूटती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जब जब ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं तब तब शरीर में फ़ालतू शक्ति रहती है। हँसी वास्तव में एक साथ मिली जुली कई प्रकार की गतियों का प्रवाह है। यह प्रवाह एक ऐसी प्रेरणा के द्वारा होता है जिस पर कभी कभी इच्छा का वश बिलकुल नहीं रहता। इस

प्रकार की क्रिया से यह लक्षित होता है कि मनुष्य की रचना में एक प्रकार की भौतिक और मानसिक संयुक्त प्रवृत्ति होती है जिसका केन्द्र मस्तिष्क में होता है। मनुष्य जाति में जो इस क्रिया का स्थापन हुआ है उससे उपकार ही है।

हास्य दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो किसी विलक्षण वस्तु वा व्यापार के देखने से होता है, दूसरा वह जिसे किसी वस्तु वा व्यापार की अपेक्षा नहीं होती। हँसी मानसिक क्रियाओं को एक दम रोक देती है और इस प्रकार बेढंगी वस्तु पर अधिक विचार करने से रोकती है। हँसी के द्वारा शरीर में गति उत्पन्न होती है, जिससे रक्त और श्वास का प्रवाह तेज़ हो जाता है और शरीर का स्वास्थ्य-साधन होता है। हँसी मनुष्य ऐसे प्राणी के लिए आवश्यक है। हँसी का आदि उद्देश्य सहानुभूति वा करुणा पर एक प्रकार की रोक रखना है। यद्यपि यह परम आवश्यक है कि हम अपने सहवर्गियों के दुःख से दुखी हों, पर यदि हम सब प्रकार के छोटे छोटे दुःखों और मूर्खताओं के लिए, जिन्हें अपने चारों ओर हम हर समय पाते रहते हैं, व्यथित होने लगें तो हमारा जीवन ही दुःखमय हो जाय।

—:o:—

सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव।

गत १ अक्तूबर सन् १९१३ बुधवार को सन्ध्या समय ५॥ बजे सभाभवन में काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से हुआ था। सभाभवन पताकाओं आदि से सजाया गया था। उत्सव में उपस्थित सज्जनों की संख्या ढाई तीन सौ के लगभग थी, जिसमें नगर के सभी पढ़े लिखे, रईस और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित थे। सारा हाल दर्शकों से भरा हुआ था। सभापति का आसन बनारस के कमिश्नर मिस्टर ई० ए० मलोनी आई० सी० एस० ने सुशोभित किया था।

ठीक साढ़े पाँच बजे कमिश्नर साहब सभा-भवन में पधारे। द्वार पर श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दर-दास बी० ए०, बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० आदि सज्जनों ने उनका स्वागत किया। सबसे पहले कमिश्नर साहब ने सभा के कार्य्यालय, पुस्तकालय, तथा कोश-विभाग का भलीभाँति निरीक्षण किया। पुस्तकालय में आपने प्रायः सभी समाचारपत्रों को एक एक करके देखा और अपरि-चित भाषाओं के पत्रों और पत्रिकाओं के नाम तथा उद्देश आदि पूछे। कोश का पूरा कार्य्य-क्रम आपको भली भाँति समझाया गया। सब बातों को आप बड़े ध्यान से सुनते थे तथा बीच बीच में स्वयं भी प्रश्न करते जाते थे। कोश-विभाग का निरीक्षण करके आप हाल में आये जहाँ आप को सभापति के आसन पर बैठाकर करतल-ध्वनि की गई। इसके बाद सभा के मन्त्री बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने सभा के बीसवें वर्ष का विवरण संक्षेप रूप में पढ़ सुनाया। उसी अवसर पर उस विवरण की छपी हुई प्रतियाँ भी उपस्थित सज्जनों में बाँट दी गईं। इसके बाद कमिश्नर साहब ने पं० रामचन्द्र शुक्ल को राधाकृष्णदास की जीवनी के लिये मेडल तथा पं० श्रीलाल उपाध्याय के लिये डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल और लाला संतराम गोहल के लिये राधाकृष्ण-दास मेडल दिया। बा० गौरीशंकरप्रसाद के रिपोर्ट पढ़ चुकने और मेडल बँट जाने के बाद बा० श्याम-सुन्दरदास का व्याख्यान आरम्भ हुआ। यह व्याख्यान बड़ा ही रोचक और प्रभावशाली था। बीच बीच में लोग करतल-ध्वनि करते और कहीं कहीं ख़ूब हँसते थे।

बा० श्यामसुन्दरदास जी ने अपने व्याख्यान के आरम्भ में सभा के आरम्भ से लेकर आज तक, २० वर्षों का संक्षिप्त इतिहास कह सुनाया। आपने कहा—"इस सभा में सभी तरह के पढ़े लिखे और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित हैं। बड़े बड़े राजा महा-राजा इसके संरक्षक हैं और सदा सब प्रकार से इसकी सहायता किया करते हैं। इस सभा का

उद्देश्य अन्य भाषाओं का विरोध करना नहीं है। आरम्भ में जिस समय यह सभा स्थापित हुई थी उस समय इस बात का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि हिन्दी को उर्दू के विरोध का भी अवसर मिलेगा। जिस प्रकार और सब भाषाएँ उन्नति कर रही हैं, उसी प्रकार हिन्दी को भी उन्नत करना ही इस सभा का मुख्य उद्देश्य है। आजतक इस सभा ने चन्दे आदि से संग्रह करके हिन्दी की उन्नति और प्रचार में १४००००) (एक लाख चालीस हज़ार रुपये) व्यय किये हैं। इस समय सभा की वार्षिक आय प्रायः सात आठ हज़ार रुपये है। इन बीस वर्षों में सभा ने अनेक बड़े बड़े काम किये हैं। इस बीच में सभा ने कोई ४००० नई हिन्दी-पुस्तकों की खोज की है जिसकी रिपोर्ट के आधार पर पं० श्यामबिहारी-मिश्र ने हिन्दी का एक बड़ा इतिहास लिखा है। खोज में हिन्दी-गद्य की अनेक ऐसी पुस्तकें मिली हैं जो १३ वीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इसके सिवा सभा ने बहुत सी नई और उपयोगी पुस्तकें पुरस्कार और पदक देकर लिखवाई हैं।" इसके बाद आप ने पृथ्वीराजरासो का ज़िक्र किया और कहा कि यद्यपि सभा द्वारा प्रकाशित रासो में कुछ अंश प्रक्षिप्त या क्षेपक भी है तथापि उस रासो के असली होने में सन्देह नहीं है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के सम्बन्ध में आप ने कहा—"ऐसी दशा में जब कि युरोप ऐसे बड़े देश में जहाँ अनेक जातियाँ और भाषाएं हैं, लोग एस्पिरेण्टो को राष्ट्र भाषा बनाने का उद्योग करते हैं, तो यदि हम लोग भारतवर्ष में नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाना चाहें तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है और यह बात सम्भव भी है।" सभा के पुस्तकालय का ज़िक्र करते हुए आप ने कहा—"यद्यपि हस्त-लिखित पुस्तकों के तो देशी रियासतों में बड़े बड़े पुस्तकालय हैं पर हिन्दी की छपी हुई पुस्तकों का सबसे बड़ा पुस्तकालय सभा में ही है।" ... ... "सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय यह है कि हम लोगों को सब से अधिक सहायता युक्त प्रान्त की सरकार से ही मिली है। प्रायः सभी छोटे लाट, कमिश्नर, कलक्टर तथा अन्य सरकारी आफ़िसर बराबर इस सभा की सहायता करते तथा उसके कामों से सहानुभूति रखते आये हैं। पर इस बात का मुझे दुःख है कि कभी कभी हमारी पुकार गवर्नमेण्ट तक नहीं पहुँचती। आज कल गवर्नमेण्ट के कारण कई अंशों में हिन्दी की हानि हो रही है। वह उर्दू और हिन्दी को एक कर रही है जिससे पढ़नेवालों को बहुत कठिनता होती है। लोगों के बहुत शिकायत करने पर सरकार ने विज्ञों (Experts) की एक कमेटी बनाई; पर वह विज्ञ ऐसे हैं जिनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक ओर तो सरकार इस बात की शिकायत करती है कि लोग उसे सहायता नहीं देते और दूसरी ओर सहायता के लिये वह ऐसे लोगों को चुनती है जो हिन्दी से कोई सरोकार नहीं रखते।" इसके बाद आप ने हिन्दी की कई पाठ्य पुस्तकों में से, उनकी भाषा-सम्बन्धी भद्दी अशुद्धियों के कई उदाहरण दिखलाये जिस पर लोगों में ख़ूब हँसी हुई। आगे चलकर आप ने कहा—"इस सम्बन्ध में सरकार बहुत अन्याय कर रही है। इस अवसर पर मेरे कथन का उद्देश्य यह है कि बहुत सम्भव है कि हमारी यह शिकायत सभापति महाशय के द्वारा छोटे लाट तक पहुँच जाय। एक बार शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास सभा का एक डेपुटेशन गया था। उस समय उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया था कि इन पुस्तकों की भाषा की शिकायत स्कूलों के इंसपेक्टर तक करते हैं।" ... ... "सुधाकर जी की आत्मा मुझे क्षमा करे, चलते चलाते वे भी हिन्दी का गला ख़ूब काट गये हैं। रामकहानी में उन्होंने भाषा का ख़ूब सत्यानाश किया है। उनकी यह पुस्तक शहर के लड़कों को देहाती बनाने का बहुत अच्छा साधन है। शकुन्तला ऐसी पुस्तक तो पाठ्य पुस्तकों में से निकाल दी जाय और रामकहानी उसके स्थान पर अचल हो जाय और हटाये भी न हट सके; यह भी हिन्दी का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यदि सच पूछिये तो यह भी सर-

कार की पालिसी ही है। जहाँ हम लोग सरकार की कृपा का धन्यवाद देते हैं वहाँ हम लोग अपने कष्टों को उसके सामने उपस्थित करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आज कल की पाठ्य पुस्तकों की भाषा हमारे बच्चों को तुलसीकृत रामायण समझने योग्य भी न रक्खेगी। सरकार को चाहिए कि वह अपने भविष्य नागरिकों की रक्षा करे। कौंसिल में भी इस विषय की कुछ सुनाई होने की आशा नहीं दिखाई देती। लेकिन अभी शायद सरकार इस विषय पर विचार कर रही है और जबतक उसका निर्णय प्रकाशित न हो जाय तबतक हम लोगों को चुप रहना चाहिए। उस समय सभा फिर एक बार सरकार तक पहुँचेगी और उससे न्याय की प्रार्थना करेगी। हमें सरकार के साथ होकर चलना चाहिए, क्योंकि उससे हमारे कामों में सहायता मिलती रहती है।"

इसके बाद सभापति मि० मलेनी की वक्तृता आरम्भ हुई। सबसे पहले आप ने बा० श्यामसुन्दरदास की वक्तृता और वक्तृत्व-शक्ति की प्रशंसा की और साथ ही सभा तथा उसके उद्देश्यों की सराहना की। आप ने कहा—"सभा में अच्छे अच्छे लोग सम्मिलित हैं, उसके पास धन भी है और उसके काम भी अच्छे होते हैं। पुस्तकों की खोज का काम बहुत उत्तम और आवश्यक है। इसमें तथा कोश में सब लोगों को सहायता देनी चाहिए। पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में जो शिकायत की गई है, उसके दूर करने में जहाँ तक हो सकेगा सहायता दी जायगी, पर वक्ता महाशय की दो एक बातों से मेरा मतभेद है। भाषा में बराबर परिवर्त्तन होता है। जब मुसलमान इस देश में आकर बस गये तो उनकी भाषा के शब्दों का इस देश की भाषा में मिलना अनिवार्य्य था। फ़ारसी और इस देश की भाषा मिलकर और उसमें कुछ परिवर्त्तन होकर उर्दू भाषा बन गई। उन लोगों की भाषा का प्रभाव इस देश की भाषा पर भी पड़ा। इङ्गलैण्ड में नार्मनों की विजय (Norman Conquest) के बाद फ्रेञ्च और एंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxon) भाषाओं में वही झगड़ा रहा जो आज कल इस देश में उर्दू और हिन्दी का है। लेकिन सैक्सन भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द मिलते गये और इसी लिये अँगरेज़ी की इतनी उन्नति भी हुई। यदि हम लोग केवल सैक्सन भाषा को लेकर बैठे रहते तो अँगरेज़ी भाषा इतनी उन्नत न दिखलाई पड़ती। पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में सरकार के सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित है। यदि हिन्दी और उर्दू की प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अलग अलग स्कूल खोले जाँय तो उसमें खर्च बहुत अधिक पड़ेगा।

यदि सभा को इन पाठ्य पुस्तकों की भाषा का विरोध हो तो उसे उचित मार्ग से सरकार तक अपनी प्रार्थना पहुँचानी चाहिए। आशा है कि वह अवश्य ध्यान देगी।" इसके बाद आप ने अन्त में फिर कोश और खोज के काम की प्रशंसा की और कहा कि खोज के काम में सर्वसाधारण को भी उदारता दिखलानी चाहिए। सभापति महाशय के वक्तृता समाप्त होने पर उन्हें धन्यवाद दिया गया और करतल-ध्वनि होने के बाद सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

सभा का कार्य-विवरण।

प्रबन्ध-कारिणी-समिति।

सोमवार ता० २९ सितम्बर १९१३—संध्या के ५½ बजे
स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १९१३) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू ब्रजचन्द्र का १८ सितम्बर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) प्रति वर्ष विद्वानों की एक कमेटी नियत कर दी जाया करे जो प्रकाशित पुस्तकों पर अपनी सम्मति दिया करे और जिनकी सम्मति के अनुसार उत्तम पुस्तकों के नाम वार्षिक रिपोर्ट में दिए जाया करें, (ख) जो पुस्तकें सभा के पुस्तका-

लय के लिये आवें उनके विषय में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में विशेष रूप से सम्मति प्रकट की जाया करे, (ग) हस्तलिखित अमूल्य ग्रंथों, शिला-लेखों, ताम्रपत्रों, पुराने सिक्कों, प्राचीन चित्रों तथा पुरातत्त्व सम्बंधी अन्य सामग्री का एक संग्रह सभाभवन में रक्खा जाय।

निश्चय हुआ कि (क) सभा की वार्षिक रिपोर्ट में उत्तम पुस्तकों के विषय में जितना उल्लेख रहता है उससे कुछ अधिक विवरण के दिए जाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सभा के सभापति अपनी वार्षिक वक्तृता में यदि उचित समझें तो विशेष रूप से इनके विषय में उल्लेख कर सकते हैं, (ख) पुस्तकालय के निरीक्षक से प्रार्थना की जाय कि वे ऐसी पुस्तकों की एक सूची बना कर दिया करें और वह सूची सभा के कार्य-विवरण के साथ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में छाप दी जाया करे, (ग) यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और प्रस्तावकर्त्ता से प्रार्थना की जाय कि इस की कार्य-प्रणाली आदि के सम्बन्ध में वे कृपा-पूर्वक विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव उपस्थित करें।

(३) साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिन्दी में समाज-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया था और पूछा था कि यह पुस्तक किस ढँग की लिखी जाय।

निश्चय हुआ कि पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा को लिखा जाय कि वे इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव भेजें और तब यह विषय आगामी अधिवेशन में समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(४) बुलन्दशहर की नागरी-प्रचारिणी सभा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने यहाँ की कलेक्टरी में नागरी का एक लेखक नियत करने के लिये सभा से आर्थिक सहायता माँगी थी।

निश्चय हुआ कि सभा को दुःख है कि धनाभाव से इस समय वह कुछ सहायता नहीं दे सकती।

(५) पण्डित केदारनाथ पाठक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास के जीवन-चरित के तैयार करने में ग्रन्थकार को उन्होंने बड़ी सहायता दी थी अतः उन्हें इस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ बिना मूल्य दी जानी चाहिएँ।

निश्चय हुआ कि पाठक जी का पत्र इस ग्रन्थ के लेखक—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के पास भेजा जाय और उन्हें लिखा जाय कि इस पुस्तक की जितनी प्रतियाँ वे उचित समझें पण्डित केदारनाथ पाठक को दें।

(६) निश्चय हुआ कि सभा के स्थायी कोश में अब तक जितना द्रव्य प्राप्त हुआ है उसका पूरा हिसाब समिति की सूचना के लिये आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) वेतनवृद्धि के लिये सभा के क्लार्क बाबू माधवसिंह और पण्डित काशीप्रसाद तिवारी के प्रार्थना पत्र उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि धनाभाव से इस समय उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद।
मंत्री

—:०:—

नं० ६ रेमिङ्गटन स्टेण्डर्ड टाइपराइटर
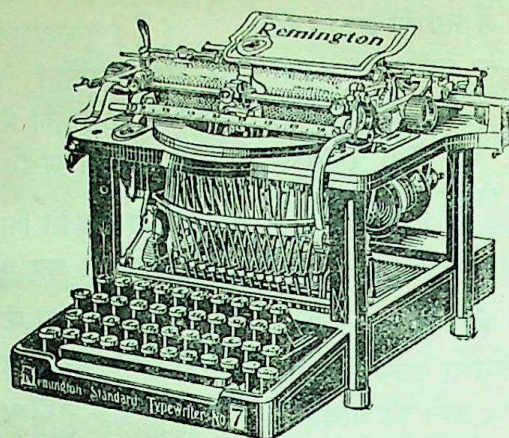
इस मेशीन से मराठी संस्कृत या देवनागरी अक्षरों में लिखा जा सकता है। समय और श्रम को बचानेवाली इन मशीनों को राजा महाराजा भारतवर्षीय राज्यों के दफ़्तर व्यवसायी सज्जन और प्रत्येक पुरुष जिसको समय और श्रम के बचाने की क़दर है व्यवहार करते हैं और इन मशीनों की सफलता से प्रसन्न हैं। क़लम से कहीं ज्यादः तेज़ लिखने के सिवाय इन मशीनों का लिखना सुन्दर और सहज होता है और बड़ी बात यह होती है कि एक मज़मून की बहुतसी नक़लें एक ही साथ छापी जा सकती हैं। हमारे कारख़ाने की मेशीनें तमाम दुनियाँ में फैली हुई हैं और हमारा नाम इन मराठी संस्कृत और देवनागरी हिन्दी मेशीनों की मज़बूती और नेहायत कारआमद होने की गारेन्टी है।

मिलने का पता—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी

(आफ न्यूयार्क एण्ड लन्दन)

नं० २६ ए केनिंग रोड इलाहाबाद।

निम्नलिखित स्थानों से भी ये मेशीनें मिल सकती हैं:—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७ कौन्सिल हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
वाइ. एम. सी. ए बिल्डिङ्गस, मदरास।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७५ हार्नबी रोड, बम्बई

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
चैयरिंगक्रोस बिल्डिङ्गस, लाहौर।

इत्यादि।

नमक सुलेमानी

इसके खाने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, भोजन हजम न होना, पेट का फूलना, अरुचि, भूख न लगना, खट्टी डकारें आना, कै. व दस्त होना, पेट की गुड़गुड़ाहट, कंठ की जलन, मुख का स्वाद ख़राब रहना, शूल, हैज़ा, वायुगोला, पिलही, आदि सब प्रकार के उदर रोग शीघ्र आराम होते हैं। दाँतों का दर्द, दाद, बिच्छू, बर्रें या मक्खी के ज़हर पर लगाने से फ़ायदा होता है। गृहस्थ मात्र को एक एक शीशी अवश्य घर में रखना चाहिए। दाम एक शीशी ।) वी० पी० से ॥) डाक महसूल ।) में ४ शीशी जा सकती हैं। यह दो शीशी से कम नहीं भेजा जाता।

जिन्होंने और जगह का नमक सुलेमानी खाया है उनको इसकी भी परीक्षा करना चाहिए। इतना सस्ता और गुणकारी कहीं नहीं मिलेगा। हर जगह एजेण्टों की ज़रूरत है। हमारे यहाँ और भी सब प्रकार की औषधें मिलती हैं। सूचीपत्र मँगा कर देखिए।

पंडित धरणीधर वैद्य

सागर सी० पी०

--:०:--

एजेंट चाहिएं। पवित्र केसर के लिये भाव ॥=) तोला। कश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर।

भाग १८] Registered No. A414 ५—६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

नवंबर—दिसंबर ।

सम्पादक-रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र
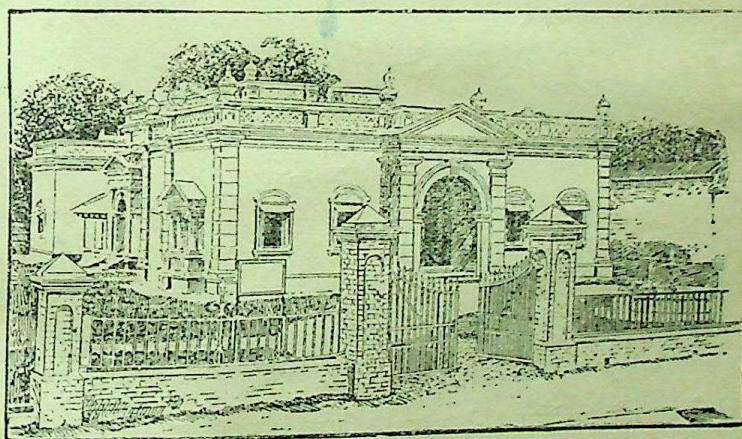
प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

विषय-सूची ।

वैश्य एन्ड कों. मथुरा का
बाल उड़ानेका साबुन!
३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.
VAISHYA & Co's
SWEET SCENTED
HAIR
DESTROYER
SOAP
MUTTRA
BEFORE PURCHASING SEE THIS PHOTO OF THE PROPRIETOR
खरीदनेसे पहिले विलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केबड़ा, खस, का फी टिकिया ॥) ३ टि. का १।≈)
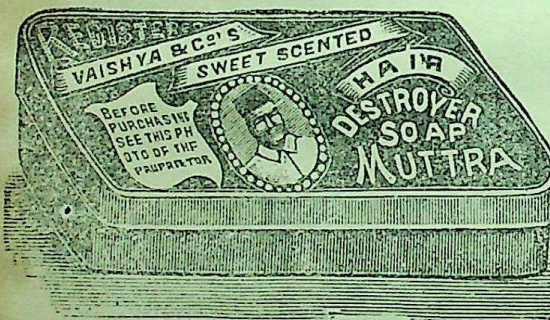
भाग १८ } नवंबर और दिसंबर १९१३ { संख्या ५—६

हिन्दी का महत्त्व।

(लेखक—पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०)

यह एक बड़ा ही गम्भीर विषय है, जिस पर छोटा और बड़ा, हर प्रकार का लेख लिखा जा सकता है। मुझे आज्ञा मिली है कि इसी गहन विषय पर आप लोगों के सम्मुख अपने विचार उपस्थित करूँ। इस विस्तीर्ण पांडित्य-पूर्ण विषय पर यदि किसी पंडित को कुछ कथन करने की आज्ञा मिलती, तो वह आज आप लोगों के सामने वह वह उच्च विचार उपस्थित करता कि आप भी प्रसन्न हो जाते। जान पड़ता है कि आप की इच्छा आज पांडित्य-पूर्ण लेख सुनने की नहीं है, प्रत्युत बाल-क्रीड़ा देखने की है, तब न आपने बालकों के समान ही ज्ञान-धारी मुझ ऐसे अल्पज्ञ को यह सेवा सौंपी है। अतः बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य समझ कर "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिँ अकास" के अनुसार यह लेख आप लोगों की सेवा में समर्पित करता हूँ।

हिन्दी के विचार में भाषा और वर्ण दोनों का कथन आता है। भाषा में साहित्य मुख्य है; अतः हम उसी से इस लेख का आरम्भ करते हैं। साहित्य अथवा काव्य का शुद्ध लक्षण क्या है, इस विषय पर पंडितों का मत अब तक सर्वसम्मति से किसी ओर नहीं झुक सका है। फिर भी बहुमत का झुकाव इस ओर समझ पड़ता है कि "काव्य वह वाक्य है जिसके शब्द, अर्थ या दोनों से अलौकिकानन्द प्राप्त हो"। साहित्य के गद्य, पद्य और नाटक नामक तीन विभाग हैं। बहुत से लोग गीतों का एक चौथा विभाग सा मानते हैं, विशेषतया पाश्चात्य महाशय गण। विषय के अनुसार गद्य, पद्य और नाटक में यह भेद है कि गद्य में विचारों का भावों से बहुत आधिक्य रहता है, पद्य में ये दोनों प्रायः सम भाव से रहते हैं और गीतों में भावों का आधिक्य विशेषता से हो जाता है। विषय के अनुसार देखने से पद्य और गीत-

विभाग पृथक् पृथक् हो जाते हैं, किन्तु वास्तव में ये मिले हुए हैं और गीत भी पद्य का ही एक भाग है। गद्य के उपविभाग थोड़े ही से हैं, किन्तु पद्य के बहुत अधिक। नाटक के उपविभाग गद्य से अधिक हैं। नाटक को बहुधा दृश्य काव्य कहते हैं और गद्य एवं पद्य को श्रव्य काव्य।

हमारे यहाँ संस्कृत एवं भाषा दोनों में काव्य के दश अंग माने गये हैं। इसीलिये बहुधा लोग दशांग काव्य-ज्ञाता इत्यादि का कथन किया करते हैं। काव्य के अंगों का जिस उत्कृष्टता और विस्तार के साथ कथन हमारे यहाँ है, वैसा अन्यत्र स्वप्न में भी नहीं पाया जायगा। अँगरेज़ी भाषा में मेटानिमी, सेनेकडकी, सिमिली, मेटाफ़र आदि दस ही पाँच काव्यांगों का कथन बहुत समझा गया है किन्तु हमारे यहाँ एक एक अंग के अनेकानेक उपांग कहे गये हैं, यहाँ तक कि भावभेद के अन्तर्गत केवल नायिकाभेद के ३८४ उपभेद कहे गये हैं। इस दशांग वर्णन को हमारे यहाँ रीति वर्णन कहते हैं। इसके अंग ये हैं—पदार्थनिर्णय, पिंगल, गणागण, गुण, दोष, दोषोद्धार, भाव, रस, वृत्ति, पात्र और अलंकार। पदार्थनिर्णय में शब्दों और वाक्यों के शुद्ध अर्थ लगाने में जिन जिन शक्तियों और विचारों की आवश्यकता होती है उनका कथन है। इसमें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि और तात्पर्य्य प्रधान हैं। इनमें से प्रथम तीन विशेषतया शब्दों के सहारे पर चलती हैं और अन्तिम दो वाक्यों के। इन शक्तियों से कोष से कोई सरोकार नहीं। कोष जानने पर भी मनुष्य बिना इनकी सहायता के शुद्ध अर्थ नहीं लगा सकता। इनमें से भी एक एक के अनेकानेक भेदान्तर हैं। जो महाशय व्यंजना और ध्वनिभेद को भली भाँति समझ लेवें, वे भाषा काव्य-प्रणाली के अच्छे ज्ञाता समझे जांयगे।

पिंगल में मेरु, पताका, मर्कटी, नष्ट उद्दिष्ट, और प्रस्तार एक प्रकार से गणित शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। इनके द्वारा गणित के कई भाग नये नियमों से सिद्ध होते हैं। किन्तु इन सबका जानना पिंगल-ज्ञान के लिये आवश्यक नहीं है। हमारे यहाँ छन्दों की संख्या अनन्त है। अन्य भाषाओं में दस बीस प्रकार के छन्द बहुत समझे गए हैं। किन्तु हमारे यहाँ सैकड़ों प्रकार के छन्द प्रस्तुत हैं और सैकड़ों नए छन्द पिंगल में कथित नियमों से बनाए जा सकते हैं। छन्द का विषय हमारे यहाँ बहुत परिपूर्ण है और अनेक आचार्य्यों ने इसी का कथन किया है। इनमें से सुखदेव मिश्र, मनीराम मिश्र और दास प्रधान हैं। अन्य आचार्य्यों ने भी विस्तारपूर्वक यह विषय कहा है।

गणागण-विचार बहुत कम भाषाओं में पाया जायगा। इस में नर काव्य वाले छन्दों के आदि में प्रथम तीन और प्रथम छः अक्षरों पर विचार करके उनके देवताओं के अनुसार फलाफल सोचा जाता है। वास्तव में इस विषय का धर्म्म से विशेष सम्बन्ध है और काव्य से थोड़ा। जो लोग इस विषय के धर्म पर विश्वास नहीं रख सकेंगे, वे इसे अनावश्यक समझेंगे। किन्तु काव्य को धर्म्म से मिला कर सब अड़चनों से बचाते हुए उसे निभा ले जाना थोड़ी बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। गुणों में अट्ठारह गुण प्रधान माने गए हैं और हमारे साहित्य पर विचार करने से ज्ञात होगा कि इनका समावेश कवियों ने बहुतायत से किया है। अन्य भाषाओं में भी ये पाए जांयगे, किन्तु इस आधिक्य से नहीं। दोषों का भी वर्णन हमारे यहाँ बहुत अधिकता से हुआ है, यहाँ तक कि बहुत सूक्ष्मदर्शिता से देखने पर बहुत कम छन्द ऐसे मिलेंगे जिन में कोई भी छोटा या बड़ा दोष न स्थापित किया जा सके। कुलपति मिश्र ने दोषों का वर्णन अच्छा किया है। दोषोद्धारों का भी कथन हमारे यहाँ बहुतायत से हुआ है। भाव-भेद, रसभेद और अलंकार हमारी रीति-काव्य के जीव हैं। इन्हीं पर उसका गौरव बहुतायत से आलम्बित है। ध्वनिभेद और इनका जानने वाला रीति का पूर्णज्ञ कहा जा सकता है। इन्हीं के विषय में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि—

आखर अरथ अलंकृत नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा।
कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
तीन विवेक एक नहिँ मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

भाव के षट् उपभेद हैं, अर्थात् स्थायी, अनुभाव विभाव, सात्विक, संचारी और हाव। इन्हीं का सांगोपांग अध्ययन करने से एक अनभिज्ञ भी समझ सकता है कि कोई भाव किस प्रकार से उठ कर स्थिर होता, किस के सहारे से, किस मौक़े पर, उसके अनुगामी क्या क्या होते हैं और उसका प्रत्यक्ष फल देह पर क्या देख पड़ता है? इस प्रकार से भाव के अंकुरित होने से उसके पूर्णरूपेण दृढ़ हो जाने तक का वर्णन आचार्य्यों ने भावभेद, और रस-भेद में कर दिया है। इनके जान लेने से एक साधारण मनुष्य भी काव्यरचना कर सकता है। कम से कम एक साधारण कवि को भी जान पड़ेगा कि किन वर्णनों के पीछे कैसे वर्णन होने चाहियें। इनका जानने वाला सहज ही में किसी कवि के साहित्य ज्ञान का पता लगा सकता है। यदि वह कवि उचित रीति से पूर्वापर क्रम से वर्णन करता चला जायगा, तो उसकी रचना में रसपूर्ण होते जावेंगे और सुप्रबंध गुण एवं स्वभावोक्ति की अधिकता होगी; अन्यथा भावोदय और भावशान्ति साथ ही साथ कहे जांयगे, जिससे रचयिता की शक्तिहीनता का पता लगेगा। इसी भाँति रस-शत्रु और रस-मित्र को जान लेने से मनुष्य जान सकता है कि कैसे वर्णनों का साथ कथन होना स्वाभाविक है और कैसों का नहीं? भावभेद और रसभेद के विस्तीर्ण वर्णन स्वभावोक्ति एवं सुप्रबन्ध गुण के बड़े ही अच्छे पोषक हैं। इनको जानने से एक अज्ञ भी प्रकृति के अनुकूल वर्णन कर सकेगा।

अलंकार काव्य-शरीर के अलंकारों के समान हैं। इसके जानने से साहित्य में स्वभावोक्ति सम्बन्धिनी पूर्णता तो नहीं आवेगी, किन्तु उसका चमत्कार बहुत बढ़ जायगा। अलंकार शब्द और अर्थ सम्बन्धी होते हैं। शब्दालंकारों से भाषा का चमत्कार बढ़ता है और अर्थालंकारों से अर्थ-सम्बन्धी चमत्कार की वृद्धि होती है। कुल मिलाकर सौ से ऊपर अर्थालंकार हैं और सात या आठ शब्दालंकार। इनके अतिरिक्त सात आठ परांग हैं, जिनकी गणना अलंकार और रस दोनों में हो सकती है। अर्थ वाले अलंकारों में से बहुतों में एक एक के कई उपभेद हैं। केवल असम्भव हमारे यहाँ छः प्रकार का कहा गया है। यही दशा अनेकानेक अन्य अंगों की है। अलंकार, रस भाव आदि पर सैकड़ों हज़ारों ग्रन्थ हमारे यहाँ वर्त्तमान हैं, जिनके पढ़ने से विदित होता है कि हमारे कवियों ने कितना प्रचुर बुद्धिबल व्यय करके हज़ारों ग्रन्थ रचे हैं। एक एक छन्द पर दस दस प्रकार के भाव सोचे जा सकते हैं और एक एक छन्द के अर्थ लगाने से सात सात आठ आठ पृष्ठ लिखने से भी सब प्रकार के साहित्य गुण नहीं दिखलाये जा सकते हैं। वृत्ति और पात्र विचार रस विचार से बहुत कुछ मिलते हैं।

साहित्यरचना और तद्‌गुणग्रहण, इन दोनों बातों में हमारे यहाँ प्रचुर परिश्रम हुआ है। रचना में जैसे जैसे ऊँचे विचार लाये गये हैं वैसे ही साहित्याचार्य्यों ने दूसरों की रचनाओं में दिखलाने में भी श्रम किये हैं। बहुत सी टीकायें हमारे आचार्य्यों ने पद्य में भी रची हैं।

हम गद्य, पद्य और नाटक नामक साहित्य के तीन भाग ऊपर कह आये हैं। इन तीनों के विषय में यहाँ कुछ इतिहाससम्बन्धी घटनायें भी कहना उचित समझ पड़ता है। वास्तव में पद्य का इतिहास हमारे यहाँ साहित्य ही का इतिहास है, क्योंकि पद्य की मात्रा आनुषंगिक दृष्टि से इतनी अधिक है कि गद्य और नाटक उसके किसी अंश में भी नहीं आते हैं। इस कारण से हम नाटक और गद्य का सूक्ष्म

इतिहास पहले कह कर फिर पद्य का इतिहास सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक भाग दिखलाने का प्रयत्न करेंगे।

नाटक का प्रादुर्भाव हमारी कविता में पहले पहल विहारी कवि शिरोमणि विद्यापति ठाकुर से हुआ। रास-मंडलियाँ भी एक प्रकार से नाटक ही खेलती हैं और इनका प्रचार व्रज में अच्छा रहा है, किन्तु फिर भी नाटक का प्रादुर्भाव वहाँ से न हो कर विहार से हुआ। विहार ही की ओर हिन्दी-नाटकों ने बल पाया और शेष हिन्दीभाषी देशों में न उनका विशेष प्रचार हुआ और न निर्माण ही आधिक्य से किया गया। विद्यापति ठाकुर ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय नामक दो नाटक ग्रन्थ रचे। आपका रचनाकाल संवत् १४४५ के निकट है। आप के पीछे कई विहारी कवियों ने नाटक रचे और वे अब तक रच रहे हैं; किन्तु इस ओर फिर भी नाटकों का प्रचार नहीं हुआ। महाकवि केशवदास ने विज्ञानगीता नामक एक नाटक-ग्रन्थ रचा, किन्तु फिर भी यह पूर्ण नाटक नहीं है। इन का रचनाकाल संवत् १६४८ से ७४ तक चलता है। महाकवि देव जी ने देवमायाप्रपंच नाटक नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा, किन्तु यह भी पूर्ण नाटक नहीं है। ये ग्रन्थ प्रबोधचन्द्रोदय के ढंग पर हैं। प्रबोध चन्द्रोदय के हमारे यहाँ कई अनुवाद हुए, किन्तु कोई भी बहुत उत्तम नहीं बना। वास्तव में वह संस्कृत में भी एक साधारण ग्रन्थ मात्र है।

देव जी ने संवत् १७४६ से १८०० के लग भग तक रचना की। इनके पीछे भी बहुत दिनों तक अच्छे नाटक नहीं बने। इधर आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कई परमोत्कृष्ट नाटक ग्रन्थ रचे। इनमें से कुछ ग्रन्थ शेक्सपियर के ग्रन्थों तक का पूरा सामना करते हैं। इसी समय के पीछे और इस से कुछ पहले भी अनेक सुकवियों ने अनेकानेक उत्कृष्ट नाटक रचे यहाँ तक कि इस समय प्रायः सौ डेढ़ सौ नाटक ग्रन्थ हमारे यहाँ हो गये हैं, जिनमें बहुतेरे अच्छे भी हैं।

गद्य तो भाषा के जन्म से ही लिखा और बोला जाता था, किन्तु प्राचीन गद्य के उदाहरण इस समय बहुत नहीं मिलते। सबसे पुराने गद्य के उदाहरण महाराजा पृथ्वीराज और उनके बहनोई रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं। ऐसे नौ उदाहरण प्राचीन ताम्रपत्रों पर से काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने खोज निकाले हैं। किन्तु ये उदाहरण साहित्य के न होकर साधारण गद्य के हैं। सबसे पहले गद्य-साहित्यनिर्माता प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ हैं, जिन्होंने जगत्प्रसिद्ध गोरखपन्थ चलाया। आपका रचनाकाल संवत् १४०७ के लगभग है, सो इसी संवत् में हमारे गद्य काव्य ने हरिगुणगान के साथ जन्म ग्रहण किया। इनके पीछे गंगा भाट नामक एक कवि ने अकबरशाह के समय में चन्द छन्द बरनन की महिमा नाम्नी खड़ी बोली के गद्य में एक पुस्तक रची और सं० १६८० में जटमल नामक कवि ने खड़ी बोली के गद्य में गोरा बादल की कथा बनाई।

इन गद्यलेखकों के अतिरिक्त सं० १६०० के लगभग प्रसिद्ध महात्मा वल्लभाचार्य्य के पुत्र विट्ठल-जी ने शृंगाररसमंडन नामक व्रजभाषा गद्य का एक ग्रन्थ रचा और इनके पुत्र गोकुल नाथजी ने दो बड़े ग्रन्थ व्रजभाषाभा गद्य में बनाये। इनके पीछे तुलसीदास, केशवदास, देवदास आदि अनेकानेक सुकवियों के गद्य वाले उदाहण मिलते हैं, किन्तु इनके गद्य ग्रन्थ नहीं हैं, केवल उदाहरण देख पड़ते हैं। इस समय से अनेकानेक टीकाकारों ने व्रजभाषा गद्य में भारी भारी कवियों के उत्कृष्ट ग्रन्थों की टीकायें रची हैं। इस प्रकार के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ देख पड़ते हैं। सूरति मिश्र ने संवत् १७६७ में व्रजभाषा गद्य में बैताल पचीसी नामक ग्रन्थ रचा। इसी प्रकार के कुछ अन्य ग्रन्थ भी बनाये गये, किन्तु फिर भी गद्य काव्य का अच्छा प्रचार नहीं हुआ।

समय पाकर जब अँगरेज़ी राज्य यहाँ फैला और पठन पाठन की प्रणाली ने उन्नति पाई, तब पाठ-शालाओं के लिए गद्य ग्रंथों की आवश्यकता हुई।

ऐसी दशा में गद्य ग्रन्थों का अभाव सा देख कर सरकार ने सं० १८६० में लल्लूलाल तथा सदल मिश्र से ग्रैार पीछे से राजा शिवप्रसाद से अच्छे गद्य-ग्रन्थ बनवाये। उन दोनें कवियें ने खड़ी बोली के साथ व्रजभाषा का भी थोड़ा बहुत संसर्ग रक्खा; किन्तु राजा साहब ने पहले पहल शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया। उनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने श्रेष्ठतर भाषा में रचना की ग्रैार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गद्य की महिमा आर्य्य-समाज ग्रैार अपने पुनीत ग्रन्थें से ग्रैार बढ़ाई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से वर्त्तमान गद्य का प्रारम्भ होता है। इन्होंने बहुत अच्छा गद्य लिखा ग्रैार नाटकें तथा पत्र पत्रिकाग्रें द्वारा इस का बहुत विशद समादर एवं प्रचार बढ़ाया। इनकी भाषा उचित संस्कृतांश लिए हुए ख़ूब मज़े की थी। पीछे से लेखकें ने संस्कृत के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाया ग्रैार वे अब भी बढ़ाते जाते हैं। संस्कृत शब्दों का अधिक बढ़ना बहुत से लोग इस कारण से पसन्द नहीं करते हैं कि उनके कारण से हिन्दी गूढ़तर होती जाती है ग्रैार उसे एक दूसरी भाषा का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि यद्यपि संस्कृत एक आर्य्य भाषा है, तथापि हिन्दी के लिए एक भिन्न भाषा अवश्य है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी का गैारव संस्कृत से ही प्राप्त हुआ है ग्रैार भविष्य में भी हो सकता है। कुछ लोगें का यह भी मत है कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाने के लिए विशेष संस्कृताश्रय आवश्यक है, क्योंकि एक देशीय शब्दों के आधिक्य से बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्र, गुर्जर, पंजाबी आदि महाशय हिन्दी को नहीं समझ सकेंगे, किन्तु यदि उसमें संस्कृत शब्दों का प्राधान्य रहेगा, ते लोग उसे अधिक सुगमता से समझ लेंगे, अथवा कम से कम उसका भाव हृदयंगम कर लेंगे।

हिन्दी का सब से बड़ा गैारव यह है कि यह भाषा सारे हिन्द की एक प्रकार से राष्ट्र भाषा अथवा लिंगुवा फ़्रैंका है। इसकी सीमायें बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्री, गुर्जर, राजपूतानी, पंजाबी, कशमीरी, नैपाली आदि सभी भाषाग्रें से मिलती हैं ग्रैार यद्यपि वे सब भाषायें एक दूसरी से नितान्त पृथक् हैं, तथापि हिन्दी से वे सब कुछ कुछ मिलती हैं अतः हिन्दी उन सब के लिए राज़ीनामा या मिश्रणस्थल है। यदि कोई एक भाषा सारे भारत के लिए सार्वदेशिक भाषा हो सकती है, ते वह अवश्यमेव हिन्दी है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हमारे अक्षर भी भारत के शेष सभी अक्षरें से श्रेष्ठतर हैं। अक्षरें के लिये चार बातें मानी गई हैं, अर्थात् सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन उपयोगिता ग्रैार सुन्दरता। इन चारें बातें का सार इसी क्रमानुसार है। अक्षरें के लिए सब से अधिक आवश्यक गुण सामर्थ्य है। अर्थात् वर्णमाला में यह शक्ति होनी चाहिये कि वह मनुष्यें द्वारा व्यवहृत सब प्रकार की ध्वनियें को सफलतापूर्वक लिख सके, ग्रैार प्रत्येक ध्वनि के लिये उसमें एक ही चिह्न हो, सीन, स्वाद, से, की भाँति अनेक नहीं। अनेक चिह्नों में जिज्ञासु भ्रमवश नहीं जान सकता कि वह कब किसका प्रयोग करे। यह गुण हमारी वर्णमाला में पूर्णता से है। उर्दू में सैकड़ें शब्द ऐसे हैं जो शुद्धता-पूर्वक लिखे ही नहीं जा सकते। ऊधव शब्द लिखकर उर्दू में उसे अनेकानेक प्रकार से पढ़ सकते हैं। यही दशा अँगरेज़ी आदि पाश्चात्य भाषाग्रें की है।

सामर्थ्य के पीछे सरलता भी वर्णों के लिये आवश्यक है। यदि ध्वनियें के लिये चिह्न ऐसे पेंचदार हें कि उनका स्मरण रखना ही कठिन हो, ते उनका सीखना दुर्घट होने से उनसे लाभ कम होगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे वर्णों में सरलता देशी ग्रैार विदेशी सभी वर्णों से अधिक है। त्वरालेखन-उपयोगिता ग्रैार सुन्दरता में कुछ कुछ विरोध पड़ता है, क्योंकि जो चिह्न जल्दी लिखा जावेगा वह भ्रमहीन तथा सुन्दर नहीं होगा। सुन्दर चिह्न बिना अधिक समय लगाने के नहीं बन

सकता । रोज़ाना कारबार के लिये शीघ्रता विशेष आवश्यक है और चिरकाल रक्खे जाने वाले लेखों के लिये सुन्दरता एक प्रशंसनीय गुण है। हमारे यहाँ वर्णों के शिरों पर रेखा केवल सुन्दरता के लिये लगाई गई है, अन्यथा इसका कोई प्रयोजन नहीं। भ, म, घ, ध, आदि में थोड़ा अन्तर डाल देने से बिना शिरोभाग की रेखा के भी काम चल सकता है । यही रेखा हमारे वर्णों की सुन्दरता बढ़ाती और शीघ्रलेखन शक्ति को घटाती है। आज कल कामकाज की वृद्धि से शीघ्रता भी एक आवश्यक गुण हो गया है। इन कारणों से पंडित समाज का विचार है कि साधारण रोज़ाना लेखों में शिरोभाग की रेखा न लिखी जाय, किन्तु चिरकाल स्थिर रखने वाले लेखों तथा छपी हुई पुस्तकों में इसका स्थिर रखना आवश्यक है। इस प्रकार हमारी वर्ण-माला में त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता दोनों स्थिर रहेंगी।

उपर्युक्त कथन में यह सिद्ध नहीं किया गया है कि हिन्दी अक्षरों में सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता भारतवर्ष में प्रचलित शेष सभी वर्णमालाओं से अधिक है; बरन् यह बात मान ली गई है। इसके सिद्ध करने के लिये एक भारी लेख की आवश्यकता है। ऐसा एक लेख हमने लिखा है और वह छपने गया है। यहाँ दिग्द-र्शन की भाँति वर्णमाला के लिये आवश्यक गुण दिखलाए गए हैं। हिन्दी में इन गुणों का होना प्रमाणित होने के लिये देश के सभी अक्षरों को नाग-राक्षरों से मिलाना होगा। जो लोग सब अक्षरों को जानते हैं अथवा पा सकते हैं, वे जानेंगे कि शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से नागराक्षरों की सरलता और त्वरालेखन-उपयोगिता और अक्षरों से बढ़ जाती है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि भारत में राष्ट्र-लिपि और राष्ट्र भाषा होने की योग्यता हिन्दी के अक्षर और भाषा दोनों में है। इसमें एक यह भी बहुत बड़ा गुण है कि इसके अक्षर और भाषा के अन्यान्य अक्षरों और भाषाओं के सामने बहुत अधिक देश और जन-संख्या में प्रचलित हैं। इनकी प्राचीनता भी सबसे बहुत अधिक है और हिन्दीसाहित्य भारत के अन्य साहित्यों से गुणों एवं पूर्णता में बहुत बढ़ा हुआ है।

ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि जब यह भाषा सब प्रकार से राष्ट्रीयता के योग्य है, तब इसका शब्दभंडार एवं उसका उपयोग ऐसा क्यों न बनाया जाय कि अन्य देशों के निवासी पंडित गण इसे समझें, अर्थात् इसमें संस्कृत के अधिकाधिक शब्द क्यों न लाये जावें ? इस प्रश्न को इस भाँति कहने पर सभी लोग इसका उत्तर 'हाँ' में देना चाहेंगे। माननीय बाबू शारदाचरण मित्र ने ऐसा ही कहा भी है। किन्तु इसी के साथ ही इससे भी अधिक महत्ता का दूसरा प्रश्न उठता है, और वह यह है कि, क्या अन्यदेशीय कुछ पंडितों के समझने योग्य करने के लालच से हम हिन्दी को ऐसा बनाना चाहते हैं कि उसी के देशों वाले साधारण जनसमुदाय उसे न समझ सकें, अर्थात् वह विदेशियों को सुगम और स्वदेशियों को दुर्ज्ञेय हो जावे ? इन कारणों से हमारा मत है कि हिन्दी की ऊँची शैली वाली और महत्तायुक्त पुस्तकों में संस्कृतमिश्रित भाषा लिखी जा सकती है; किन्तु साधारण पुस्तकों में साधारण एवं शुद्ध हिन्दी लिखनी चाहिये। ऊँची श्रेणी की पुस्तकों में भी प्रबन्धध्वनि, रस, अलंकार आदि अनेकानेक चमत्कार लाकर उत्तमता की वृद्धि होनी चाहिये, केवल संस्कृतवृद्धि से नहीं। भारतेन्दु बाबू हरि-चन्द्र के पीछे गद्योन्नति अच्छी हुई और अनेकानेक विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें हमारे यहाँ रची गई। अब हमारा गद्य-भंडार कृश नहीं है और दिनों दिन उन्नति कर रहा है। हमारा प्राचीन साहित्य पद्य ही है। हिन्दी का पहला ग्रन्थ पुष्य बन्दीजन-कृत एक अलंकारों का ग्रन्थ है, जिसमें दोहाओं द्वारा वर्णन है। कहते हैं कि यह संवत् ७७० में बना। इससे हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग

समझ पड़ती है। उस समय से अब तक के साहित्य काल को हमने अपने इतिहास-ग्रन्थ में आठ मुख्य भागों में विभक्त किया है। उनके नाम ये हैं:—

पूर्व-प्रारम्भिक हिन्दी (संवत् ७००—१३४४), उत्तर-प्रारम्भिक हिन्दी (१३४५—१४४४), पूर्व-माध्यमिक हिन्दी (१४४५—१५६०), प्रौढ़-माध्यमिक हिन्दी (१५६१—१६८०), पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१—१७९०), उत्तरालंकृत हिन्दी (१७९१—१८८९), परिवर्त्तन-कालिक हिन्दी (१८९०—१९२५) और वर्त्तमान हिन्दी (१९२६—अब तक)।

पूर्व प्रारम्भिक काल में थोड़े से ही कवि हुए, जिनमें चन्द और जल्हन प्रधान थे। इस समय में हिन्दी का प्राकृत भाषा से कुछ कुछ सम्बन्ध था। चन्द हमारे यहाँ का माना चासर या वाल्मीकि है। इसने परम प्राचीन कवि होने पर भी युद्ध, शृंगार और मृगया के बहुत बढ़िया वर्णन किये और अनेकानेक अनमिल विषयों को भी सफलतापूर्वक व्यक्त किया। इसके रासो ग्रन्थ में वर्णन-पूर्णता और विषय-बाहुल्य के अच्छे चमत्कार देख पड़ते हैं।

उत्तर-प्रारम्भिक काल में महात्मा गोरखनाथ प्रधान कवि थे। इनके द्वारा समादृत हो कर हिन्दी ने ब्राह्मणों एवं पंडितों में भी मान पाया और समय पर बड़े बड़े ऋषियों तथा महाराजाओं ने इसका ऐसा स्वच्छ समादर किया, यहां तक कि उन्होंने स्वयं उसमें साहित्य-रचना की और सैकड़ों कवियों को आश्रय प्रदान किया। ऋषि-समादर एवं राज-मान हिन्दी का बहुत बड़ा सौभाग्य रहा है। इतने राजाओं और ऋषियों ने किसी अन्य भाषा में साहित्यरचना न की होगी। राजाओं ने हमारे कवियों को पुरस्कार भी बहुत भारी दिये, यहां तक कि एक एक छन्द पर छत्तीस छत्तीस लाख रुपयों के दान हुए हैं। पूर्व-माध्यमिक काल में विद्यापति और कबीरदास बड़े ही अच्छे कवि हुए और महात्मा रामानन्द ने हिन्दी को अपनाया। विद्यापति ने साधारण बोल चाल में ही वह अलौकिक काव्यछटा दिखलाई, जिससे पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। कबीरदास ने भी रोज़ाना बोलचाल ही में अकथनीय साहित्य-सौन्दर्य भर दिया है। इनकी उलटबाँसी बहुत प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। महात्मा कबीरदास की रचनाओं में यद्यपि तुलसीदासजी की सी भक्ति-प्रगाढ़ता नहीं देख पड़ती है, तथापि उनमें सभी जगह सदुपदेश भरे हैं और साधारण घटनाओं के सहारे से इन्होंने बड़े बड़े दार्शनिक सिद्धान्त दिखलाए हैं। इनकी रचनाओं में अनोखापन ख़ूब है और वे सभी स्थानों पर खरी हैं। महात्मा वल्लभाचार्य्य और चैतन्य महाप्रभु ने इसी समय उत्तरी भारत में वैष्णवता द्वारा भक्ति-तरंगिणी की अटूट धारायें प्रवाहित कीं। वल्लभाचार्य्य से हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा। इन के कारण से अनेकानेक ऋषियों ने भजनों द्वारा कृष्ण-यश का समय पर गान किया।

प्रौढ़ माध्यमिक काल में सैकड़ों सुकवि हुए, किन्तु उन में भी महात्मा सूरदास, हित-हरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास, मीराबाई, जायसी, नरोत्तनदास, गंग, तानसेन, हरिदास, रहीम, रसखान, बीरबल, सुन्दरदास, घासीराम आदि बड़े बड़े कवि हुए।

महात्मा सूरदास के शरीर में माना स्वयं वाल्मीकि ने दूसरा शरीर ग्रहण किया था। इन्होंने सैकड़ों विषयों का सांगोपांग विस्तार-पूर्वक कथन किया और जिसका वर्णन किया, उसकी तसवीर सी सामने खड़ी कर दी। वर्णन-पूर्णता में वाल्मीकि को छोड़ कर कोई भी कवि इस महात्मा की बराबरी नहीं कर सकता। ऐसा सजीव वर्णन प्रायः कोई भी कवि नहीं कर सका। यदि जी लगा कर इन का कृष्ण-बालचरित्र एक बार पढ़िये तो बहुत काल तक चित्त से खेलती हुई बालक की तसवीर नहीं हटती। यही दशा अन्य वर्णनों की भी है। इनकी रचना कोरी रचना नहीं समझ पड़ती, वरन् उससे सजीवपन भासित होने लगता है और चित्त में उसका नाटक सा ऐसा अंकित हो जाता है कि महीनों तक भुलाये नहीं भूलता। कारण यह है कि इन्होंने पूर्ण-

तल्लीनता के साथ वर्णन किया है। जिस विषय का इन्होंने कथन किया है, उससे इन्हें पूर्ण सहानुभूति थी। उसी को इन्होंने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना रक्खा था। जो कुछ ये कहते थे, वही इनके चित्त में था। इसी कारण से इनकी रचना सच्ची बनती थी। महात्मा हितहरिवंश ने भी इसी प्रकार की चमकती हुई रचना की है, किन्तु वह मात्रा में थोड़ी है। महात्मा नन्ददास, मीराबाई और हरिदास भी उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

महात्मा तुलसीदास की भक्ति-प्रगाढ़ता सूरदास से भी बढ़ी हुई समझ पड़ती है। इन्होंने समस्त संसार को राममय देखा और वर्णन किया। हर पदार्थ और हर व्यक्ति के वर्णन में इनकी अखंड भक्ति टपकती है। मिथिला, दंडक, लंका, अयोध्या आदि जिन स्थानों में इन्होंने राम का पदार्पण कहा, वहाँ उनका कथन न करके उनके सहारे से राम का ही तदनुसार कथन किया। परम प्रगाढ़ भक्ति के साथ साहित्य के अनेकानेक अंगों और विषयों को उत्तमतापूर्वक व्यक्त करने में गोस्वामी जी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी सब रचना प्राकृतिक, यथोचित और अनमोल है। रहीम ने नीति बहुत उत्तम कही है और सुन्दरदास तथा रसखान ने भक्ति के हृदय-ग्राही कथन किये हैं। घासीराम की अन्योक्ति और नरोत्तमदास की साधारण घटनाओं वाले उत्कृष्ट कथन चित्त को चुरा लेते हैं। केशवदास की रचनाओं में आचार्य्यता और पांडित्य, दोनों का अच्छा चमत्कार है। इसमें बहुज्ञता की मात्रा ख़ूब है। इस समय में अनेकानेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके कथन स्थानाभाव से नहीं हो सकते।

पूर्वालंकृत काल से अलंकृत भाषा का प्रचार बढ़ा। हिन्दी भाषा जितनी श्रुतिमधुर है उतनी शायद अन्य कोई भी न होगी। पदलालित्य और अनुप्रास हिन्दी के प्रधान गुणों में हैं। अलंकृत काल में भाव-गाम्भीर्य्य और भाषा-सौन्दर्य्य दोनों की हमारे यहाँ बहुत अच्छी उन्नति हुई।

पूर्वालंकृत काल में सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, देव और लाल नामक बड़े ही उत्कृष्ट कवि हुए। इन के प्रवीण हाथों में हिन्दी की भाव और भाषा सम्बन्धी उन्नति कमाल को पहुँच गई। सेनापति ने भक्ति, श्लेष और अनुप्रास का बहुत अच्छा चमत्कार दिखलाया। इन्होंने स्वयं बहुत ही ठीक कहा है कि इनकी रचना अमृत-धारा के समान बहती है और अलंकारों से पूर्ण है। वे कहते हैं—

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन बिमल बिधि बुधि है अथाह की।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग सोधि
देखे सब अंग सम सुधा परबाह की॥
ज्ञान के निधान छन्द कोष सावधान जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै-अरथ कविताई निरबाह की॥ १॥

दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तौ कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै।
बिनुही सिखाये सब सीखिहैं सुमति जोपै
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूषन को करि कोकवित्त बिनु भूषन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है।
राम अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कवित रचत याते पद चुनि चुनि है॥ २॥

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है।
जो पै पद मन को हरष उपजावत हैं
तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है॥
अच्छर हैं बिसद करत ऊखै आपुस मैं
जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है।
मानो छबिता की उदवति सबिता की
सेनापति कविता की कबिताई बिलसति है॥३॥

जो प्रशंसा सेनापति ने अपने छन्दों की लिखी है वही वास्तव में हिन्दी कविता की है। हमारे यहाँ का

साहित्य वास्तव में इन्हीं गुणों से युक्त है। उदाहरण के लिये सेनापति के चार छन्द यहाँ लिखे जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु।

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका बिषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो
घरी एक बैठि कहूँ छाँहैं बितवत है॥ १॥

इस में कवि ने शब्दों ही द्वारा जेठ बैसाख की उष्णता का पूरा कथन कर दिया है।

वर्षा।

सेनापति उनये नये जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कै॥
घन सों गगन छप्यो तिमिर सघन भयो
जान्यो न परत मानो गयो रवि खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम जानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै॥ २॥

निवृत्ति मार्ग।

महा मोह कन्दनि मैं जकत जकन्दनि मैं
दिन दुख दन्दनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भांतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै।
हरिजनपुंजनि मैं बृन्दाबन कुंजनि मैं
बैठि रहौं कहूँ तरवर तर जाय कै॥ ३॥

कैतो करौ कोय पैये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय मन सोय ठहराइये।
आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥ ४॥

जान पड़ता है कि ये महाशय किसी मुसल्मान या सरकार के नौकर थे, सो कमलेक्षण विष्णु को छोड़ कर म्लेक्षों के सेवक बनना बुरा कह गये हैं।

बिहारी ने दोहों में बड़े ही बारीक विचार लिखे हैं और भूषण ने जातिप्रेम और जातीयता का चित्र खड़ा कर दिया है। साथही साथ आपने वीर-काव्य भी अद्वितीय किया। मतिराम की भाषा-मनोहरता और भावपूर्णता एवं सबलता बहुत ही सराहनीय है। देव कवि की भाषा बहुत ही अलंकृत और भाव बड़े ही ऊँचे हैं। इनका सामना सूर और तुलसी को छोड़ कर भाषा में दूसरा नहीं कर सकता। ये तीन कवि ऐसे हैं जो कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, होमर, वरजिल आदि का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। हमारे त्रिदेव की भाँति ये तीनों कवि हिन्दीसाहित्य में हैं। लाल ने केवल दोहा चौपाइयों में बीरकाव्य बहुत उत्कृष्ट किया है, जो देखते ही बन आता है। इस पूर्वालंकृत काल में अनेकानेक परमोत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके नाम तक लिखने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। उत्तरालंकृत काल में दास, भूप गुरुदत्त सिंह, रघुनाथ, सूदन, बोधा, गोकुलनाथ, रामचन्द्र, बेनी प्रवीन, प्रताप, पद्माकर आदि बड़े बड़े भारी और सबल कवि हुए। इन्होंने भाँति भाँति के ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य भंडार को पूर्णता दी। इस समय भाषारमणीयता की ओर और भी अधिक ध्यान रहा।

परिवर्त्तन काल में कोई भी बहुत बड़ा कवि नहीं हुआ, किन्तु रचनाशैली में समयानुसार परिवर्त्तन हुआ। प्राचीन समय में आनन्दप्रदान तथा

शिक्षा के लिये कविता होती थी, किन्तु लोकोपकार की ओर हमारे कवियों का ध्यान विशेषता से नहीं गया। परिवर्त्तन काल में इस देश में अँगरेज़ी राज्य फैला, जिससे जीवन-होड़ (struggle for existence) की उचित परिपाटी हमारे यहाँ दृढ़ हुई और दिनों दिन होती जाती है। इस कारण लोकोपकारी विषयों से भी काव्य का सम्बन्ध हुआ और इस नये प्रकार की कविता का भी प्रचार हो चला। इसी के साथ गद्य ने भी स्वाभाविक रीति से बल पाया।

वर्त्तमान काल में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सर्वोत्कृष्ट कवि हुए। इनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनत्व दोनों का मिश्रण था। इन्होंने लोकोपकारी विषयों को भी लेकर देशभक्ति का मान बढ़ाया और शृंगार, हास्य तथा वीर रसों की भी सोहावनी कविता की। इनके पीछे खड़ी बोली का अच्छा प्रचार हुआ और कविता में भी उसका मान बढ़ रहा है। इस समय हमारे यहाँ उचित शिक्षाप्रद सत्य घटना-पूर्ण उपन्यासों, सामाजिक सुधार और देशभक्तिपूर्ण उपदेशप्रद नाटकों तथा ऐतिहासिक विषयों से पूर्ण महाकाव्यों की पद्य में आवश्यकता है। अब तक केवल हमें ३८०० हिन्दी-कवियों का पता लग चुका है। जिनका वर्णन हमने अपने हिन्दी काव्य के इतिहास-ग्रन्थ में किया है। हिन्दी में सभी विषयों पर हज़ारों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, किन्तु उनमें से बहुत ही अधिक अप्रकाशित हैं।

सारांश यह कि, हिन्दी एक प्राचीन भाषा है, इसका फैलाव भारत की सभी भाषाओं से अधिक है, यह राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। इसकी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है। इसका साहित्य भाषा, भाव और ग्रन्थ-बाहुल्य में अद्वितीय है और सैकड़ों प्रकार के ग्रन्थ इसमें भरे पड़े हैं। इसकी काव्यरीति बड़ी ही पुष्ट और सुवर्णित है। भाषा-माधुर्य्य इसका बहुत बड़ा गुण है। यह सब प्रकार के सौन्दर्य्य से पूर्ण है, सरकारी राज्य के आरम्भ से इसमें लोकोपकारी विषय भी आ रहे हैं। बहुत बड़े कवियों का इसमें अच्छा बाहुल्य है और यदि यह एम० ए० तक पढ़ाई जाय, तो भी दस बीस वर्षों के लिये पाठ्य ग्रन्थ नये नये तो हम ही बतला सकते हैं।

यह एक ऐसा भारी विषय है कि इस पर कोई चाहे जितना लिखता हुआ चला जाय। इसमें उदाहरण-बाहुल्य से लेख की चमत्कार वृद्धि होती; किन्तु समयाभाव से हमने उदाहरण न देकर और कवियों के विषय में प्रायः कुछ भी न कह कर यहां हिन्दी के महत्व का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। यदि उदाहरण देकर उसके गुण दिखलायें जांय तो एक एक छन्द पर कई कई पृष्ठ लिखने पड़ें। ऐसे दो चार उदाहरण हमने मिश्रबन्धुविनोद की भूमिका में दिखलाए हैं, और यदि अवकाश मिला तो किसी टीकावाले ग्रन्थ में और लिखेंगे। इस स्थान पर इतना ही कह देना हम यथेष्ट समझते हैं कि जिन्हें उत्कृष्ट काव्य के कुछ उदाहरण देखने हों, वे महाशय हिन्दी नवरत्न के पृष्ठ नं० २६, ४७, ५१, ६१, ६५। (तुलसी) (सूर) १५९, (देव) १७६, १८५, २०५, (विहारी) २२८, २२९, २३२, २३३, २३६ (गँवारी), २३७, २४१, (भूषण) २६३, २६४, २६५, (केशव) २८०, (मतिराम) ३०९, ३११, (चन्द) ३४२ से, हरिश्चन्द्र ३७८ से ४ पृष्ठ का अवलोकन करें। *

—:o:—

राव मालदेव और सती उमादेवड़ी।

(लेखक—श्रीयुत साँवलजी नागर।)

किसी देश की अवस्था, देश की रीति नीति, देश के सन्तानों की कर्त्तव्यपरायणता इत्यादि बातें इतिहास के द्वारा जानी जाती हैं। जितना ही जो देश प्राचीन होगा, उसका इतिहास भी उतना ही प्राचीन होगा। जितना ही जो देश

* यह लेख लखनऊ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर हिन्दी साहित्य समिति में गत फर्वरी मास में पढ़ा गया था।

धनाढ्य, उपजाऊ, और उत्तम होगा, उस देश का इतिहास भी उतना ही उत्तम, शिक्षादायक और विशेष-घटनासूचक होगा। यही हाल हमारे भारतवर्ष के इतिहास का भी है। संसार के इतर देशों से भारतवर्ष प्राचीन है; धनाढ्य है; उपजाऊ है; उत्तम है और सबसे विशेष शिक्षादायक भी है। यही कारण है कि भारतवर्ष का इतिहास इतना बड़ा है कि एक प्रकार से उसे संसार का इतिहास कहना चाहिए। रामायण, और महाभारत जिसे सभ्यताभिमानी अँगरेज़ लोग तक आदर की दृष्टि से देखते हैं, जिसकी सत्‌शिक्षा ग्रहण करने के लिए बड़े बड़े विद्वान्, जो कि भारतवासियों को असभ्य समझते हैं, उत्सुक हो रहे हैं; वह रामायण और महाभारत ग्रन्थ भारतमाता के दो चार सपूत राम, युधिष्ठिर, दुर्योधनादिकों की जीवनसम्बन्धी घटनाओं का समूह ही है। जिस भारत के एक बालक रामचन्द्रजी की जीवनसम्बन्धी घटनाओं को लिखने के लिए महात्मा वाल्मीकि को रामायण सरीखा बृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ा; पाण्डवों का चरित्र लिखने के लिए वेदव्यास जी को महाभारत लिखना पड़ा, पृथ्वीराज का चरित्र लिखने में महाकवि चन्द को इतना बड़ा रासो लिखना पड़ा, उस भारतवर्ष का आज तक का इतिहास कितना बड़ा होगा यह समझना भी बहुत कठिन है। प्रेस नहीं था, ग्रन्थ हस्तलिखित होते थे। तिस पर वे इतने बढ़ गए थे कि असभ्य यवनों को उन्हें देखने ही से व्याकुलता प्राप्त होने लगी और अन्त में ये ग्रन्थ हम्मामख़ाने में लकड़ी और कोयलों की जगह जलाये जाने लगे। यहाँ तक हुआ कि ये ग्रन्थ फाड़ डाले गए, इनकी गोलियाँ बना बना कर मछलियों को खिला दी गईं और ये जला दिए गए, सब सब नौबत हुई, परन्तु भारतवर्ष के सपूतों का चरित्र नष्ट न हो सका। आज तक जितने समाचार-पत्र और मासिक-पत्र इत्यादि निकले हैं, निकलते हैं और निकल रहे हैं उन सब में इस भारतवर्ष के इतिहास का अंश अवश्य ही होता है। वर्त्तमान समय में जितनी ऐतिहासिक पुस्तकें प्राप्त होती हैं वे विशेषतः विदेशीय विद्वानों की कृपा से लिखी गई हैं। ये लोग हमारी भाषा आदि से भी पूर्णरूप से परिचित नहीं हैं, तब इनकी बनाई पुस्तकें कहाँ तक पूर्ण होंगी यह पाठक गण विचार लें। यही कारण है कि हर एक मासिक-पत्र इन इतिहासों की पूर्ति करने का उद्योग कर रहा है। यह घटना जो आज हिन्दीपाठकों के चित्तविनोदार्थ यहाँ लिखी जाती है, बहुत संक्षेप में गुजराती भाषा के ६० वर्ष के पुराने मासिकपत्र "बुद्धिप्रकाश" में अभी हाल में निकली है।

राव मालदेव जोधपुर का राजा था। टाड राजस्थान में लिखा है कि "मालदेव संवत् १५८८ (सन् १५३१ ई०) में जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। मारवाड़ के बड़े बड़े राजाओं के समान मालदेव भी मारवाड़ के इतिहास में एक महत् चरित्र स्थापित कर गया है। उसके राज्यकाल में मारवाड़ की जैसी उन्नति हुई थी, यदि उसमें कुछ भी चेष्टा की जाती तो वह देश रजवाड़ों में सब देशों का सिरमौर गिना जाता। परन्तु राव मालदेव ने अपने यत्न में न्यूनता न की। जिस स्थान से दिल्ली और मारवाड़ की सीमा विभक्त है उस स्थान पर कई एक क़िले बने थे, वे क़िले दिल्ली के राजाओं के अधीन थे। उस समय अवसर पाकर मालदेव ने उन सब क़िलों को अपने वश में कर लिया। उसका गौरव दिन दिन बढ़ने लगा। उसके गौरव-वृद्धि के मार्ग में उस समय एक भी काँटा वर्त्तमान न था। वीरकेसरी राणा साँगा के मरने पर मेवाड़-राज्य में जो घोर उलट पलट और विग्रह उपस्थित हुआ, उसमें सभी मुग़ल, पठान आदि शक्तिमान् मुसलमान लिप्त थे। उस समय मारवाड़ की ओर किसी की भी दृष्टि न पड़ी। अतएव राजा मालदेव ने अप्रतिहत प्रभाव से अपनी असीम प्रभुता प्रगट की थी। उसने ऐसा सुअवसर पा अपने राज्य के बढ़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की, इस कारण जो शत्रु मित्र उसकी उन्नति के मार्ग में कंटक-स्वरूप खड़े हुए थे, उन्हीं को अपनी

तलवार से काट उसने उनके राज्य पर अपना अधिकार किया। धीरे धीरे वह मारवाड़ का अति श्रेष्ठ राजा हो गया। इतिहासलेखक फ़रिश्ता ने उसे इसकी अपेक्षा ग्रैार भी उच्च सम्मान दिया है। वह लिखता है कि "मालदेव ही उस समय में हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध राजाग्रें में गिना जाता था"।

कहते हैं कि इस वीरपुङ्गव राव मालदेव को बहुत बड़ी अवस्था तक दाढ़ी या मोंछ नहीं निकली थी। इस कारण अन्यान्य राजा लोग इसे अपनी बेटियाँ न देते थे। इसने अपने विवाह के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किए, परन्तु कोई क्षत्रिय अपनी कन्या का विवाह करने पर राज़ी न हुग्रा। जेसलमेर के भट्टी राजा की एक परम सुन्दरी कन्या थी। मालदेव ने इसके लिये बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु वह राज़ी न हुग्रा। इससे मालदेव बड़ा ही दुःखित हो गया। उसने सोचा कि मेरी यह विशाल सम्पत्ति, यह क्षत्रियत्त्व, यह देश-सेवा, यह यवन-विजय किस काम ग्रावेगा। पुत्र के बिना यह सब व्यर्थ है। पुत्र के बिना इस देश के सम्बन्धियों की कौन कहे; पितृगण भी मुझे निपुत्री जान घृणा की दृष्टि से देखेंगे। सोचते सोचते उसने यह निश्चय किया कि चल कर हिमाचल पर्वत पर तपस्या करनी चाहिये! यदि महादेव प्रसन्न हुए तो ठीक ही है, नहीं तो जीवित रहकर शत्रुग्रें के कष्ट देने की अपेक्षा यमराज की सेवा स्वीकार करना सहस्र गुण श्रेय है। यह सोचकर वह अपना राज्य-भार मंत्री को सौंप हिमाचल पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया! उसकी दृढ़ भक्ति से महादेव प्रसन्न हुए ग्रैार उसे मनोवाञ्छित फल (दाढ़ी, मोंछ) की प्राप्ति भी हुई। प्रसन्नतापूर्वक वह जोधपुर लैाटा, ग्रैार एक सेना साथ ले जेसलमेर के भट्टी राजा के राज्य पर; जिसने बहुत समझाने, मनाने, फुसलाने ग्रैार धमकाने पर भी अपनी कन्या का विवाह राव मालदेव के साथ सम्पन्न करना अस्वीकार किया था, चढ़ाई की। जब भट्टी राजा ने देखा कि मालदेव सरीखे प्रतापी वीरपुङ्गव को जीतना कठिन है तो उसने माफ़ी माँगी ग्रैार अपनी परम रूपवती कन्या उमादेवड़ी का विवाह राव मालदेव के साथ कर दिया।

विवाह की रात्रि को राव मालदेव एक उत्तम रंग महल में ठहराए गए। इसी दिन महाराणी उमादेवड़ी भी इस रंग महल में शयन करने वाली थीं। परन्तु पति की सेवा में जाने के पूर्व उमादेवी को अपने सम्बन्धियों से भेंट करना ग्रैार अपना भली भाँति श्रृङ्गार करना परमावश्यक था। रात पड़ते ही मालदेव ने शराब पी ली ग्रैार उमादेवी को बुलाने के लिये अपना सहचर भेजा! उमादेवी ने कहलाया कि "सम्बन्धियों से भेंट कर मैं थोड़ी देर में ग्राती हूँ।" परन्तु राव तो नशे की तरंग में था। उसे उस समय रीति नीति भले बुरे का ख़याल कहाँ था। थोड़ी ही देर में घबड़ाकर उसने दूसरी बेर ग्रादमी भेजा। परन्तु उमा को देर थी। इससे राव मालदेव ने पुनः बुलावा भेजा। उमादेवी ने सोचा कि बार बार नैाकरों के द्वारा कहलाना ठीक नहीं, क्योंकि महाराज रूष्ट होगें। ग्रतएव उसने इस बार अपनी ख़ास दासी से कहलाना निश्चय किया। इसकी एक स्वरूपवान् दासी थी जिसका नाम ब्रह्मा था। महारानी ने ब्रह्मा को कहा कि "रावजी से कहदे कि १० मिनट क्षमा करें, मैं ग्राभूषण पहिन ग्रभी ग्राती हूँ।" ब्रह्मा बहुत रूपवती थी। वह जानती थी कि राव मालदेव इस समय नशे की तार में है, ग्रतः इस समय जाना उचित नहीं है। इससे उसने महारानी से बहुत निवेदन किया कि इस समय न भेजें। परन्तु महारानी ने एक न मानी। ब्रह्मा विवश हो गई। उमादेवी का विवाह था। ब्रह्मा उसकी प्रधान सेविका थी, इससे ब्रह्मा ने भी उस दिन अपना श्रृङ्गार किया था। ज्योंही ब्रह्मा ने रंगमहल में पैर रक्खा, मदान्ध मालदेव उस पर झपट पड़ा। उसने यह न सोचा कि यह दासी है या महारानी। थोड़ी देर में महारानी भी ग्रा पहुँची। अपने पति को दासी के पास देखकर महारानी के दुःख ग्रैार क्रोध का ठिकाना न रहा। उनके

हाथ से मद्यपात्र* नीचे गिर गया। यह देख ब्रह्मा बड़ी भयभीत हुई और पलंग से उतर खिड़की के रास्ते बाहर कूद गई। बाहर की ओर मालदेव का सरदार बाघोजी राठोर पहरा दे रहा था। उसने ब्रह्मा को गिरते देखा और अपने हाथ पर रोक लिया। सरदार ने जाना कि महारानी होंगी। परन्तु ब्रह्मा ने आद्योपान्त सब हाल उसे कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि यदि यहाँ से तू भाग न जायगा तो तेरा बचना कठिन हो जायगा। बाघोजी बेतवा नदी के समीप कोटडा नामक नगर का सरदार था। ब्रह्मा के स्वरूप पर मोहित हो उसे साथ लेकर उसने कोटडा की ओर भागने का निश्चय किया। उसने ब्रह्मा को अपने घोड़े पर बिठा लिया और कोटडा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में जितने चारण, भाट आदि मिलते थे उन्हें ब्रह्मा अपने आभूषण देती जाती थी। इससे किसी ने भी यह न पूछा कि "तुम कौन हो"। कोटडा पहुँच कर बाघोजी ने ब्रह्मा को अपनी पटरानी बनाया। धीरे धीरे यह हाल अन्यान्य सर्दारों को विदित हुआ। जब भाटों तथा चारणों को यह विदित हो गया कि ब्रह्मा एक दासी थी, तब उन्होंने उसके हाथ से दक्षिणा लेना बन्द कर दिया। परन्तु राठोर वीर बाघोजी और ब्रह्मा ने यह एक व्रत लिया था कि चारणादिकों को कुछ दान देने के पश्चात् भोजन करना, इसके पूर्व नहीं। चारणादि के दान न ग्रहण करने से इनको बड़ा दुःख हुआ और ये लोग उपवास करने लगे। इनको निश्चय हो गया कि उपवास करते करते हमारी मृत्यु होगी। अतः ये लोग कोटडा नगर के एक देव-मंदिर में चले गए और वहाँ उपवास करने लगे। यहाँ इन लोगों ने २१ दिन तक उपवास किया। इनकी दृढ़ता पर महादेव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने वरदान दिया कि "जब तक तुम लोग जीवित रहोगे, भाट चारण तुम्हारी दक्षिणा प्रसन्नता से ग्रहण करेंगे। तुम जितना चाहोगे, दे सकोगे और जब तुम्हें कोई संकट आ पड़ेगा, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।" महादेव अन्तर्द्धान हो गए। बाघोजी पत्नी सहित कोटड़ा राज-भवन को लौटे। यहाँ पहुँच उन्होंने कई सेर सोना अपने एक कवि को दान दिया। इनके इस दातव्य का समाचार सुन देश देश के ब्राह्मण दान लेने आने लगे। यह बात जोधपुर के राव मालदेव को खटकने लगी। उन्होंने अपने भाट को, जो कि सब भाटों का राजा था, बाघोजी को किसी प्रकार प्रतिज्ञा-च्युत कराने के लिए कोटड़ा भेजा। जब बाघोजी को जोधपुर के भाट के आने का हाल विदित हुआ तो वे सरहद पर भाट-राज की अगवानी करने को गए। इन्होंने भाट-राज का बहुत आदर सत्कार किया। भाट-राज ने कहा कि "रास्ते की गरमी से मैं व्याकुल हो रहा हूँ अतः मैं किसी बाग़ में ठहरना चाहता हूँ।" संयोग से कोटड़ा में कोई बाग़ ही न था। बाघोजी तो इच्छा-दान देते थे। एक यही ऐसी समस्या थी जिस की पूर्ति करना बाघोजी के लिये दुष्कर था। अस्तु, बाघोजी ने भाट से कहा कि "कुछ देर ठहरो मैं बाग़ की ताली लेकर आता हूँ"। बाघोजी महल में लौटे। उन्होंने सब हाल ब्रह्मा से कहा। ब्रह्मा ने कहा "कोई चिन्ता नहीं। भक्तिभूषण महादेव मेरी सहायता करेंगे। आप भाट को रथ पर बैठा कर आदर के साथ ले आइये, मैं बाग़ का प्रयत्न किये देती हूँ।" उसने महादेव का ध्यान किया। परमात्मा की कृपा से बाग़ तैयार हो गया। भाटराज उसी में ठहराया गया। भाट-राज समझ गया कि इन पर दैवी कृपा अवश्य है, नहीं तो ऐसा उत्तम बाग़ कैसे बन सकता

---

* उन दिनों प्रथम बार जब राजपूत-बाला अपने पति की सेवा में जाती थी तब एक रिक़ाबी में पान इलायची और मद्यपात्र ले जाती थी। कितनी ही जातियों में बादाम, मिश्री, नारियल आदि ले जाने की रीति है।

है। उसने बाघोजी की बड़ी प्रशंसा की * और कुछ दिन वहां ठहर कर वह जोधपुर लौटा। जब जोधपुर के मालदेव ने दैवी सहानुभूति का हाल सुना तो फिर उसे बाघोजी के छेड़ने की हिम्मत भी न हुई। इस प्रकार बाघोजी की सत्कीर्ति दिन दिन बढ़ने लगी।

इधर राव मालदेव की स्त्री उमादेवड़ी ने शराब का पात्र भूमि पर फेंक दिया और प्रतिज्ञा की कि "आज से मालदेव; जिसने परस्त्रीगमन किया है, मेरे भाई के समान है और मैं जीते जी इनके साथ पत्नीभाव से न रहूँगी"। यह निश्चय कर वह रंग-महल से राजभवन लौट आई। राव मालदेव ने नशा उतरने पर महारानी को बहुत बहुत समझाया परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में मालदेव जोधपुर लौट गया। उमादेवी के पिता ने सोचा कि मालदेव बड़ा क्रोधी है इस लिये उन्होंने भय के मारे उमादेवड़ी को हठात् जोधपुर भेज दिया। यहाँ भी उमादेवी को अनेक प्रकार से समझाया गया, परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रही। अन्त में मालदेव ने अपने भाट को उमा के समझाने के लिए भेजा। भाट ने राजा से कहा कि "मैं जाता हूँ। कुछ समय बाद आप भी वहीं पधारें"। भाट उमा के भवन में गया और उसके धैर्य, रूप, गुण की प्रशंसा करने लगा। रानी प्रसन्न हुई और कुछ भेंट देने लगी। भाट ने कहा कि "आप विरक्त भाव से अपना जीवन व्यतीत करती हैं। न शृङ्गार आदि करती हैं और न उत्तम वस्त्र ही धारण करती हैं। अतः मैं आप से विरक्त आश्रम में कुछ भी नहीं ले सकता। जब आप शृङ्गार कर अच्छे वस्त्र धारण करेंगी उसी समय मैं आप से दान ले सकता हूँ।" रानी ने भाट को कुछ भेंट देना निश्चय कर लिया था, इससे उसने आभूषण, वस्त्र इत्यादि धारण किए। इतने ही में मालदेव भी आ पहुँचा। राव को देखतेही भाट-राज चले गए। राव ने स्वयं बड़ी ही विनय से उमा को समझाया, परन्तु वह न मानी। आख़िर राव उमादेवड़ी पर झपटा परन्तु उमा नीचे कूद गई। संयोग से नीचे तोशक-ख़ाने की वस्तुएँ धूप में रक्खी गईं थी। इससे रानी को आघात न पहुँचा। वह जेसलमेर चली गई और मालदेव की जीवित अवस्था तक न लौटी।

राव मालदेव ने और भी १६ रानियों से विवाह किया था। एक समय वह बीमार पड़ा। उसे निश्चय हो गया कि मेरा अन्तिम समय निकट है। अतः उसने अपनी १६ रानियों को बुलाया और पूछा कि "मेरे साथ कौन सती होने को तैयार है?" कोई भी तैयार न हुई। सबों की बोली बन्द हो गई। यह हाल देख भाट ने कहा कि "सरकार के साथ यदि कोई सती होगी तो उमादेवड़ी ही होगी"। परन्तु मालदेव को विश्वास न हुआ। उसने कहा जिस स्त्री ने मेरी नीचता के कारण जन्म भर दुःख भोगा, वह मेरे लिये क्योंकर सती होगी"। भाट के बहुत कहने पर मालदेव ने अपने मृत्यु-काल का सन्देशा उमादेवड़ी को कहला भेजा। उमादेवड़ी सुनते ही सती होने के लिये तैयार हो गई। यह देख उसके घर की स्त्रियों ने उसे कितना ही समझाया कि "तुम ने विवाह का कोई सुख नहीं पाया, फिर तुम क्यों सती होती हो"। यह सुन उमा ने कहा—"जिस मान के लिये हम्मीर रणथंभोर में मारा गया; जिस मान के लिये वीर पातल पावागढ़ के मैदान में लड़ मरा; जिस मान की रक्षा के लिये चंडूराव नागोर में; कहान्डदे झालोर में; दुदा जेसलमेर के मैदान में

---

* उसने बाघोजी की प्रशंसा में ये दोहे कहे थे—

कोटां सरे काटडो, गढ़ां जेसलमेर—
राणीयो सरेभरमदे, कुंवरां बाघ नरेश ॥ १ ॥
कीरतरो जामों बन्यो, माथो जसरो मोड—
गोठ करी घोड़ा दिये, ए बाघो राठोड ॥ २ ॥

अर्थ—क़िलों में सबसे बड़ा क़िला कोटड़ा का है, गढ़ में बड़ा जेसलमेर है, रानियों में सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मा है और राजाओं में बाघोजी श्रेष्ठ हैं। बाघोजी ने कीर्त का जामा तथा सुयश का मुकुट धारण किया है। घोड़ा, हाथी दान करता है ऐसा दानी राठोर-नरेश बाघोजी है। भाट का इतना ही कहना बाघोजी के लिये बहुत था, क्योंकि भाट लोग गुरू थे। इनका वचन हर एक राजपूत के लिये मान्य होता था।

मारा गया, उसी मानरक्षण के लिये, अपने पिता माता की कीर्ति बढ़ाने के लिये, अपनी ज्ञाति की रक्षा ग्रैार सन्मान के लिये हम सब रानियां को भी सती होना चाहिए * । यह कह कर उमादेवड़ी जी जोधपुर गई ग्रैार अपने मानसिक पति मालदेव के शव के साथ सती हो गई। मालदेव अपने समय के राजपूतों में से एक साहसी ग्रैार प्रचण्ड पराक्रमी राजा था। यदि वह कुछ दिन ग्रैार भी जीवित रह कर यैावन का प्रचण्ड पराक्रम स्थिर रख सकता, तो वह वीरचूड़ामणि महाराणा प्रतापसिंह के साथ उदय होते हुए मुग़लपराक्रम के विरोध से राजपूत जाति की स्वाधीनता ग्रैार गैारवगरिमा को अटल देख सकता। किन्तु मारवाड़ का अत्यन्त ही दुर्भाग्य था, इसी से वीर-कुल-तिलक राणा प्रताप से मित्रता होने के पहले ही वह राठोरवीर मालदेव इस असार संसार से चल बसा।

—:०:—

विवाह का इतिहास

(लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा।)

(पूर्वप्रकाशित से आगे।)

धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई ग्रैार लोगों की स्त्री पुत्र में ममता अधिक होती गई। पर स्त्रियाँ स्वतंत्र बनी रहीं ग्रैार एक के अधिकार में रहते हुए उनको पूर्ण अधिकार था कि जब चाहें जिससे संभोग करें। वे एक पति के होते हुए अन्य पुरुषों की कामना करती थीं ग्रैार उस समय उनका यह आचरण व्यभिचार नहीं माना जाता था। महाभारत के देखने से मालूम होता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उठा दिया।

वभूवोद्दालकोनाम महर्षिरिति नः श्रुतम्।
श्वेतकेतुरितिख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः॥
मर्य्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना।
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोधसे॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत्॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा श्वेकेतुमुवाचह॥
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः।
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामंगना भुवि॥
यथा गावस्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजा।
ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे॥
चकार चैव मर्य्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि।
मानुषेषु महाभागे नत्वेवान्येषु जन्तुषु॥
तदा प्रभृति मर्य्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम्।
व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्य्यामद्यप्रभृति पातकम्॥
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्।
भार्य्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्॥
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि।
पत्यानि युक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च॥
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेवहि।
इति तेन पुरा भीरु मर्य्यादा स्थापिता बलात्॥

(आदि पर्व १२२ अध्याय)

सुनते हैं कि उद्दालक नाम के कोई ऋषि थे। इन उद्दालक जी के श्वेतकेतु नामक महर्षि उत्पन्न हुए इन्हीं श्वेतकेतु जी ने कोप करके (नहीं उस समय की प्रथा को असभ्य ग्रैार दूषित समझ) यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति के होते हुए उसकी आज्ञा के विरुद्ध किसी अन्य पुरुष से संभोग न करे। कहते हैं कि एक समय श्वेतकेतु के पिता उद्दालक जी के सामने एक ब्राह्मण आया ग्रैार उसने उनकी माता

* जण लाज हमीर जुजे मुग्रो रणथंभर।
जण लाज पातल मुग्रो पावे गढ़ ग्रंतर॥
जण लाज चंद्रराव मुग्रो नावेर तणे सल।
कानडदे झालोर मुग्रो दुदो जेसलमेर॥
वडगरां लाज वधारवां कल उजल सम वा करण।
सोय लाज काज उमासनी मडची सऊ कोई मरण॥

का हाथ पकड़ लिया और यह कह कर चलता हुआ कि हम दोनों जाते हैं। श्वेतकेतु से यह असभ्य व्यवहार देख कर रहा न गया और क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। उनको कोप करते देख उनकी माता बोली, बेटा क्रोध मत करो। यह सनातन (नित्य नहीं प्राचीन) धर्म है। संसार में स्त्रियाँ सब वर्णों की अनावृत हैं अर्थात् वे स्वतंत्र हैं और जैसे गाय आदि पशु में व्यवहार है उसी तरह अपने वर्ण के साथ स्त्रियों को रमण करने का अधिकार है। पर ऋषि-पुत्र श्वेतकेतु को वह प्राचीन सनातन-धर्म अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उस समय से मनुष्यों के लिए यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति की आज्ञा के प्रति-कूल किसी अन्य के साथ संभोग न करे। उसी समय से पति की आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संभोग करना पतिव्रता स्त्रियों के लिए भ्रूणहत्या के समान पातक समझा जाने लगा है। कुन्ती से पांडु कहते हैं कि हे कुन्ती! यदि कोई स्त्री पति से आज्ञा पाकर पुत्र के लिए नियोग नहीं करती तो उसे भी भ्रूण-हत्या के समान पातक लगता है। यह मर्य्यादा उसी धर्म-भीरु ऋषि ने स्थापित की है कि स्त्री पति की अवज्ञा न करे।

उस समय से स्त्रियाँ पति की आज्ञा पालन करने को बाधित हुईं। पर फिर भी महर्षि दीर्घतमा के समय तक पति की अयोग्यता की अवस्था में स्त्रियाँ उसके जीते जी दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि दीर्घतमा अंधे थे, अतः वे अपने बालबच्चों का भरण पोषण नहीं कर सकते थे। एक बार उनकी पत्नी ने जब उनकी अवज्ञा की तो उन्होंने यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री चाहे उसका पति कितना ही अयोग्य क्यों न हो उसे छोड़ न सके। उनके विषय में महाभारत में लिखा है कि एक समय दीर्घतमा जी ने अपनी स्त्री से कहा कि तू क्यों मुझसे द्वेष रखती है? पत्नी ने कहा कि पति को भरण करने ही से भर्त्ता कहते हैं। आप अंधे हैं, मैं परिश्रम करके आपका और आप के लड़कों का पालन करती हूँ। ऋषि ने कहा-मुझे राजा के यहाँ ले चलो तो मैं धन ला देता हूँ। पर स्त्री ने कहा कि मुझे आप के धन की आवश्यकता नहीं। उसके इस वाक्य पर ऋषि ने क्रोध कर के कहा—

> अद्य प्रभृति मर्य्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
> एक एव पतिर्नार्य्या यावज्जीवं परायणम्॥
> मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्।
> अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः॥
> अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम्।
> यद्यस्तिचेद्धनं सर्वं वृथाभोगा भवंतु ताः॥
> अकीर्त्तिः परिवादश्च नित्यं तासां भवन्तु वै।

आज से मैं यह मर्य्यादा करता हूँ कि यावज्जीवन स्त्रियाँ पति के आश्रित रहें। पति के जीवन-काल में वा उसके मरने पर ये कभी दूसरे पुरुष का आश्रय न लें और यदि आश्रय लें तो वे पतित हो जावें और आज से पतिहीन स्त्रियों के लिए यह घोर पातक होगा और धन होने पर भी उनको वे भोग न सकेंगी और यदि भोगेंगी तो सदा उनकी अप-कीर्त्ति और निंदा होगी।

धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता जाती रही और वे पशु अन्न धन आदि के समान पुरुषों के उपभोग की सामग्री की तरह मानी जाने लगीं, यहाँ तक कि लोग उन्हें पति के मरने पर जिस तरह उसके अन्य आमोद-प्रमोद की चीज़ों को शव के साथ इस उद्देश से जलाते थे कि वे उन्हें स्वर्ग में वा दूसरे लोक में मिलेंगी उसकी पत्नियों को भी उनके साथ जला देते थे। यही पीछे बढ़ कर सती की प्रथा की प्रकृति हुई। उस समय आर्य्य-जाति बड़ी व्यसनी हो गई थी। एक एक पुरुष के सैकड़ों स्त्रियाँ होती थीं। स्वयं ऋषियों की भी जो तपोधन कहलाते थे अनेक स्त्रियाँ होने का पता चलता है। याज्ञवल्क्यजी सरीखे ब्रह्मवादी की भी दो स्त्रियाँ मैत्रेयी और गार्गी थीं। कहाँ तक कहें, आर्य्य-जाति अनार्यों की स्त्रियों पर गीध की नाईं टूटती थी और यज्ञों की दीक्षा के समय भी लोग अनार्य्य स्त्रियों से गमन करते थे। इसीलिए ब्राह्मण ग्रंथों में 'न रामामुपेयात्' अर्थात् यज्ञदीक्षा के समय रामा अर्थात् शूद्रा से गमन न

करें—इत्यादि प्रकार के नियम बाँधने पड़े। इसी दुर्बलता के समय जब वंशोच्छेद होने लगा तो राजा वेणु ने नियोग की प्रथा को बलात् चलाया। मनुजी ने इस प्रथा को पशु-धर्म कहके अपनी स्मृति में इसकी निन्दा की है—

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणे राज्यं प्रशासति॥
स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥

राजर्षि वेणु के समय में विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिए इस पशु-धर्म का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डलका राजा था। उसी कामी ने वर्णों का घाल-मेल किया।

नियोग में उत्तम संतान उत्पन्न करने के लिए सुन्दर बलवान् ब्रह्मचर्य्यपूर्ण पुरुष को ढूंढ़ कर उससे नियोग कराते थे। यह प्रथा आर्य्यों ने स्वयं निकाली वा अन्य असुर आदि जातियों से ली इसका ठीक पता नहीं लचता।

नियोग चला, अच्छे संतान उत्पन्न किये जाने लगे; पर स्त्रियों को उनके पतियों के साथ जलाने की प्रथा ने सती का रूप धारण कर लिया। स्त्रियों को अपने पतियों से परलोक में मिलने की चाट बढ़ गई और वे सुख से अपने इच्छापूर्वक अपने पतियों के साथ सती होना अपना धर्म समझने लगीं*। उस अवस्था में कितने लोग उन्हें फुसलाया भी करते थे और यह समझाते थे कि क्यों तू इस मृतक पति के साथ पड़ी है और जल कर अपना प्राण देती है उठ चल हमारे साथ संसार में मौज उड़ा। स्वयं ऋग्वेद के इस मन्त्र से इसका पता चलता है:—

उदीर्ष्वनार्य्यभिजीवलोके गतासुमेतंमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ॥ सू० १०।१८

हे स्त्री, इस मरे हुए प्राणी के पास से उठ और जीवलोक अर्थात् जीते जागते लोगों का साथ पकड़। तेरा और इस हाथ पकड़ने वाले मृतपति का जनित्व संतान उत्पन्न करने का काम अब समाप्त हो गया।

यह सब सुधार हुआ पर उस समय तक विवाह दो ही प्रकार से होते रहे, एक तो छीन छान लड़ भिड़ कर वा उसकी सम्मति से कन्या को फुसला कर भगाले जाते थे अथवा यज्ञों के समय यजमान अपनी कन्याओं को ऋत्विजों को चाहे दक्षिणा रूप में वा धर्म समझ दे दिया करते थे। यज्ञों के समय ऋत्विजों को पूरी स्वतन्त्रता थी कि वे लोग यजमान की स्त्रियों, कन्याओं और कुटुंबियों से हँसी मजाक करें। बड़े बड़े यज्ञों में उनके लिए अच्छे अच्छे समाजों का प्रबंध श्रीमान् लोग करते थे। उनके खाने के लिए उत्तम उत्तम पशुओं के मांस, पीने के लिए यवसुरा सोमरसादि उपस्थित रहते थे। कितनी अप्सरायें आमंत्रित होती थीं जिनसे उन्हें हँसी दिल्लगी करने का अच्छा अवसर मिलता था। स्वयं यजमान भी अपने कुटुंबियों समेत यज्ञ के मंडप में ही रहता था। ऋत्विजों और यज्ञमंडप की रहनेवाली यजमान की संबंधी स्त्रियों में परस्पर फूहड़ हँसी मज़ाक़ का कुछ वर्णन यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २०—३१ में आया है जिसे हम यहाँ देना उचित नहीं समझते। जिन्हें देखना हो वे वहाँ ही महीधर भाष्य वा शतपथ ब्राह्मण अध्याय १३।५।२। में देख लेवें।

धीरे धीरे ऋत्विजों के साथ अयोग्य विवाह की प्रथा लोगों को अनुचित मालूम होने लगी। तब विवाह करने का अधिकार पिता के हाथ में दिया गया। क्योंकि यह उचित न जान पड़ा कि ऐसे उत्तरदायित्व का अधिकार उन बालिकाओं के हाथ में दिया जावे जिन्हें संसार का कुछ भी तजुर्बा नहीं होता। जरा सी नादानी के कारण उनका सारा जीवन किरकिरा हो जाता है। साधारण लोगों ने तो यह बात मानली पर बड़े बड़े लोगों में प्रायः विवाह की प्रथा वैसीही

---

* इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उत त्वामत्यप्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि॥
अथ० १८।३।१।१

रही। केवल इतना किया गया कि पिता योग्य वरों को एक समाज में आमंत्रित करके बुलाता था और कन्या उनमें से किसी को वरण करती थी। इतना होने पर भी क्षत्रियों में प्रायः स्वयंवर के मौकों पर छीना झपटी मार पीट लड़ाई झगड़े हो ही जाते थे।

उस समय बालक बालिकाओं की अवस्था २५ और १६ से न्यून नहीं होती थी, अतः वैधव्य की बहुत कम संभावना थी। धीरे धीरे नियोग पाशव और घृणित समझा जाने लगा, सभ्यता बढ़ती गई और भुक्ता स्त्रियों को ग्रहण करना जूठी पत्तल खाना समझा जाने लगा। युवावस्था में विवाह होने के कारण बड़े बड़े घरों में कन्याओं के विवाह के पहले भी संतान हो जाया करती थी, जैसे कुन्ती से कर्ण उत्पन्न हुआ था।

धीरे धीरे समय और सभ्यता बदलती गई। स्त्रियों के ऊपर पुरुषों की कड़ी दृष्टि रहने लगी। उनकी स्वतंत्रता जाती रही और वे पुरुषों की बंदी बना दी गईं। मनु लिखते हैं—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥

अर्थात् पिता कौमार में, पति यौवन में और पुत्र बुढ़ापे में स्त्रियों की रक्षा करे। स्त्रियों को कभी स्वतंत्रता न होनी चाहिये।

स्त्रियों की स्वतंत्रता छीनने और पुरुषों के अधिकार बढ़ने का यह प्रभाव पड़ा कि पुरुषों में बहु-विवाह की प्रथा चल पड़ी। स्त्रियाँ इस काल में पुरुषों के आमोद प्रमोद की सामग्री हो गईं और उनको उपयोग में लाने के अनेक ढंग सोचे और निकाले गये। काम शास्त्र और नायिकाभेदादि ग्रंथों की इसी प्रकार के विचारों से सृष्टि हुई। एक एक पुरुष के अनेक विवाह होने की अवस्था में भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अठगुनी कामेच्छा मानना उस समय के लोगों के हृदयंगम भावों के साक्षी हैं।

यह धोंगा मुश्ती बहुत दिन न चली और थोड़े ही दिनों बाद ईसामसीह के छः सौ वर्ष पूर्व कपिलवस्तु नगर में महात्मा बुद्धदेव का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने एक बार स्त्रियों के अधिकार पर विचार किया और उन्हें संन्यास धर्म तक का अधिकारी माना। बौद्ध धर्म की उन्नति के समय में बड़ी बड़ी विदुषी स्त्रियाँ हुई हैं जिनमें गोतमी, जटिला, संघमित्रा आदि प्रसिद्ध हैं।

बौद्धधर्म के बहिष्कार के साथ ही साथ हिन्दुस्तान के पुरुषों का धावा फिर एक बार स्त्रियों पर हुआ, पर थोड़े ही दिनों बाद मुसलमानों के आक्रमण से ये लोग इतने तंग हुए कि उन्हें न केवल अपनी ही किंतु स्त्रियों तक की रक्षा के लिये प्रबंध करना पड़ा। युवा-विवाह की प्रथा बंद हुई और बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित हुई। और यह देख कर कि मुसलमान लोग विशेष कर कन्याओं ही पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि सधवा स्त्री पर बलात्कार करना वा उसे छीनना मुसलमानी धर्म के विरुद्ध है, यह प्रबंध किया गया कि जहाँ तक हो सके कोई सयानी कन्या अविवाहिता न रहने पावे। इसके बाद पराशर स्मृति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अनुसार आठ वर्ष से अधिक अवस्था में विवाह करना पिता माता के लिये प्रायश्चित्तार्ह ठहराया गया और सब प्रकार के विवाहों पर ब्राह्म विवाह श्रेष्ठ माना गया और विवाह की प्रथा ने वह रूप धारण किया जिसमें हम उसे आज देखते हैं।

—:o:—

वक्तृत्व-शक्ति।
और
उसकी साधना के उपाय।

—:o:—

वक्तृता से लाभ।

ईश्वर ने मनुष्य को जितनी शक्तियाँ प्रदान की हैं, वक्तृत्व-शक्ति उन सब में श्रेष्ठ है। मनुष्य जिन कर्तव्यों को पूरा करने के लिये संसार में भेजा गया है, वक्तृत्व-शक्ति से उन सब में बहुत अधिक

सहायता मिलती है। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर पशु पक्षी भी परस्पर एक दूसरे पर अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, तथापि उनके इस कार्य्य की गणना बातचीत करने में नहीं हो सकती और न उस प्रकार मनुष्य की आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकती हैं; इसीलिये ईश्वर ने मनुष्य को यह सर्वोत्तम साधन प्रदान किया है।

जिस समय संसार में सभ्यता का आरम्भ हुआ, उस समय मनुष्यों ने अनुभव से जाना कि वक्तृत्व-शक्ति एक ऐसा उपयोगी साधन है कि यदि भली भाँति उसका उपयोग किया जाय तो संसार के समस्त कार्य्यों में बड़ी ही सरलता हो सकती है। उपदेशकों ने देखा कि यदि अच्छे ढंग से वक्तृता दी जाय तो श्रोताओं पर तत्काल ही उसका प्रभाव पड़ता है। राजमंत्रियों ने देखा कि अच्छी वक्तृता से शासकों पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वे उसपर पूरा ध्यान देते हैं। शिक्षकों ने देखा कि यदि अधिक परिमार्जित भाषा में कोई बात भली भाँति सिखलाई या समझाई जाय तो वह शीघ्र ही शिष्यों की समझ में आ जाती है और उसकी स्मृति भी अधिक समय तक बनी रहती है। तात्पर्य्य यह कि संसार में सब पर यह बात भली भाँति विदित और प्रमाणित हो गई कि अच्छी वक्तृता का परिणाम उत्तमतर होता है और कभी कभी उसके द्वारा ऐसे कार्य्य सम्पन्न हो जाते हैं जो साधारण युद्धों से भी सम्भावित नहीं। उस समय से विद्वानों ने बातचीत के ढंग में सुधार करना आरम्भ किया और अन्त में यह एक प्रकार की विद्या हो गई।

अन्य अनेक विद्याओं की भाँति इस विद्या में भी भारतवासी ही अग्रसर हुए थे। अधिक दूर क्यों जायँ, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा ही महाभारत का युद्ध कराया था। महात्मा बुद्ध ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति से ही आधे संसार को अपना अनुयायी बना लिया था। भगवान् शङ्कराचार्य्य के कामों में भी विद्या के साथ वक्तृत्व-शक्ति का बहुत कुछ अंश था। भारत के बाद यूनान और रोम वालों ने इसमें दक्षता प्राप्त की। उन लोगों में अनेक ऐसे वक्ता हुए जिन्होंने अपनी वक्तृता के बल से ही इधर की दुनिया उधर कर दी। जो काम आजकल कदाचित् विद्युत् शक्ति भी नहीं कर सकती, वह काम बड़े बड़े वक्ताओं की केवल ज़बान हिलने से हो जाते थे।

सभ्य-संसार में वक्तृत्व-शक्ति का बड़ा आदर है। एक अच्छे वक्ता में किसी अच्छे कवि से अधिक शक्ति होती है। जब वह खड़ा होता है तो बड़े बड़े वीरों के समूह को बात की बात में रुला सकता है और उसी प्रकार उन्हें हँसा भी सकता है। उसका एक एक शब्द मनुष्य के हृदय पर चिंगारी का काम कर सकता है। जो लोग संसार का इतिहास जानते हैं उन्हें कई ऐसी घटनाएँ मालूम होंगी कि जिनमें वीर सेनापतियों ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता से निराश सिपाहियों को पुनः उत्तेजित और उत्साहित करके बड़े बड़े शत्रुओं पर विजय पाई है। फ्रांस के सम्राट् प्रसिद्ध वीर नेपोलियन से यूरोप के सभी शासक काँपते थे। उसके इस आतंक का मुख्य कारण उसका चातुर्य्य और दूसरा कारण उसका वक्तृत्व-बल था। उसने कई अवसरों पर अपनी सेनाओं को उत्तेजित करने के लिये ऐसी ऐसी बातें कही थीं जो कि आज तक बहुत कम सेनापतियों के ध्यान में आई होंगी। एक अवसर पर उसने अपनी सेना के थके हुए सिपाहियों से कहा था—"बहादुरो ! गत दो सप्ताहों में तुमने छः स्थानों पर विजय प्राप्त की है, शत्रुओं से ५५ तोपें छीन ली हैं और कई क़िलों पर अपना अधिकार जमाया है। दस हज़ार से अधिक सिपाहियों को तुमने मारा और घायल किया है। बिना तोपों की सहायता के तुमने तोपें छीन ली हैं, बिना पुलों के नदियाँ पार की हैं और बिना जूतों के पैदल कूच किए हैं। ब्राण्डी दूर रही, तुम्हें पेट भर रोटी भी नहीं मिली। लेकिन इतना होने पर भी तुमने ऐसे ऐसे युद्धों में विजय पाई है कि जिसकी समता करनेवाला संसार में और कोई नहीं है। तुम अपने समस्त देश के धन्यवाद के

पात्र हो। जो लोग तुम्हारी बुरी दशा पर हँसते थे, वे तुम्हारे सामने न ठहर सके और भाग गये। जो लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे अब तुम्हारी ओर से चौकन्ने हो गए हैं। लेकिन अब मैं सुनता हूँ कि तुममें से भी कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी हिम्मत टूट गई है; पर तो भी मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। जब तक मेरी बुद्धि ठिकाने है तब तक क्या मैं कभी यह बात मान सकता हूँ कि मेरी विजयी सेना के सिपाही हिम्मत हार रहे हैं!" इन वाक्यों ने प्रत्येक सिपाही के हृदय पर बिजली का काम किया था। राज्यच्युत होते समय नेपोलियन ने अपने सैनिकों से कहा था—"मेरे पुराने सेनापतियो और सैनिको! मैं तुम्हारे गत बीस वर्षों के कार्य्यों से बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। मैंने तुम्हें सदैव विजय प्राप्त करते ही देखा है। इस समय यूरोप के सब राष्ट्र मिलकर मुझे राज्य से अलग होने के लिये विवश कर रहे हैं। यद्यपि तुम लोग मेरे विश्वासपात्र हो, तथापि मैं अपने प्यारे देश को विपत्ति में नहीं डालना चाहता। अब तुम्हें उचित है कि तुम लोग पहले की भाँति अपने नये अधिकारी की आज्ञा का पालन करो। अपनी जन्मभूमि के साथ कभी विश्वासघात न करना और न कभी मेरे अभाग्य की चर्चा करना। मैं तुम्हारा कुशल-समाचार सुनकर ही प्रसन्न होऊँगा। इस समय मेरे लिये मरने से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है, तथापि मेरी प्रतिष्ठा मुझे कभी आत्महत्या न करने देगी। मैं इस समय तुम सब लोगों से गले नहीं मिल सकता, इसलिये केवल तुम्हारे सेनापति से ही मिल लेता हूँ (इतना कह कर वह जनरल से गले मिला और फ़्रांस की राजपताका को चूम कर, आँखों में आँसू भरकर फिर कहने लगा) वीरो, मुझे भूल मत जाना। जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।"

नेपोलियन के इन वाक्यों ने उसके सिपाहियों पर ऐसा जादू डाला कि जब उसने पुनः यूरोप से लड़ने का विचार किया तो वे सब लोग फिर उसके झंडे के नीचे आ गए। एक बार एक मुसलमान सेनापति अफ़्रिका के किनारे पर, स्पेनवालों से लड़ने के लिये उतरा था। उतरते ही उसने अपने जहाज़ों में आग लगा दी थी और अपने सिपाहियों से कहा था—"या तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और या यहीं मर जाओ। तुम लोग ख़ाली हाथ लौट जाने के लिये यहाँ नहीं आए हो।"

यह तो हुईं योद्धाओं की बातें; अब कुछ ऐसे लोगों का हाल सुनिए जिन्होंने संसार के अन्य कामों में अपनी वक्तृत्व-शक्ति की सहायता से अनेक महत्त्व-पूर्ण परिवर्त्तन किए हैं। कुछ लोग गद्य को, पद्य के बाद दूसरा स्थान देते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि गद्य की अपेक्षा पद्य में रस कुछ अधिक होता है। लेकिन तो भी इसमें सन्देह नहीं कि संसार में गद्य से जितने काम निकलते हैं, पद्य से उतने कदापि सम्भावित नहीं। एक कवि गद्य की प्रशंसा में कहता है—"वक्तृत्व-शक्ति (गद्य) समस्त संसार की अधिष्ठात्री देवी है। संसार में आज तक जितने बड़े बड़े कार्य्य हुए हैं, उन सबमें किसी न किसी रूप में वक्तृत्व-शक्ति से अच्छी सहायता मिली है। मनुष्य में स्वदेशप्रेम का अंकुर इसी के द्वारा उत्पन्न होता है। सर्वसाधारण में आन्दोलन उत्पन्न करने का यह बहुत उत्तम साधन है। इसके द्वारा बुरे विचारों का नाश और अच्छे विचारों का संचार होता है। उसी की सहायता से भयङ्कर युद्धों का आरम्भ होता है और वही शक्ति उसका अन्त भी करती है।"

लार्ड बेकन ने अपनी "एडवांसमेण्ट आफ़ लर्निंग" (Advancement of Learning) नामक पुस्तक में लिखा है—"बुद्धिमत्ता की केवल प्रशंसा और प्रतिष्ठा ही की जाती है, लेकिन वक्तृत्व शक्ति से संसार के बड़े बड़े कार्य्य सम्पन्न होते हैं।" एक बार मैसिडोनिया के एक बादशाह ने वहाँ के एक अच्छे वक्ता को उसकी योग्यता से प्रसन्न होकर हज़ार गाँव दे दिये और साथ ही यह भी कहा कि उसकी योग्यता को देखते हुए यह पारितोषिक कुछ भी नहीं है। दुःख है कि अन्य विद्याओं के पण्डित

और ज्ञाता तो बहुत अधिकता से होते आये हैं, लेकिन अच्छे वक्ताओं की संसार में सदा से कमी ही रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि वक्तृता या भाषण में एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो संसार के प्रत्येक कार्य्य में बहुत बड़ा परिवर्तन कर सकती है। यूनान के प्रसिद्ध वक्ता डिमास्थनीज़ ने अपनी वक्तृत्व शक्ति के द्वारा ही वहाँ के निवासियों को अपने अत्याचारी राजा से लड़वा दिया था। स्वयं उस अत्याचारी राजा ने एक बार उसकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"यदि मैं भी उसकी वक्तृता सुनता तो मुझे विश्वास है कि मुझे उत्तेजित करने में उसे यहाँ तक सफलता प्राप्त होती कि मैं स्वयं अपनी तलवार खींच कर अपने आप से लड़ने लग जाता।" ठीक ऐसी ही घटना हाल में एक बार इंग्लैण्ड में भी संघटित हुई थी। लार्ड वारेन हेस्टिंग्स के शासन-काल में इस देश में बहुत सी ख़राबियाँ पैदा हो गई थीं। पारलीमेण्ट के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने उन पर रिश्वत का अभियोग लगाया था और अन्त में अपनी प्रभावशालिनी वक्तृता से उन्हें दोषी प्रमाणित करके छोड़ा था। लार्ड हेस्टिंग्स ने इस अभियोग का हाल लिखते हुए स्वयं कहा है—"आध घंटे तक टकटकी लगाये मैं बर्क की तरफ़ देखता रहा। प्रत्येक शब्द जो उसके मुँह से निकलता था, मेरे हृदय पर विलक्षण प्रभाव डालता था, यहाँ तक कि थोड़ी ही देर में मैं स्वयं अपने आप को दोषी समझने लगा।" प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने एक बार रोम के एक बादशाह के दरबार में अपनी वक्तृता के प्रभाव से एक ऐसे अभियुक्त को बिलकुल साफ़ छुड़वा दिया था जिसे बादशाह बिना सज़ा दिये कभी न छोड़ता। इसी सिसरो के विषय में लोग कहते हैं कि जब कभी वह किसी विषय पर बोलने के लिये खड़ा होता तो उसके सारे विरोधी डर कर सामने से हट जाते थे। मिस्टर माण्ट गोमरी के कथनानुसार प्रशिया के प्रसिद्ध वक्ता लूथर ने ही अपने वक्तृत्व-बल से वहाँ की पारलीमेंट न टूटने दी और अपने देश को एक अत्याचारी राजा के अधीन होने से बचा लिया।

जो लोग अमेरिका की स्वतंत्रता और वहाँ के प्रसिद्ध युद्ध का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम होगा कि अमेरिका को स्वतंत्र करने तथा वहाँ प्रजातंत्र स्थापित करने में जनरल वाशिंगटन ने ही सब से अधिक उद्योग किया था। यद्यपि वहाँ की सारी सेना को उसी ने अपने अधीन कर रक्खा था और बड़े बड़े कठिन अवसरों पर अमेरिका वालों के लिये उसने अपना जीवन संकट में डाला था, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मिस्टर पेडम नामक एक वक्ता ने जनरल वाशिंगटन की बहुत अधिक सहायता की थी। सब से पहले मिस्टर पेडम ने ही वहाँ के नेताओं के समक्ष वाशिंगटन को समस्त सेना का कमांडर-इन-चीफ़ बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया था। पर उन लोगों ने यह कह कर उस प्रस्ताव को टाल दिया कि वाशिंगटन विदेशी हैं और यहाँ के सैनिक उनके अधीन रहना न चाहेंगे। प्रातःकाल जब यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो सारी सभा उसके विरुद्ध थी; लेकिन मिस्टर पेडम के दिन भर वक्तृता देने के बाद सारे देश को उन्होंने अपना अनुमोदक बना लिया और जनरल वाशिंगटन अमेरिका की समस्त सेनाओं के कमांडर-इन-चीफ़ बना दिये गये। इसी सुवक्ता ने फ़्रांस सम्राट् के दरबार में जाकर अपनी बातों से उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि वह इंग्लैण्ड के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। इसी लिए लोग कहते हैं कि अमेरिका को स्वतंत्र करने में जनरल वाशिंगटन को मिस्टर पेडम ने बहुत बड़ी सहायता दी थी।

वक्ता बनने के उपाय।

यद्यपि संसार में सब प्रकार के विद्वानों की दिन पर दिन वृद्धि होती जाती है, पर तो भी अब सिसरो या डिमास्थनीज के समान वक्ता उत्पन्न नहीं होते। यूरोप और अमेरिका आदि सभ्य देशों में अब भी अच्छे अच्छे वक्ता दिखलाई देते हैं। भारत में भी

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ पुनः इस विद्या का प्रचार होने लगा है। ब्राह्म-समाज के संस्थापक श्रौर प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्र सेन अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे, यहाँ तक कि यूरोप तथा अमेरिका के बड़े बड़े विद्वानों ने आपकी वक्तृता की प्रशंसा की थी। मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनर्जी, मि० रामस्वामी मुडालियर तथा मिस्टर लालमोहन घोष भी अच्छे वक्ता हो गये हैं। आजकल भी श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखले आदि कई अच्छे वक्ता भारत में मौजूद हैं। मिस्टर दादा भाई नौरोजी ने अपने व्याख्यानों से विलायत वालों को कई बार चकित कर दिया है। इसी प्रकार कई ऐसे भारतवासियों का नाम लिया जा सकता है जो अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छी वक्तृता दे सकते हैं। जनवरी सन् १८९९ में डी० स्काट् नाम के एक विदेशी पादरी ने लाहौर के "ट्रिब्यून" में एक पत्र प्रकाशित कराया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारतीय कांगरेस में मैंने कई भारत-वासियों को अँगरेज़ी भाषा में ऐसी अच्छी वक्तृता देते सुना है, जैसी वक्तृता मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

दुःख है कि हमारे देश में हिन्दी भाषा में वक्तृता देनेवाले लोगों का नितान्त अभाव है। हमारे कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि हिन्दी जगत् में कोई वक्ता ही नहीं है; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि आज कल के शिक्षित विद्वान् हिन्दी बोलने या लिखने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। तो भी अब धीरे धीरे लोगों के ये भाव दूर हो चले हैं और उनकी रुचि हिन्दी की ओर होती जा रही है। हिन्दी-जगत् में भी दो चार अच्छे वक्ता हैं पर अभी हमें बहुत से अच्छे अच्छे वक्ताओं की बड़ी आवश्यकता है। इस स्थान पर हम कुछ ऐसे उपायों का वर्णन करना चाहते हैं जिनके अवलम्बन से लोगों को इस विद्या के उपार्जन में सहायता मिले।

प्रायः हमारे देश के नवयुवकों की इच्छा हुआ करती है कि वे सर्वसाधारण में अच्छी वक्तृता देने के योग्य बन सकें। लेकिन उनके मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट लज्जा होती है। जिन लोगों को पहले पहल सर्वसाधारण में कुछ बोलने का अवसर प्राप्त होता है, वे यदि निःसंकोच भाव से कुछ कहने के लिये खड़े भी हो जायँ तो श्रोताओं का उन पर इतना आतंक पड़ता है कि वे घबरा जाते हैं और इसीलिए उनके विचार भी खंडित और क्रमविहीन हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सर्वसाधारण पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वक्ता का सारा परिश्रम नष्ट हो जाता है और उलटे उसे सब लोगों के सामने लज्जित होना पड़ता है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जब लोग पहले पहल किसी सभा-समाज में वक्तृता देने के लिए खड़े होते हैं तो वे इतने लज्जित या भयभीत हो जाते हैं कि कठिनता से दो चार वाक्य बोलने के योग्य होते हैं। पहले तो वे काँपने लगते हैं और फिर घबराहट के कारण उनकी ज़बान लड़बड़ाने लगती है और अन्त में वे पसीने में तर होकर बैठ जाते हैं। उस समय उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि घबराहट में उनके मुँह से क्या क्या निकल गया। इस दोष को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि नवयुवक लोग छोटी छोटी सभाएँ बनायें और वहाँ जाकर परस्पर अपने विचार प्रकट किया करें। यदि प्रारम्भिक अवस्था में ही युवक ऐसी सभाओं में जाया करते हों तो फिर आगे चल कर वे बड़ी बड़ी सभाओं में भी बोलने के योग्य हो जाते हैं। लेकिन एक विद्वान् का कथन है कि यदि ऐसी सभाओं में केवल बालक या युवा ही सम्मिलित होंगे तो उनकी भूलों का सुधरना कठिन हो जायगा। इसलिए ऐसी सभाओं के लिए किसी योग्य सभापति की बहुत आवश्यकता हुआ करती है। जिन लोगों को बाल्यावस्था में ऐसी सभाओं में योग देने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो, वे बड़े होने पर भी उनसे लाभ नहीं उठा सकते हैं। कभी कभी इस प्रकार की घबराहट बड़े बड़े विद्वानों तक को हुआ करती है। अर्ल आफ़ डरबी वक्तृता देते समय प्रायः घबरा जाया करते थे। एक बार विला-

यत में एक लार्ड मेयर की दावत में एक विद्वान् लार्ड को कुछ बोलना पड़ा था। उस अवसर पर आध घण्टे में उन्हें दो बार सोचने के लिये हाल के बाहर जाना पड़ा था।

कुछ लोगों में यह दोष होता है कि वे एक स्थान पर तो बहुत ही बेधड़क होकर बोलते हैं, लेकिन किसी नये स्थान पर उनसे कुछ भी बोला नहीं जाता। लार्ड एल्डन ने एक बार कहा था कि यद्यपि पारलीमेण्ट में मेरी वक्तृता बहुत ही अच्छी होती है लेकिन गोल्डस्मिथ के भोज के समय मेरा शरीर काँपने लगता है। मिस्टर गार्डन ने एक बार लार्ड जान रसल के बारे में कहा था कि हाउस आफ़ कामन्स में तो मैं उनसे सहम जाता हूँ, लेकिन यदि वे किसी और स्थान पर हों तो मैं उनकी ज़रा भी परवा नहीं करता। कोनल नामक एक प्रसिद्ध वक्ता जब पहले पहल पारलीमेण्ट में गया तो वह लोगों पर आक्षेप करने के सिवा और कुछ भी नहीं जानता था। लेकिन बाद में वह ऐसा योग्य वक्ता बन गया कि चाहे वह पारलीमेण्ट में विद्वानों के सामने या देहातों में अशिक्षितों के सामने अथवा न्यायालय में जजों के सामने हो, उसका भाषण सभी स्थानों पर विलक्षण प्रभाव डालता था।

जो लोग यह चाहते हों कि वे साधारण जन-समाज में बोलने योग्य एक अच्छे वक्ता बनें, उन्हें उचित है कि वे ध्यान-पूर्वक अच्छे अच्छे लेखकों की पुस्तकें पढ़ा करें। विलायती पारलीमेण्ट के मेम्बर स्वर्गीय मिस्टर जौन ब्राइट का नियम था कि सदा सोने से पहले वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओं, लेखकों और वक्ताओं की पुस्तकें या वक्तृताएँ अवश्य पढ़ते थे। एक विद्वान् का कथन है कि—"मनुष्य की प्रकृति चोर है।" अर्थात् वह दूसरों की अच्छी या बुरी बातों को बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इसलिये विद्वानों और योग्य आदमियों का ही सदा साथ करना चाहिये। अच्छी वक्तृता से यह तात्पर्य्य नहीं है कि दो चार अच्छे अच्छे वाक्य कण्ठ कर लिये जायँ। वक्तृता वही अच्छी होती है जिसमें उच्च विचार और ज्ञान भी सम्मिलित हो। परिमार्जित भाषा, वक्तृता का शरीर है और अच्छे विचार और विषय उसका जीवन हैं। इसलिये अध्ययन के अतिरिक्त विचार-शक्ति को भी प्रबल करना चाहिये। लोगों के केवल यह कह देने से कि—"भाषण अच्छा हुआ" यह न समझना चाहिये कि हम अच्छे वक्ता होगये। बल्कि जब लोग यह कहने लगें कि "विचार बहुत अच्छे हैं" तभी समझना चाहिये कि सफलता प्राप्त हुई। लेकिन अच्छे विचार जो कि वक्तृता के प्राण-स्वरूप हैं, केवल उत्तम साहित्य के अध्ययन करने और विद्वानों के साथ रहने से उत्पन्न होते हैं।

यदि आरम्भ में कुछ अधिक सफलता न हो तो निरुत्साह होना उचित नहीं है। ऐसे लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जन्म से ही कोई व्यक्ति किसी विषय का विद्वान् नहीं होता। कुछ लोगों की धारणा है कि डिमास्थनीज़ से बढ़ कर आज तक और कोई वक्ता नहीं हुआ और उनकी यह धारणा बहुत से अंशों में ठीक भी है। प्रारम्भिक अवस्था में डिमास्थनीज़ के भाषण में भी बहुत दोष हुआ करते थे। वक्तृता देते समय वह हकलाता था और बहुत ही भद्दे पन से अपने हाथों तथा कानों को हिलाता था। लेकिन एक उत्तम वक्ता बनने की उसकी प्रबल इच्छा थी। इसलिये उसने अपने आप को एक ऐसी कोठरी में बन्द किया जिसमें चारों ओर तेज़ छूरियाँ लगी हुई थीं। ये छूरियाँ उसने इसलिये लगाई थीं जिसमें उसका शरीर व्यर्थ इधर उधर हिलने न पावे। उसने यह भी प्रण कर लिया था कि जब तक मुझे भली भाँति भाषण करना न आ जायगा तब तक मैं इस कोठरी से बाहर न निकलूँगा। इसीलिये उसने अपनी एक ओर की मूछें भी मुड़वा ली थीं। मुँह में कंकड़ डाल कर उसने जल्दी जल्दी बोलने का अभ्यास किया और इस प्रकार उसका हकलाना भी दूर हो गया। इतने कठिन परिश्रम और अभ्यास के बाद भी जब वह बाहर निकला तो लोग उसके भाषण पर हँसते थे। लेकिन इतना होने पर भी डिमास्थनीज़ अपने विचारों

पर दृढ़ रहा और अन्त में उसने वक्तृता देने में संसार में सब से बढ़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की।

लेकिन उक्त उदाहरणों का यह तात्पर्य्य नहीं है कि सभी लोग चेष्टा करने पर अच्छे वक्ता हो सकते हैं। अर्ल आफ़ जस्टर ने पारलीमेंट में पहले पहल खड़े होकर कहा था—"महाशयो! मैं—मैं, खड़ा होता हूँ।" मैं—मैं—मैं अपने वक्तव्य को चार भागों में विभक्त करता हूँ।" इसके उपरान्त बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—"माई लार्डस, यदि मैं फिर कभी इस हाउस में आप लोगों के सामने कुछ बोलने के लिये खड़ा होऊँ तो मैं आपको अधिकार देता हूँ कि आप लोग मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दीजियेगा।"

यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रायः एक ही विषय में दक्षता प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो एक से अधिक विषयों में पूर्ण विद्वान् या पारंगत हुए हों। कई बार ऐसा हुआ है कि अच्छे अच्छे लेखक बहुत ही छोटी सभाओं में भी एक अक्षर न बोल सकें। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध ग्रन्थकार एडिसन को एक बार एक सभा में बोलना पड़ा। आप ने खड़े हो कर कहा—"I conceive, I conceive, Gentlemen! I conceive." आगे एक शब्द भी मुँह से न निकला और आप चुपचाप अपने स्थान पर बैठ गये। इस पर एक लेडी ने आप के साथ बहुत अच्छी दिल्लगी की। उसने खड़े होकर कहा—"My friend, Mr. Addison, has conceived thrice, but brought forth nothing"*

"ब" (शेष आगे।)

—:o:—

*अंगरेज़ी में conceive शब्द के दो अर्थ हैं, एक विचारना या समझना और दूसरा गर्भ धारण करना। इसलिये इस वाक्य का अर्थ होता है—"मेरे मित्र मि० ए सन ने तीन बार विचार किया (अथवा गर्भ धारण किया) पर फलोत्पत्ति कुछ भी न की।"

बरसात की सैर।

(लेखक पं० लक्ष्मीशंकर द्विवेदी, मिर्ज़ापुर।)

मिर्ज़ापुर पहाड़ी ज़िला है, केवल उत्तर का भाग भागीरथी के कुछ इस पार और कुछ उस पार समथर भूमि पर अवस्थित है। नगर गंगा जी के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। विन्ध्याचल की पर्वतश्रेणी नगर के दक्षिण की ओर दो ही मील से आरम्भ हो जाती है। वर्षाकाल में यहाँ का जलवायु बहुत उत्तम रहता है। नगर से थोड़ी ही थोड़ी दूर पर यहाँ बहुत से झरने हैं। ज़िले भर में "जल प्रपात" (वाटरफ़ाल) भी बहुत से हैं, परन्तु अधिकांश बहुत दूर दुर्गम तथा हिंस्र जन्तुओं के केवल लीला-निकेतन हैं; अतएव वहाँ के अपूर्व और प्राकृतिक विचित्रताओं से पूर्ण दृश्यों को बिरले ही बिरले व्यक्तियों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

नगर के समीप तीन और चार कोस की दूरी पर तीन बहुत बड़े जल-प्रपात हैं। इनमें से एक का दृश्य तो बरसात में बहुत ही कम लोग देख सकते हैं। नगर से आठ मील पर "टाँडे की दरी" (टाँडाफ़ाल) एक अतिशय रमणीक और बहुत बड़ा जलप्रपात है। यहाँ दो नदियाँ दो ओर से आकर एक ही स्थान में पर्वत से नीचे गिरती हैं। दक्षिण की ओर से आने वाली नदी ने अपने गिरने का स्थान कुछ ढालुवां बना लिया है, परन्तु पश्चिम की ओर से आने वाली नदी बिलकुल सीधी लगभग दो सौ फ़ुट की गहराई में गिरती है। जिस रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर अच्छी वर्षा हो जाती है, उसके दूसरे दिन प्रायः अधिक सैलानी लोग वहाँ पहुँच जाते हैं। इस प्रपात का शब्द चार मील की दूरी तक अच्छी तरह सुनाई देता है। जिस समय प्रचण्ड वेग से दोनों नदियाँ अधोमुख पतित होती हैं और उनमें से जल के छींटे बादल बन कर सैकड़ों फ़ुट ऊपर उठते हैं उस समय एक अद्भुत दृश्य दिखलाई देता

है। इनमें से दक्षिण दिशा वाली नदी को बाँध कर नगर में पानी पहुँचाने के लिये "वाटरवर्क्स" की ओर से कई साल से काम लगा हुआ है। सन् १९१५ ईसवी से नगर वालों को, उस अद्भुत दृश्य को अधूड़ा बना कर उसी नदी का पहाड़ी पानी दिया जायगा। इसी प्रकार नगर से लगभग ६ मील पर "वरघाट" नामक एक ग्रौर बड़ा जलप्रपात है, जिसे अब हम जबलपुर के नर्मदा के जलप्रपात के आदर्श पर, विश्वकर्म्मा की कारीगरी की करतूत कह सकते हैं।

१ सितम्बर १९१३ से लेकर कई दिनों तक बादलों के दल आकाशमण्डल को घेर कर वारि-धारा से बराबर भूमि को भिगोते रहे। तीसरी तारीख़ को मैं प्रातःकाल घर में बैठा हुआ घन-घोर घटाओं की घुड़दौड़ देखता हुआ मित्रवर बाबू चन्द्र-लाल जी से बातें कर रहा था। सलाह ठहरी कि आज वरघाट चलना चाहिये। अस्तु, शीघ्र ही हम लोग भोजन कर ग्रौर कुछ जलपानादि का सामान साथ लेकर एक्के द्वारा चल पड़े। रास्ते भर हम लोग बराबर पानी से भीगते गए। कभी कभी वर्षा ऐसी प्रबल हो जाती कि विवश हो कर कहीं कहीं पर किसी वृक्ष के नीचे एक्का रोक देना पड़ता। हम लोग कठिनता से दो एक घंटे की राह घंटे में समाप्त कर १ बजे प्रपात पर पहुँचे। उस दिन नदी लगभग दो सौ फ़ुट की चौड़ाई में भयंकर नाद के साथ बाम्बे-मेल के चौगुने वेग में आ कर नीचे गर्त में तीन ग्रोर से गिर रही थी। तीन ग्रोर की जल-धाराओं के पतन के संघर्षण से अगणित जलकण एक विराट फ़ौवारे के रूप में ख़ूब ऊपर उठ रहे थे। हम लोग वर्षा काल में बहुत वार वहाँ गये हैं, परन्तु नदी ग्रौर प्रपात का वैसा विशाल दृश्य कभी नहीं देखा। जिस समय हम लोग स्नान कर रहे थे उसी समय अकस्मात् अस्ताचल-गामी भगवान् भास्कर ने मेघ-माला को हटा कर दर्शन दिया। फिर क्या था, उस प्रपात से उठते हुए अतिशय ऊँचे धुआँधार में दो इन्द्र-धनुष उदय होगए। हम लोगों ने सुना ग्रौर पढ़ा था कि जबलपुर के नर्मदा-प्रपात में इन्द्र-धनुष दिखाई देता है, ग्रौर उसी समय में नर्मदा में भयानक बाढ़ आने का समाचार भी मिला था। बस उसी समय तीनों व्यक्तियों ने निश्चय कर लिया कि नर्मदा का प्रपात देखना चाहिए। घर आ कर सलाह ठहरी कि बम्बई तक चलना चाहिए ग्रौर बीच में जितने प्राचीन ग्रौर दर्शनीय स्थान हों उनको भी देखते चलें।

अस्तु १७ सितम्बर १९१३ को हम लोगों ने ११ बजे स्टेशन तक पहुँचाने वाले मित्रों को विदा कर बम्बई मेल से करुई को प्रस्थान कर दिया। २ बजे मानिकपुर में मेल छोड़ना पड़ा। एकाएक वहाँ स्टेशन पर मेरे पुराने मित्र, हिन्दी भाषा के विख्यात भक्त ग्रौर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थापकों में से एक श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंह जी सब-डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स कर्वी डिवीज़न से भेंट होगई। शोक है कि उनके भाई का देहान्त हो गया था जिससे वे छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। परन्तु उन्होंने कृपा कर के हम लोगों को पंडों से सावधान कर, ठहरने के लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। हम लोग घर से पानी में भीगते हुए चले थे। परन्तु मानिकपुर में आकर कुछ ही घंटों के पश्चात् स्वच्छ आकाश तथा कड़ी धूप देखनी पड़ी। थोड़ी देर में झाँसी जानेवाली जी० आई० पी की गाड़ी भी आ गई, हम लोग उस पर चढ़ कर कर्वी की ग्रोर चले। मानिकपुर से कर्वी तक एक उत्तम ग्रौर विचित्र पहाड़ी दृश्य दिखाई देता है। दोनों ग्रोर घनघोर ग्रौर भयानक वन पड़ते हैं, बस्ती का दिखाई देना दुर्लभ है। कहीं कहीं पर पहाड़ को काट कर लाइन लेगये हैं ग्रौर कहीं कहीं पर सैकड़ों फ़ुट गहिरे गर्त को पत्थर के ढोकों से पाट कर लाइन बिछाई गई है इसी प्रकार उस पर्वतमाला में चक्कर काटती हुई गाड़ी चली जा रही थी। दोनों ग्रोर अनेक प्रकार के वन-वृक्ष दिखाई दे रहे थे, जो वर्षा के अभाव से मुरझा रहे थे। मानिकपुर से कर्वी के बीच में एक स्टेशन पड़ता है। यहाँ गरमी के दिनों में पीपों में

भर कर अन्यत्र से जल लाया जाता है। खेद है कि इस प्रान्त में प्रायः श्रावण ही से सूखा पड़ा हुआ था, नहीं तो इस राह का दृश्य बहुत ही आनन्ददायक होता। मेरे एक मित्र का, जो समग्र भारतवर्ष का भ्रमण कर चुके हैं, कथन है कि दार्जिलिङ्ग हिमालियन रेलवे को छोड़ कर भारतवर्ष भर में मानिकपुर से झांसी तक इस जोड़ का रेलवे दृश्य कहीं नहीं है। परन्तु एक दूसरे मित्र इसी को सबसे उत्तम बताते हैं। जो कुछ हो, इस लाइन के निकालने में जी० आई० पी० रेलवे ने बहुत द्रव्य व्यय किया है। सायंकाल चार बजे के समीप हम लोग कर्वी पहुँच गए।

कर्वी—सीतापुर वा चित्रकोट*।

कर्वी में केवल एकही पक्का है, पर वह भी ठीक नहीं। कर्वी से सीतापुर बैलगाड़ी में आना जाना पड़ता है। गाड़ी बहुत हलकी, छोटी और तंग होती है। दो बैल जुतते हैं। इस प्रकार की गाड़ो मैंने जगदीश पुरी में देखी थी। कर्वी के असिस्टेण्ट स्टेशनमास्टर मेरे सहगामी बाबू चन्दूलालजी के पुराने सहपाठी निकले। उन्होंने झटपट एक बैलगाड़ी ठीक कर दी, उसी पर हम लोग अपना अपना सब सामान रख कर चले। कर्वी एक अच्छी बस्ती है। श्रीमन्त नारायण राव पेशवा का बनवाया हुआ एक बड़ा मकान और तालाब है, जिसमें इस समय थाना, तहसील, स्कूल और ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के कार्य्यालय हैं। बन्दर यहां बहुत हैं। पेशवा का प्रासाद देखते हुए पयस्विनी नदी पार कर, कुछ दूर पक्की फिर बहुत ही भ्रष्ट ऊँची नीची कच्ची सड़क में उलटते पलटते सूर्य्यास्त होते होते सीतापुर हम लोग पहुँच गये। लगभग तीन मील कच्ची सड़क है और लाखों यात्री प्रतिवर्ष आते जाते हैं, परन्तु खेद है कि पी० डब्लू० डी० या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उसे पक्की नहीं बनवाती। उस कच्ची सड़क की मरम्मत भी नहीं कराई जाती। हिन्दुओं का तीर्थस्थान है न! इस निर्जीव जाति से ऐसे कार्य्यों में व्यय करने के लिये धन कहां! एक देवालय व्यर्थ बनवाने या पंडित को कुकर्म करने के लिए चाहे कितना ही द्रव्य दे देने के लिये सब कुछ है!!

सायंकाल के पश्चात् हम लोगों ने चित्रकूट की छोटी परिक्रमा कर डाली। इस परिक्रमा में बहुत से मन्दिर और शिवालय हैं; जिनमें बुंदेलखंड के महाराजों के बनवाये मुख्य हैं। भगवान् रामचन्द्रजी की "पर्णकुटी" भी इसी परिक्रमा में है। यहां अब एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी की कुटी वाला स्थान टूटा पड़ा है, अब उनके नाम पर नदी किनारे एक साधु एक छोटा सा मन्दिर बनवा कर उसमें गोस्वामी जी की मूर्त्ति स्थापित कर, अपनी जीविका चला रहा है। मृदगन्ध जी के नाम पर जिनसे रामचन्द्रजी ने चौमासा बिताने के लिए भूमि मांग पर पर्णकुटी बनाई थी, एक मन्दिर है; जिसमें शिवलिङ्ग स्थापित है। यह परिक्रमा चारों ओर पक्की बनी हुई है और नदी के तीर से आरम्भ होती है। रात सीतापुर के प्रधानाध्यापक महाशय के यहां बिता कर दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग "कामतानाथ" की परिक्रमा के लिये चले।

कामतानाथ।

पाठशाला से एक मील से कुछ ऊपर कामतानाथ की पहाड़ी है। रास्ते में कई एक बड़े बड़े मठ और मन्दिर मिलते हैं। साधुओं की दूकानें भी बहुत हैं। कामतानाथ एक छोटा सा पहाड़ का टुकड़ा है, जिसे लोग शालग्राम की मूर्त्ति मानते और उसकी परिक्रमा करते हैं। यह परिक्रमा लगभग चार मील की और पक्की बनी हुई है। राह में बराबर मन्दिर मठ और शिवालय बने हुए हैं, जिनमें अधिकतर बुँदेलखण्ड के राजाओं के और विशेष कर महाराज अमानसिंह के बनवाए हुए हैं। यह राजा बड़ा ही धर्मात्मा और दानी हो गया है। मनुष्यों की कौन कहे वह पशु पक्षियों तक के भोजन की व्यवस्था करता था। हमारे यहां होली में जो

* चित्रकूट की एक बस्ती का नाम "सीतापुर" है।

लोग नटों की नक़ल करते हैं. वे गाते हैं "कहाँ गए राजा अमान हो, रोवें बन की चिरैय्या।" ये प्राचीन मन्दिर, टूटे फूटे और जीर्ण दशा में हैं. परन्तु महन्तों के मन्दिर और मठ अच्छी अवस्था में हैं और उनमें गावँ तथा जागीरें लगी हुई हैं। पूर्व और दक्षिण की ओर एक मन्दिर में पहाड़ का एक कोना निकला हुआ है, जिसे कामतानाथ का मुखारविन्द कहते हैं। इस पहाड़ी के पश्चिम "खोई" नाम की एक बस्ती है, इसमें एक पाठशाला भी है और यहाँ का खोआ बहुत उत्तम होता है। इस परिक्रमा में एक चैापाड़े के महन्त हैं। इनके सुविशाल मन्दिर के साथ एक बाग़ और एक पक्की और उत्तम बावली है। महन्त भी सच्चे साधु हैं।

इस पहाड़ी का बरसाती पानी जहाँ जहाँ से बहता है वहाँ वहाँ एक एक पत्थर पर एक एक तीर्थ का नाम खोद कर लगाया हुआ है। सबसे विशेषता इस पहाड़ी में यह है कि काँटेदार वृक्ष उस पर नहीं उगते।

इस परिक्रमा को पूर्ण कर, हम लोगों ने डेरे पर आकर भोजन बनाया और खा पीकर आराम किया। फिर ३ बज जाने पर एक पथप्रदर्शक को साथ लेकर "हनुमानधारा" देखने के लिये प्रस्थान किया।

हनुमानधारा।

हनुमानधारा सीतापुर से तीन मील से कुछ ऊपर है। यहाँ भूमि से ३६० सीढ़ियां पर्वत पर चढ़कर हनुमानधारा पर पहुँचना होता है। पहाड़ के नीचे रास्ते में दोनों ओर बबूल के वृक्षों में रंग बिरंगे कपड़ों के अगणित टुकड़े लगे हुए थे। पूछने पर किसी ने सन्तोषदायक उत्तर न दिया। परन्तु एक महाशय ने कहा कि "भगवान् रामचन्द्रजी राह भूलने के भय से, मार्ग के वृक्षों में अपना बल्कल फाड़ फाड़ कर अटकाते जाते थे, वही प्राचीन परिपाटी यात्रियों द्वारा, विशेष कर स्त्रियों द्वारा, अब तक चली आ रही है।" यहाँ पर्वत के नीचे एक बहुत बड़ी पक्की बावली बनी है। हनुमानधारा में दो स्थानों से जल गिर रहा था, उसमें प्रधान धारा के नीचे एक ढालू चट्टान में हनुमानजी की मूर्ति बनाई हुई है। मूर्ति की बाईं भुजा पर जलधारा गिरती है। फिर वही जल कई एक बड़े बड़े कुण्डों में होता हुआ पर्वत के अज्ञात दरारों में गुप्त हो जाता है। यहाँ के पुजारी वा महन्त के एजेण्ट पूरे कलियुगी आचार्य्य हैं। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे आप एक दासी से धर्म्मालाप कर रहे थे। इसी प्रकार चित्रकूट भर में अगणित महन्तों में अधिकांश नाम-मात्र के साधु और पूरे डबल गृहस्थ हैं। उनके मन्दिर में एक दो दासियाँ वर्त्तमान हैं।

हनुमानधारा से कुछ ऊपर चढ़ कर एक अत्यन्त साधारण मन्दिर में भगवती जानकी जी की मूर्त्ति स्थापित है। इसे लोग सीताजी की रसोई का स्थान कहते हैं। पूछने पर प्रगट हुआ कि इस पहाड़ पर कुछ दूर पर दो बड़े तालाब भी हैं। परन्तु अँधेरा हो जाने से हम लोग शीघ्रता-पूर्वक लैाट पड़े और डेरे पर पहुँचकर भोजन इत्यादि कर सो रहे।

अनुसूयाजी।

तीसरे दिन प्रातःकाल एक राह दिखानेवाले मजूर के सिर पर बिस्तर और भोजन का सामान रख कर हम लोग चले। यह चक्कर दो दिन और एक रात का सोच लिया गया।

प्रमोदवन—चित्रकूट से एक मील पर पहले प्रमोदवन पड़ा। प्रमोदवन को महाराज रघुराजसिंह बाँधवेश ने बनवाया था। यह बहुत बड़ा बाग़ परन्तु बेमरम्मत दशा में है। चारों ओर पक्की और ऊँची चहारदीवारी है, जिसमें भीतर की ओर एक सी बराबर कोठरियाँ बनी हुई हैं। पूरब पश्चिम में दो प्रकाण्ड फाटक और बीच में दो विशाल मन्दिर हैं। इनमें भी कई एक परिक्रमाएँ नीचे ऊपर बनी हैं। इस प्रकार सात परिक्रमाओं के बीच में "लक्ष्मी-नारायण" की भव्य और दर्शनीय मूर्त्ति महाराज

रघुराजसिंह जी की अनन्य भक्ति की द्योतक विद्यमान है। प्रमोदवन के पूर्व की ओर पास ही से पयस्विनी नदी गई है। इससे यह स्थान अतिशय रमणीक है। यहाँ २२ आचारियों के लिये नित्य भोजन तथा आगन्तुकों के लिये सदावर्त मिलता है। आचारी यहाँ के सज्जन विद्वान् और निर्लोभी हैं। चित्रकूट भर में यह सबसे उत्तम और बेजोड़ स्थान है तथा इसका "प्रमोदवन" नाम सर्वथा सार्थक है। इसके व्यय-निर्वाहार्थ महाराज ने कुछ जागीर दे दी थी और प्रबन्ध उनके आचार्य्य के अधीन अब तक होता आ रहा है। वर्त्तमान महाराज का ध्यान इसकी ओर तनिक भी नहीं है।

जानकीकुण्ड—प्रमोदवन से आगे एक मील पर जानकीकुण्ड है। पयस्विनी नदी के बीच में पत्थर की चट्टानें पड़ गई हैं, जहाँ जल चक्कर देकर कुछ वेग से बहता है। उसी का नाम लोगों ने जानकी-कुण्ड रख छोड़ा है। ऊपर दो तीन साधुओं के घर हैं। परन्तु लौटने पर मैंने एक महाशय से सुना कि वहाँ नदी के करारों में कई एक गुफाएँ हैं, जहाँ अच्छे महात्माओं का तपस्थान है।

फटिकशिला—जानकीकुण्ड से दो मील आगे "फटिकशिला" है। दो बड़ी समथर और ऊँची चट्टानें नदी के किनारे हैं, इसी का नाम फटिकशिला है। पत्थर भी साफ़ और कुछ श्वेत है। इस समय मुझे "फटिकशिला बैठे दोउ भाई" गोस्वाजी की यह चौपाई याद आ गई। यहीं पर जयन्त, जनकनन्दिनी के चरण में चोंच मार कर सामने के पर्वत शृंग पर जा बैठा था, जहाँ रामचन्द्रजी के बाण ने उसकी एक आँख फोड़ दी थी। यह स्थान अत्यन्त रमणीक और चारों ओर पहाड़ तथा घनघोर जंगल से घिरा हुआ है। यहाँ स्नान और जलपान कर ९ बजे हम लोग अनसूयाजी के लिये चले। अब इस अटपटी राह में भगवान् भास्कर की प्रखर किरणों ने चलना कठिन कर दिया। बीच में बाबूपुर ग्राम में दस मिनिट विश्राम कर फिर आगे चले। यहाँ से थोड़ी दूर आगे पथ पहाड़ के एक दर्रे में से होकर गया है। दोनों ओर बड़े और गम्भिन वृक्ष तथा हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण भयानक जंगल है जिसमें केवल एक पगडंडी-मात्र है। कोई बाहरी मनुष्य इस पगडंडी से अकेले जाने का साहस कदापि नहीं कर सकता। जंगल के बीच में अनसूयाजी का पुराना टूटा फूटा फाटक पड़ता है। प्रातःकाल से बराबर चलते चलते उस कड़ी धूप में कई एक नाले और एक नदी नाँघ कर एक बजे हम लोग अनसूयाजी पहुँचे। यहाँ नदी से ऊपर अनसूयाजी, अत्रिमुनि तथा दत्तात्रेय के तीन छोटे छोटे मन्दिर हैं। इनसे सटा हुआ "सिद्ध बाबा" का समाधि स्थान है। यहाँ सिद्ध बाबा एक अच्छे महात्मा हो गए हैं। उनकी समाधि के नीचे एक पक्की और बड़ी धर्मशाला है। यहाँ पर पहाड़ बिलकुल सीधा और वृक्षशून्य है, जिसमें मधुपक्खियों के बहुत से छत्ते लगे हुए हैं। उनके डर से यहाँ दिन में आग नहीं जलाई जाती।

पयस्विनी नदी का उद्गम स्थान अनसूयाजी मानी जाती हैं। लोग उन्हीं के तप से इस नदी की उत्पत्ति बताते हैं। परन्तु नदी में जल और आगे तक दिखाई देता था। अनसूयाजी और सिद्ध बाबा के स्थान के नीचे से कई सोतों द्वारा जल नदी में जा रहा था। वहाँ के पुजारी ने बताया कि गरमी के दिनों में आगे पानी सूख जाता है और केवल अनसुयाजी के नीचे से नदी में जल रह जाता है। अतएव पयस्विनी नदी को अनसूयाजी ने अपने तपोबल वा पातिव्रत-बल से बहाया था और अत्रि मुनि के दर्शनार्थ भगवान् राचन्द्रजी उनकी इस तपोभूमि में आए थे। यहीं पर अनसूयाजी ने सीताजी को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दिया था। अनसूयाजी और सिद्ध बाबा के नीचे नदी के तीर पर पड़ी हुई बड़ी बड़ी शिलाओं पर हनुमान्जी आदि की बहुत सी मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। नदी के दोनों पार्श्व का जंगल बहुत ही सुहावना है। यदि किसी प्रकार इस पहाड़ के ऊपर चढ़ा जाता तो इस स्थान का अद्भुत दृश्य पूरा दिखाई

देता। परन्तु हम लोग बहुत थके और भूख से व्याकुल हो रहे थे। अस्तु, कुछ दूर आगे जाकर नदी के किनारे एक वट-वृक्ष के नीचे हम लोगों ने भोजन बनाया। यहाँ भोजन बनाने और खाने में दो बड़े बन्दरों ने बहुत तंग किया। किसी प्रकार खा पीकर ४ बजे सायंकाल को वहाँ से हम चले। अनसूया जी बहुत रमणीक, अतिशय उत्तम और एक अलौकिक स्थान है। यद्यपि यहाँ तक पहुँचने में कष्ट भी बहुत है परन्तु चित्रकूट आने वालों को इस अपूर्व स्थान का अवलोकन अवश्य करना चाहिये।

अनसूया जी से गुप्त गोदावरी की गुफा लोग चार कोस बताते थे, किन्तु मेरी समझ में ६ कोस से कम नहीं है। चार बजे दिन के चले हुए पथरा-ग्राम तक पहुँचते २ बिलकुल अँधेरा हो गया। भला जंगल पार कर एक ग्राम में तो पहुँच गये। अस्तु, उस ग्राम में एक ब्राह्मण देवता के द्वार के चबूतरे पर उनकी आज्ञा से रात काटने के लिये बिस्तर बिछाया। दैव-दया से गाँव में दूध मिल गया। उसी को थोड़ा थोड़ा पीकर हम लोग सो रहे। साढ़े चार बजे प्रातःकाल अँधेरे ही में वहाँ से कूच कर किसी प्रकार साढ़े आठ बजे हम लोग गुप्त-गोदावरी की गुफा के द्वार पर पहुँचे।

गुप्त-गोदावरी की गुफा।

यह स्थान भी पहरा के जागीरदार के अधिकार में है। किन्तु कर्वी के एक महन्त के एजेण्ट पैसा वसूल करने के लिये यहाँ भी रहते हैं। चमगादड़ों की यहाँ अत्यन्त अधिकता है, जो वहाँ के छोटे छोटे मन्दिरों, गुफा और पर्वत की दरारों में भरे हुए हैं। वहाँ पहुँचने पर इनकी विष्ठा की भयंकर दुर्गन्ध से जी घबड़ाने लगा। हम लोग साथ में एक बक्स दिया-सलाई और रास्ते के एक ग्राम से तैल लेते गये थे कि मसाल जला कर गुफा को भली भाँति देखेंगे। परन्तु वहाँ के चतुर और धूर्त पुजारी ने कुल तेल रख लिया और केवल एक बड़ा दीपक जला कर हम लोगों को गुफा में ले चला। गुफा पहाड़ के मध्य-भाग में है। गुफा के द्वार तक पहुँचने का मार्ग उस बातूनी पुजारी ने ऐसा बना रक्खा है कि अनजान मनुष्य का वहाँ तक पहुँचना भी कठिन है। जहाँ गुफा के भीतर जाने का मार्ग है वहाँ पहाड़ में दरवाज़े की भाँति छेद हो गया है। द्वार की ऊँचाई अच्छी है, परन्तु चौड़ाई एक मनुष्य के अच्छी तरह जाने भर की है। हम लोगों के भीतर पहुँचते ही अगणित चमगादड़ों के उड़ने के शब्द से गुफा गूँज उठी। यहाँ भी इनकी विष्ठा की असह्य दुर्गन्ध का सामना करना पड़ा। भारतवर्ष भर में प्रकृति देवी की बनाई हुई इसके बराबरी की कोई गुफा नहीं है। इस गुफा को हम प्रकृति की आश्चर्यमयी अलौकिक विचित्रता कह सकते हैं। गुफा खूब चौड़ी है और लम्बाई का पता तो आज तक किसी ने नहीं पाया। दाहिनी ओर से हम लोग उस ऊँची नीची और पत्थर के ढोकों से पूर्ण भूमि में सँभलते हुए चले। पहले एक बहुत बड़ा और गोलाकार स्थान मिला, जिसमें लग भग एक सहस्र मनुष्य समा सकते हैं। इसके आगे थोड़ी दूर और जाने पर एक झरना मिला। कुंड में पानी के गिरने का कलकल शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा था। हम लोगों ने उस दीपक के प्रकाश में वहीं स्नान किया। इसी झरने का नाम "गुप्त-गोदावरी है"। अब पुजारी वा पंडा वहाँ रक्खी हुई मूर्त्तियों पर पैसा चढ़ाने के लिये हठ करने लगा। हम लोग अपना अपना कमीज़, वेस्टकोट और कोट सब बाहर छोड़ आये थे। अतएव उनसे विनय करनी पड़ी कि महाराज बाहर चल कर सब एक साथ चढ़ा देंगे। फिर और आगे कुछ दूर तक पुजारी हम लोगों को प्रार्थना करने पर ले गया, परन्तु अन्धकार की अधिकता, ऊँची नीची और बड़े बड़े ढोकों से पूर्ण भूमि तथा आगे वट-वृक्ष की जड़ वा कंघी के दाँतों की भाँति ऊपर लटकती हुई चट्टानों से सिर फूट जाने के भय से हम लोग लौट पड़े। आगे रास्ता तंग और छत की ऊँचाई भी कम होती जाती थी। लगभग एक

फ़लांग के हम लोग गुफा में चले गये थे, यदि प्रकाश का प्रबन्ध यथेष्ट होता तो श्रौर भी कुछ आगे जाने का साहस पड़ता पर वहाँ साँप अधिक हैं यह भी पहले से सुन रक्खा था तथा आगे मार्ग भी जल से पूरित है अतएव अब हम लोग बाईं श्रोर से लैाटे। एक स्थान पर ऊपर छत में पहाड़ ठीक शिवालय के गुम्बज की भाँति बड़ी सफाई के साथ कट गया है जैसे किसी ने चा.कू से छील कर बनाया हो। शिवालय में ऊपर घंटे के लिये साँकल जहाँ लटकाई जाती है, ठीक उसी स्थान पर बीचो बीच घंटे के आकार का एक बड़ा सा पत्थर ऊपर एक धरन की भाँति पड़े हुए पत्थर के सहारे लटक रहा था। घंटे वाला पत्थर किसी बड़े बाँस से हिलाने पर हिलता है। खेद है कि हम लोग अपने साथ कोई बड़ी लकड़ी नहीं ले गये थे। इसका नाम "खटखटा चोर" लोगों ने रख छोड़ा है श्रौर कहते हैं कि "एक चोर ने सीता जी के अलङ्कार चुरा कर इसी गुफा में छिपाये थे, उस चोर को लक्ष्मण जी ने बाण से मार कर यहाँ लटका दिया है"। श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंहजी कहते थे कि "मैं इस गुफा में आठ मशाल श्रौर हरीकेन लेकर दे। फ़रलांग तक गया हूँ।" उन्हीं के द्वारा यह भी विदित हुआ कि इस प्रान्त के स्कूल-इंसपेक्टर श्रीयुत पण्डित दीनदयालु जी तिवारी उनसे बहुत अधिक दूर तक गये थे। यदि यह गुफा साफ़ कराई जाय तो एक अत्यन्त अद्भुत श्रौर दर्शनीय स्थान हो जाय। गुफा के भीतर वाले झरने का जल बहुत ही मीठा श्रौर साफ़ है *। खेद है कि चित्रकूट से बहुत दूर श्रौर ठीक तथा सुगम राह न होने से केवल बिरले अन्धभक्त यहाँ तक आते श्रौर उस जल में स्नान तथा उसका पान कर चले जाते हैं, उनमें से दैवात् ही किसी का ध्यान प्रकृति की इस विचित्रता पर पड़ता होगा। चित्रकूट से लेकर यह सब स्थान पहरा के रावबहादुर की जागीर में है, श्रौर राव साहिब बुँदेलखंड एजेंसी के अधीन हैं, किन्तु खेद है कि उनका ध्यान भी इसकी श्रोर तनिक नहीं है।

बाहर से देखने में लगभग सैा गज़ की चैाड़ाई तक पहाड़ की कुल चट्टानें फटी हुई हैं। मेरी समझ में यहाँ कई बार वज्रपात हुआ है, जिससे समग्र चट्टानें चटक गईं श्रौर यह गुफा बन गई। दूसरे यहाँ का पत्थर भी कुछ नरम है। बाहर भी पहाड़ के भीतर एक बड़ी कोठरी की भाँति कुण्ड है। इस कुण्ड में से वर्षा का जल नीचे बने हुए एक के बाद दूसरे कुण्डों में से होता हुआ नीचे चला जाता है। बाहर गुफा की बाईं श्रोर वर्षा में एक छोटा जलप्रपात बन जाता है। अस्तु बाहर का भी दृश्य अतिशय रमणीक श्रौर मनोरम है।

साढ़े दस बजे गुप्त-गोदावरी से डेढ़ मील चल कर "पहरा" की राजधानी चैाबेपुर में आकर श्रौर हलवाई से पूरी बनवाकर हम लोगों ने पेट पूजा की। उस समय अवर्षण से जेठ बैशाख की भाँति लू चलने लगी तथा हम लोगों के पैरों में चलते चलते छाले पड़ गए थे। अस्तु, कुछ घंटों के लिये एक व्यक्ति के यहाँ विश्राम करना पड़ा।

चैाबेपुर अच्छी बस्ती है। यहाँ के जागीरदार राव बहादुर चैाबे रामचन्द्र जी महाराज, अँगरेज़ी फ़ारसी के विद्वान् तथा हिन्दी भाषा के कवि हैं। आपकी बनाई हुई "दधिलीला, माखनलीला" की भाँति कई एक लीलाएँ मैंने वहाँ एक मनुष्य के पास देखीं। कुछ लड़कों को नैाकर रख कर राव साहेब प्रायः रास कराते श्रौर अपनी कविता का आनन्द अनुभव करते हैं। खेद है कि उधर किसी गाँव में एक भी पाठशाला नहीं है। वहाँ एक मनुष्य से दैवात् भेंट हो गई जो पहिले मिरज़ापुर में रह चुका था। उसके दे। लड़के आठ श्रौर दस बरस के बाहर खेल रहे थे। मैंने कहा 'तुम इनके पढ़ाते क्यों नहीं? उसने शोक के साथ उत्तर दिया, "महाराज क्या

* वास्तव में वहाँ पर दे। सोते हैं। एक ठंडे जल का श्रौर दूसरा गरम जल का। परन्तु लोभी श्रौर धूर्त पुजारी ने उस समय हम लोगों को नहीं बतलाया। वहाँ वाले उन सोतों को "जूड़ी, ताती" कहते हैं।

करें, यहाँ तथा आस पास के किसी गाँव में कोई पाठशाला नहीं है, कैसे पढ़ावें। यदि यह इलाक़ा सरकार अँगरेज़ बहादुर का होता तो यहाँ अवश्य पाठशाला होती और आप मेरे लड़कों को निरक्षर न देखते।" वह व्यक्ति चार रुपए मासिक पर नौकर है और उसे चार प्राणियों का पालन करना पड़ता है। चौबेपुर में राव साहेब के पूर्वजों का बनवाया हुआ एक शिवालय और एक पक्का और अच्छा तालाब है। यहाँ से ढाई बजे चल कर किसी प्रकार उठते बैठते ७ बजे रात को हम लोग सीतापुर पहुँचे।

सीतापुर से दो तीन कोस पर "देवाङ्गना" और "कोटितीर्थ" दो और अच्छे स्थान हैं, जहाँ एक एक झरने हैं। वहाँ से ७ कोस पर "भरत कूप" है, जहाँ सब तीर्थों का जल भरत जी ने उस कूप में छोड़ा था। और इससे भी अधिक दूर पर महर्षि वाल्मीकि जी का आश्रम है। परन्तु हम लोगों ने चित्रकूट की उष्णता और चलने की थकावट से घबड़ा कर यहाँ से दूसरे ही दिन चलने का निश्चय कर लिया। मथुरा, अयोध्या की भाँति चित्रकूट में भी प्रत्येक स्थानों में बन्दरों की अत्यन्त अधिकाता है। इनके भय से सीतापुर के मकानों के खपरैल काँटों से ढाँके जाते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल सीतापुर से पयान कर कर्वी में वहाँ का उजाड़ दुर्ग और गनेशबाग़ देखते हुए जबलपुर चलने का विचार स्थिर हुआ। परन्तु प्रातःकाल हमारे एक सहगामी ने इतना विलम्ब किया कि हमारी उपर्युक्त अभिलाषा पूर्ण न होने पाई। "गनेश बाग़" और एक अत्यन्त सुन्दर बावली तथा मन्दिर सन् १८३७ ईसवी में विनायक राव पेशवा ने बनाया था। यहाँ के पहिले के राजाओं का दुर्ग बिलकुल टूटा फूटा और उजाड़ है। अस्तु, यहाँ से साढ़े ग्यारह बजे की गाड़ी में चल कर फिर मानिकपुर पहुँचे और वहाँ से ९ बजे रात की गाड़ी से दूसरे दिन प्रातःकाल जबलपुर पहुँचे।

जबलपूर

२२ सितम्बर १९१३ को प्रातःकाल हम लोग जबलपुर पहुँचे। स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर राजा सेठ गोकुलदासजी की एक सुन्दर और दो खण्ड की पक्की धर्म्मशाला है। धर्म्मशाला का प्रबन्ध हेल्थ आफ़िसर के निरीक्षण में एक मुसलमान सज्जन के अधीन है। हर कमरे में १ लोहे का पलँग, १ टेबुल और दो तीन कुर्सियाँ हैं। रसोई बनाने के लिये बर्तन और लोहे का चूल्हा भी मिलता है तथा धर्म्मशाला ही में आटे, दाल चावल आदि की दूकान भी है। तीन दिन तक यहाँ लोग ठहर सकते हैं, अधिक दिनों के लिये विशेष आज्ञा लेनी होती है। इस धर्म्मशाला में जहाँ सब बातों का सुख है वहाँ एक बात का घोर कष्ट भी है। शौचालय कुल चार हैं, दो पुरुषों के लिये और दो स्त्रियों के लिये। प्रातः और सायंकाल एक जाते हैं तो चार लोटा लिये किवाड़ खट खटाते हैं। यहाँ पथिकों का आवागमन अधिक रहता है अतएव हेल्थ आफ़िसर को उचित है कि कम से कम चार शौचालय और बनवा दें।

जबलपुर में हम लोगों को नर्मदा का जल-प्रपात देखना था; परन्तु उस दिन हम लोग नगर-भ्रमण करना निश्चित कर एक ताँगा दिन भर के लिये भाड़े करके चले। जबलपुर की सड़कें अच्छी हैं। नगर का बाहरी भाग प्रयाग का सा प्रतीत होता है, किन्तु भीतरी भाग वैसा नहीं है। मकान बहुत ही साधारण हैं। दो या तीन खण्ड के दो ही चार अच्छे देखने में आये। सबसे बड़ा और अच्छा प्रासाद राजा सेठ गोकुलदासजी का एक बड़े सरोवर के किनारे बना हुआ है। भवन और मन्दिर में पत्थर की कारीगरी तथा जड़ाऊ काम देखने योग्य है। इसे देख कर तथा पास ले कर हम लोग उनके पुतलीघर में गये। काटन मिल की दशा अब अच्छी है, किन्तु अब भी उस पर ऋण अधिक है। यहाँ से हम लोग उनका काँच का कार्यालय (ग्लास फ़ैक्टरी) देखने गये, उस समय केवल साधारण चूड़ियाँ काटी और चिकनी की जाती थीं। भट्ठी टूट गई थी। वहाँ पूछने पर प्रगट हुआ कि शीघ्रही इसकी मरम्मत होनेवाली

है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि सेठजी को इस कार्य में बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी है, किन्तु अब भी वे हतोत्साह नहीं हुए हैं। मैनेजर एक जर्मन है। इस समय मुझे इस बात की चिन्ता उत्पन्न हो गई कि क्या भारत के भाग्य में काँच के कार्य्य में कहीं भी कृतकार्य्य होना नहीं बदा है? यहाँ से हम लोग "गोविन्दभवन" देखने गये। गोविन्द-भवन राय-बहादुर सेठ जीवनदास के चिरंजीव सेठ गोविन्ददास जी के नाम पर बनाया गया है। सेठजी ने भवन और उसकी वाटिका को प्रचुर द्रव्य व्यय कर के प्रत्येक प्रकार से विभूषित किया है, और काम अब भी बराबर लगा हुआ है। प्रत्येक स्थान में बिजली के प्रकाश और पंखे का प्रबन्ध है। छत भूमि और दीवारों पर जयपुरी जड़ाऊ काम बने हैं। चित्र, मूर्तियाँ तथा रँगाई के काम भी अच्छे हैं। वाटिका की सजावट भी सराहनीय है। इस बाग़ को जबलपुर का बुटानिकल-गार्डन तथा ज़ूलोजिकल गार्डन भी कह सकते हैं। इसे देखकर हम लोग धर्मशाला लौट आये। पहले हम लोगों ने ताँगा द्वारा जल-प्रपात जाने का विचार किया, परन्तु ताँगा द्वारा प्रातःकाल जाने से नौ या दस बजे तक पहुँचते. सुतरां धर्म्मशाला के मुंशी की मन्त्रणा से उसी रात को साढ़े दस बजेवाली गाड़ी से मीरगंज जाने के लिये हम लोग स्टेशन पहुँचे। मीरगंज में रात स्टेशन ही पर बितानी पड़ी। स्टेशन मास्टर एक महाराष्ट्र ब्राह्मण और सज्जन पुरुष थे, उन्होंने सादर हम लोगों को स्थान प्रदानकिया।

प्रातःकाल उठकर और झटपट नित्य कृत्य से निपट कर हम लोग चले। सड़क बहुत साफ़ और अच्छी तथा दोनों ओर मैदान और शस्यविहीन खेत देखते एवं प्रातःकालीन शीतल मन्द समीर का स्पर्श-सुख लूटते हुए चलने लगे। दो मील पर राह कुछ कुछ ढालू होने लगी तथा तीसरे मील के पूरे होने पर हम लोग नर्मदाजी के तीर पर पहुँचे। यहाँ भी पंडा-दल ने चित्रकूट की भाँति चारों ओर से घेर लिया। किसी प्रकार इन पंडों से पिंड छुड़ाकर पहले "भेंड़ाघाट" के घाट पर स्नान किया। यहाँ नर्मदा कलकल नाद करती हुई तीव्र और वक्रगति से गमन करती है, क्योंकि यहाँ नदी में नीचे पत्थर की चट्टानें पड़ गई हैं; अतएव उस प्रखर धारा में सावधानी से स्नान करना पड़ता है। यहाँ से ऊपर चढ़कर एक दूकान से कुछ पेड़े और दूध लेकर तथा दस आने पर दिन भर के लिये एक सेवक को साथ लेकर हम लोग प्रपात की ओर चले। भेंड़ाघाट से लगभग पौन मील पर प्रपात है। राह में बाईं ओर उन दो अँगरेज़ों की समाधि मिली जिन्हें उनके चुरट के धुएँ की दुर्गन्धि से कुपित होकर मधुमक्खियों ने मार डाला था।

नर्मदा का जलप्रपात वास्तव में बहुत ही मनोरम है। जल ख़ूब गिर रहा था और जल की छीटें भी बहुत बड़े घेरे में ख़ूब ऊँची उठ रही थीं। हम लोगों को सेवक एक अच्छा पथप्रदर्शक मिल गया था। उसकी सहायता से हम लोग कठिनता-पूर्वक किसी प्रकार प्रपात के किनारे पहुँच पाए। बर्सात के कारण नदी में जल अधिक होने से प्रपात का गर्त अधिक भरा हुआ था, इससे छीटें कुछ कम ऊँची उठती थीं। वहाँ वालों के कथनानुसार गर्त की गहराई तीन सौ फ़ुट से भी अधिक है। जाड़े के दिनों में जब गर्त की गहराई कम हो जाती है उस समय फ़ौवारा और भी ऊँचा उठता है। गर्त एक प्रकार धन्वाकार है, अतएव जल के लगभग तीन ओर से गिरने के कारण फ़ौवारा बँधा हुआ और एक सा बराबर उठा करता है, इसी का नाम धुआँधार है। जल ने अपने गिरने के स्थान पर कई एक नालियाँ बना ली हैं, जिनमें दक्षिण वा नदी के बाईं ओर एक बहुत बड़ी नाली बन गई है, जिसमें से बड़े वेग के साथ जल का प्रवाह गर्त में गिरता है। गर्त के ऊपर दोनों करारों के बीच में नदी का पाट भी बहुत अधिक है। पतन के पश्चात् नर्मदा जी जिस दर्रे वा दोनों ओर की चट्टानों के बीच से होकर निकल गई हैं, उसका दृश्य हमें अधिक आनन्दप्रद प्रतीत हुआ। दोनों ओर की विशाल चट्टानें खड़ी

और कटी हुई पर्तदार हैं जैसे किसी ने बिना काटी हुई पुस्तकें बराबर में चुन दी हों। इस प्रकार नर्मदा की जलधारा से गढ़ी हुई मैली मर्मर की पर्तदार अद्भुत चट्टानें दूर तक एक सी दिखाई देती हैं। अस्तु, एक घंटे से अधिक इस प्रपात की विचित्र शोभा देखते देखते सूर्य की किरणों के असह्य हो जाने से हम लोग लौटे और फिर उसी घाट पर बोट मँगवा कर मार्बल की चट्टानों की सैर करने चले।

वास्तव में नौका द्वारा "मार्बल राक" की सैर करने में जो अपार आनन्द आया, उतना प्रपात के देखने में नहीं। इस राक के भीतर नर्मदा की गहराई अत्यन्त अधिक है। नाविक (बोटमैन) के कथनानुसार कहीं कहीं दो सौ, तीन सौ फुट तक की गहराई है, इसी से उस राक के भीतर जल बिलकुल स्थिर दिखाई देता है।

थोड़ी दूर नाव के चलने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि हम लोग चारों ओर से घिरे हुए एक बड़े सरोवर में आ गये। वहाँ इस प्रकार का घुमाव है कि नदी के आने की राह का अनुमान करना कठिन होता है। इससे आगे चलकर कहीं नीले पत्थर की चट्टानें हैं तो कहीं लाल पत्थर की; एक ओर काले पत्थर की चट्टानें दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर पीले पत्थर की। इस प्रकार दो फरलांग चलने पर मर्मर की श्वेत चट्टानें आरम्भ होती हैं। यहाँ बीच में एक प्रकाण्ड चट्टान है, जिस पर भूतपूर्व होलकर-नरेश ने एक श्वेत शिवलिङ्ग स्थापित कर दिया है, जिनका नाम "सिद्धेश्वर महादेव" है। इसके आगे महारानी दुर्गावती के महल पर जाने की टूटी सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं, और उसी के सम्मुख "शृङ्गारशैल" है, जिस पर रानी पूजन को जाती थीं। इससे बढ़कर एक ओर की चट्टान में कुछ ऐसे काले दाग़ दिखाई देते हैं जिन्हें लोग "कालभैरव" की मूर्त्ति कहते हैं। इसके आगे "सिद्धकुण्डी" मिली, फिर "दत्तात्रेय महाराज की गुफा"। इसके आगे चलकर सूर्य, चन्द्र तथा गणेशजी के आकार से कुछ मिलती जुलती मूर्त्तियाँ दिखाई देती हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि जिस समय नर्मदा जी आई थीं उस समय यह पहाड़ मक्खन का था और समस्त देवता उनकी अगवानी के लिये यहाँ एकत्र हुए थे। अस्तु, कहीं कहीं सूर्य्य के घोड़े इन्द्र के ऐरावत के और शेषनाग के आने के चिह्न दिखाई दिए। मेरी समझ में तो यह सब केवल जल की कारीगरी-मात्र है। एक स्थान में नदी का मार्ग संकुचित हो गया है और दोनों ओर के करारे समीप हो गए हैं, उसे "बन्दर-कूदनी" कहते हैं। किसी समय कोई बन्दर इस पार से उस पार कूद गया होगा। एक स्थान पर ढालू घाट सा बन गया है, जिसे "स्वर्गद्वार" कहते हैं। यहाँ एक तपस्वी एक प्रस्तर-खण्ड पर बैठे माला फेर रहे थे, हम लोगों ने बोट से उतर कर उन्हें कुछ दक्षिणा दी और रंग बिरंगे पत्थरों के टुकड़े चुने। यहाँ आस पास की चट्टानों में मधुमक्खियों के छत्ते दिखाई दिए। छत्ते कुल उस समय सात थे, जो उसी रात में जलाए जानेवाले थे। किसी समय यहाँ पर बहुत छत्ते लगे रहा करते थे, जिनमें अगणित मधुमक्खियों का निवास रहता था। जब से इन मधुमक्षिकाओं ने दो गोरों का प्राण हरण किया तबसे सरकार की दृष्टि इनकी ओर आकर्षित हुई। अब समय समय पर जहाँ ये छत्ते बढ़े कि जलवा दिए जाते हैं। स्वर्गद्वार के आगे "जनेऊधारा" है। यहाँ दोनों ओर के करारे बहुत ही समीप हो गए हैं और नीचे भी ऊँची चट्टानें हैं। गरमी के दिनों में यहाँ नर्मदाजी एक पतली धारा के रूप में आती दिखाई देती हैं। यह स्थान एक विचित्र चित्र सा दिखाई देता है। इसके आगे बोट नहीं बढ़ सकता है। अस्तु, यहाँ से हम लोगों का बोट लौटा। इस राक के भीतर मर्मर की नरम चट्टानों में जल ने तरह तरह के चित्र बना दिए हैं, उन्हीं को देखकर लोगों ने अपनी अपनी कल्पनाओं के अनुसार नाना प्रकार के नाम रख दिए हैं। मार्बल-राक की जोड़ का दृश्य इस देश में तो नहीं है, प्रत्युत संसार में भी दैवात् ही कहीं दिखाई दे। हम लोगों ने दिन में

इसे देखा, जिस समय धूप भी अधिक थी; परन्तु पूर्णिमा की निर्मल चाँदनी में इसका दृश्य देखने ही योग्य होता है। चाँदनी रात की अकथनीय और अनुपम शोभा केवल महाकवियों के लिये एक सर्वोत्तम सामग्री समझनी चाहिए। इस विचित्र दृश्य को देखकर और घाट पर बोट से उतर कर हम लोग ऊपर आए।

यहाँ कई एक मन्दिर और शिवालय हैं, जिनमें मुख्य और सब से ऊँचे स्थान पर "श्रीगौरीशंकर" का मन्दिर है। गौरीशंकर जी की अर्द्धाङ्गिनी मूर्ति प्राचीन और सुन्दर है। मन्दिर के चारों ओर की दीवार में ओसारे बने हुए हैं, जिनमें इस समय ८३ खण्डित मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। किसी समय यहाँ ६४ योगिनियों की मूर्तियाँ स्थापित थीं जिन्हें क्रूरात्मा औरंगज़ेब ने तुड़वा डाला था। अब गवर्नमेंट ने उन मूर्तियों को चारों ओर के बरंडों में रखवा कर उनके ऊपर की छत मरम्मत करवा दी है। बहुत सी मूर्तियों के टुकड़े शिवालय के पास भी पड़े हैं, उन ८३ मूर्तियों में दो चार गणेश इत्यादि की भी हैं। कोई कोई ऐसी खण्डित हैं कि उनसे यह अनुमान करना कि यह किसकी मूर्ति है, बहुत कठिन है।

यहाँ एक डाँक बँगला और एक सरकारी मुसाफ़िरख़ाना है, एक और बड़ा डाँकबँगला बन रहा है। भेंड़ाघाट के इस पार राजा सेठ गोकुलदासजी की भी एक धर्म्मशाला है, जहाँ यात्रियों को हर प्रकार का सुख मिलता है। मार्वल की खानें नर्मदा के इस पार और उस पार दोनों ओर हैं। नए बँगले के लिए गिट्टियाँ तक संगमरमर के ढोकों से तोड़ी जारही थीं। यहाँ कई एक दूकानों में सफ़ेद, लाल, पीले इत्यादि अनेक रङ्ग के पत्थरों के पेपरवेट तथा शिवलिङ्ग आदि विकते हैं। यद्यपि वे चुनार के बने पेपरवेट की तुलना में कुछ भी न थे, किन्तु वहाँ का चिह्नस्वरूप तथा लड़कों के खेलने के लिये, हम लोगों ने भी उन्हें क्रय किया। यहाँ एक मुसलमान कारीगर के पास बहुत अच्छी तरह २ की छोटी मूर्तियाँ और बटन इत्यादि थे, किन्तु वह मूल्य बहुत अधिक माँगता था। यहीं डाँकबँगले के पास, भृगु मुनि के स्थान पर एक बंगाली साधु की कुटी क्या घर के हाते के भीतर हम लोगों ने भोजन बनाया। भृगु-आश्रम नर्मदा के बिलकुल किनारे पर है। सरकार ने उसके चारों ओर जँगला लगवा दिया है। आश्रम में अब केवल एक शिवलिङ्ग मात्र है और आश्रम के नीचे एक जल का सोता भी है।

जिस समय हम लोग भोजन करने लगे उसी समय पश्चिमोत्तर की ओर से बड़े वेग के साथ जल आया; अतएव बहुत शीघ्रता से भोजन समाप्त कर हम लोगों को साधु महाराज की धूनी का आश्रय लेना पड़ा। घंटे भर तक जल बरसता रहा। तब तक हम लोग उनसे बातें करते रहे। साधु ने वह स्थान दिखलाया जहाँ से लोग नर्मदेश्वर नामक लिङ्ग स्थापनार्थ लाते हैं। उन्होंने कहा कि जब (जाड़े के दिनों में) नर्मदा घट जाती हैं उस समय बहुत तरह के पत्थर और शिवलिङ्ग यहाँ मिल जाते हैं। उन्होंने एक ख़ूब हरे और एक संग-सितारे का बहुत सुडौल सुन्दर शिवलिङ्ग दिखलाया, जो निःसन्देह बहुमूल्य था। ऐसे भी पत्थर (वाटरस्टोन) यहाँ मिल जाते हैं कि जिनके भीतर जल भरा रहता है।

पानी निकल जाने पर हम लोगों ने शीघ्रता के साथ स्टेशन की ओर प्रस्थान किया। स्टेशन पर पहुँचने के थोड़ी देर बाद गाड़ी आई, जिस पर सवार हो कर जबलपुर लौटे। निदान ८॥ बजे रात को धर्म्मशाला में पहुँच कर आगे चलने के लिए हम लोग सोचने लगे यहाँ से हम लोगों का विचार नागपुर जाने का था। परन्तु इसी समय नागपुर से कई एक महाराष्ट्र और गुजराती सज्जन धर्म्मशाला में आए। इन लोगों की बातों से हतोत्साह होकर सीधे नासिक जाने का निश्चय कर दिन भर की थकावट मिटाने के लिए निद्रादेवी की गोद में हम लोगों ने विश्राम किया।

दूसरे दिन २४ सितम्बर को प्रातःकाल की गाड़ी से हम लोगों ने नासिक के लिये प्रस्थान किया।

इटारसी तक जी० आई० पी० की पसेंजर ट्रेन में आना पड़ा। इसकी गाड़ियाँ सब पुरानी और झूले की तरह हिलती थीं। दे। गाड़ियों के। छोड़ कर किसी भी गाड़ी में "संडास और मुत्ता"* न था। पिपरिया स्टेशन के पास पहुँचने पर आकाशस्पर्शी सतपुड़ा की पर्वतश्रेणी दिखाई दी। पँचमढ़ी के यात्री पिपरिया स्टेशन पर उतरते हैं। यहाँ मोटर, ताँगे और गाड़ियाँ मिलती हैं। इटारसी के पास एक टनल वा सुरंग मिला स्टेशन पर खाने पीने की वस्तुएं बहुत ही भ्रष्ट और निकृष्ट मिलती हैं। थोड़ी देर में यहाँ "देल्ही एक्सप्रेस" आगई जिस पर चढ़ कर हम लोग १॥ बजे रात्रि के। नासिक पहुँचे।

—:०:—

सूचना और सम्मति।

त्रैमासिक रिपोर्टें।

ठकों के। यह देख बड़ा ही हर्ष होगा कि भारतवर्ष में जितनी नागरी-प्रचारिणी सभाएँ स्थापित हैं, काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा औरों से विशेष पुरानी, माननीय, विश्वसनीय एवं प्रशंसनीय है। सरकार भी इसको मानती है और समय समय पर कितनी ही पुस्तकें, रिपोर्टें आदि भेजा करती है। आज हम जिन रिपोर्टों के विषय में लिखना चाहते हैं वह बंगाल एवं बर्मा गवर्नमेन्ट की अप्रेल से जून तक की और युक्तप्रदेश तथा मद्रास गवर्नमेन्ट की जूलाई से सितम्बर तक की पुस्तकों की है। किस प्रान्त में किस भाषा की कितनी पुस्तकें निकलीं यह निम्नलिखित कोष्ठ से विदित हो जायगा—

बंगाल		मद्रास		युक्त प्रदेश		बर्मा	
अँगरेज़ी	७१	अँगरेज़ी	१२३	अँगरेज़ी	३६	अँगरेज़ी	९
बंगला	४५५	तामिल	२३६	हिन्दी	१६७	बर्मी	२९
संस्कृत	११	तेलगू	१७०	उर्दू व फ़ारसी	७५	पाली	१४
हिन्दी	११	संस्कृत (नागरी)	१८	संस्कृत	९	तामील	२
उर्दू फ़ारसी	२	संस्कृत (तेलगू)	१४	मराठी	३	बंगला	१
आसामी	१०	कनारी	१७	गुजराती	१	हिन्दी, उर्दू, संस्कृत	०
मुसलमानी बंगला	८	उर्दू, अरबी व फ़ारसी	१३	बंगला	४		
अन्यान्य भाषाओं की	१८७	अन्यान्य भाषाओं की	८३	अन्यान्य भाषाओं की	९३	अन्यान्य भाषाओं की	१५
कुल जोड़	७५५	कुल जोड़	६७४	कुल जोड़	३८८	कुल जोड़	७०

हिन्दीप्रेमियों के। यह देख अतीव दुःख होगा कि मद्रास तथा बर्मा प्रान्त से हिन्दी भाषा की एक

* जी० आई० पी० की गाड़ियों में पैखाना और पेशाब पैख़ाना के स्थान में संडास और मुत्ती लिखा रहता है।

भी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। यद्यपि संस्कृत-भाषा की कृपा से मद्रास प्रान्त में नागरी-लिपि की १८ पुस्तकें निकलीं परन्तु बर्मा में तो वह भी न देखा गया। जो हिन्दी-भाषा भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता रखती हो, जिस भाषा के पक्षपाती मद्रास प्रान्त के रत्न महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर, डा० आनन्द कुमार स्वामी सरीखे सज्जन हों, उस भाषा की एक पुस्तक भी मद्रास या बर्मा-प्रान्त से न प्रकाशित हो यह कितने बड़े दुःख की बात है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सेवी तथा सम्मेलन के कार्यकर्त्तागण इस ओर विशेष ध्यान देंगे और व्याख्यानों एवं सभाओं द्वारा इस सर्वमान्य अंश की पूर्ति करेंगे।

यह भी कम दुःख की बात नहीं है कि जिस प्रान्त से हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र प्रकाशित होते हों, जिस प्रान्त के प्रसिद्ध प्रसिद्ध बालक श्रीयुत जस्टिस दिगम्बर चटर्जी, श्रीयुत शारदाचरण मित्र इत्यादि भी इस भाषा को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा मानते हों उस बंगाल प्रान्त से केवल ११ ही पुस्तकें इस भाषा की प्रकाशित हों। मैं आशा करता हूँ कि बंगाल के प्रसिद्ध नगर कलकत्ते को आधुनिक हिन्दी की जन्मभूमि माननेवाले सज्जन अपनी उक्ति को चरितार्थ करने के निमित्त कुछ प्रत्यक्ष कार्य करके हिन्दी भाषा का उपकार करेंगे। यद्यपि युक्तप्रदेश से १६७ पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथापि बंगला-साहित्य से मिलान करने पर यह संख्या संतोषदायक नहीं है। बंगाल प्रान्त से जब केवल नाटक-विषयक अच्छी अच्छी ३२ पुस्तकें निकलीं, वहां हमारे प्रदेश से केवल ४ ही अनुवादित हुईं। लाला सीताराम जी को अनेक धन्यवाद हैं जिन्होंने उपर्युक्त चारों नाटक अनुवाद किये हैं। इन नाटकों की प्रथम संस्करण में १२०० प्रतियाँ छापी गई हैं परन्तु बँगला भाषा के नाटकों में २२ नाटकों के प्रथम संस्करण १००० से ५००० तक के हुए हैं। इनमें ९ नाटक ऐसे हैं जिनके २, ३, ४ संस्करण तक हो चुके हैं। केवल पाठ्य पुस्तकों को छोड़ हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकें बहुत कम हैं जिनकी प्रकाशित संख्या तीन, चार, हज़ार से विशेष हो, परन्तु बंगला भाषा में पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त भी कई पुस्तकों के जैसे "अमीय पाथ" का ८वाँ संस्करण २००००, "आदर्श बंगला साहित्य पाठ" का नवीन संस्करण २२,५००, "शिशु-शिक्षा" का चतुर्थ संस्करण १५,०००, "बृहत्-साहित्य-प्रवेश" का ५५वाँ संस्करण ६०००, "साहित्य पुस्तक" का ११वाँ संस्करण १२,००० प्रतियों का हुआ है। इसी प्रकार तामील भाषा में भी "सेण्ट मारकस गास्पल" नामक पुस्तकादिकों के दो दो, तीन तीन संस्करण १०,००० प्रतियों के हुए हैं।

सरस्वती से बढ़ कर हिन्दी भाषा में कोई पत्र नहीं है। योरोप और अमेरिका तक इसकी पहुँच है। परन्तु इसकी कुल ४५०० प्रतियाँ छापी जाती हैं जब कि मद्रास के "यङ्ग सिटिज़न" की ग्राहक संख्या दस हज़ार है। तामील और बंगला भाषा के कितने ही मासिक पत्रों की ग्राहक संख्या छः छः सात सात हज़ार है।

इन सबसे क्या सिद्ध होता है? यही कि हिन्दी वालों में उत्साह, प्रेम, एकता, स्वार्थत्याग इत्यादि गुण कम हैं। जरा जरा सी बातों पर कुपित हो महीनों अख़बारों के कालम रँगेंगे परन्तु यह न होगा कि वही स्थान उत्तम उत्तम लेखों से परिपूर्ण कर अन्यान्य भाषाभाषियों को इसकी उपयोगिता समझा कर राष्ट्रभाषा का प्रचार करें।

आशा है कि हिन्दी-साहित्य-मर्मज्ञ इस ओर भी कृपा दृष्टि करेंगे। *

—:०:—

* यह नोट श्रीयुत् सांवलजी ने कृपा कर भेजा है।

पुरातत्त्व।

[पं० हीरानन्द शास्त्री एम० ए० का व्याख्यान।]

भारतवर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता और परम्परागत विद्या के कारण अनुसन्धान के लिये एक आदर्श देश है। यह एक ऐसा देश है जहाँ पुरातत्त्व और प्राचीन-लेखोद्धारिणी विद्या को उत्तेजित करना चाहिये, क्योंकि उससे बहुत कुछ फल निकल सकता है। बात यह है कि मुसलमानी विजय (सन् १००० ई० के लगभग) से पहले की कोई कोई क्रमबद्ध ऐतिहासिक पुस्तक न मिलने के कारण हमें इस देश के प्राचीन इतिहास की सामग्री के लिये इन्हीं का अधिकतर सहारा लेना पड़ता है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस देश के लोगों ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान न दिया। मैं यह नहीं कहता कि प्राचीन हिन्दुओं में ऐतिहासिक प्रभा नहीं थी बल्कि मेरा अभिप्राय केवल यह है कि उन्होंने इतिहास लिखा नहीं, वे तो इस लोक की भौतिक मनुष्य स्थिति की ओर कुछ विशेष ध्यान न देकर परलोक की ओर लौ लगाए रहते थे। उनके निकट तो यह संसार मायामय था और परलोक ही सत्य था। मेरी समझ में वेदान्त का यही भ्रान्त अर्थ इस देश में ऐतिहासिक ग्रन्थों के अभाव का कारण हुआ, जिससे भारत के बड़े बड़े महान् पुरुषों के चरित्रों पर परदा पड़ा हुआ है। इस अंधकार के परदे को पुरातत्त्व-विभाग की पैनी कुदाल भी उसके फाड़ने में कुंठित हो जाती है। त्रेता और द्वापर के वीरों की बात छोड़ दीजिये यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि, कालिदास और शंकर ऐसे ऐसे विद्वानों और कवियों तथा अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त, हर्षवर्द्धन ऐसे ऐसे बड़े बड़े सम्राटों के केवल नाम ही नाम लोगों को मालूम हैं। यह ठीक है कि आजकल की छानबीन से उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें खुली हैं पर उनसे उनके विषय में पूरी जानकारी नहीं होती। जो बात मिस्टर स्मिथ ने समुद्रगुप्त वा भारतीय नेपोलियन के विषय में कही है वह यहाँ के और और महाराजाओं के विषय में भी ठीक घटती है। मिस्टर स्मिथ कहते हैं—"यह भाग्य का फेर है कि इस महाविजयी सम्राट् का, जिसने सारे भारतवर्ष को विजय करके अपना राज्य वंक्षु (Oxus) नद से लेकर सिंहल तक बढ़ाया, नाम तक भारत के इतिहासकारों को विदित नहीं। इन्हीं सत्तर वर्षों के बीच उसकी कीर्त्ति का थोड़ा बहुत उद्धार शिलालेखों और सिक्कों को परिश्रम-पूर्वक पढ़ने से धीरे धीरे हुआ है जिससे उसके राजत्वकाल की घटनाओं का विस्तार-पूर्वक वर्णन लिखना अब सम्भव प्रतीत होता है। एक इसी बात से यह पता लग सकता है कि पुरातत्त्व-विभाग को धैर्य्यपूर्वक अनुसन्धान करने में कितनी बड़ी सफलता हुई है और उसने किस परिश्रम के साथ उन खंडों को जोड़ जोड़ कर एकत्रित किया है जिनके आधार पर ही भारत का सच्चा प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।"

अहा! क्या अच्छा होता यदि हमें भारत के महान् पुरुषों के वृत्तान्त भी उसी प्रकार विदित होते जिस प्रकार यूरोप के लोगों के हैं। पर इसमें दोष किसका है? इसी देश के निवासियों का। यह काम भारतवासियों का है कि वे अपने देश के इतिहास लिखे जाने के लिये सामग्री ढूँढ़ें और अपने पूर्वजों के छोड़े हुए कीर्त्तिचिह्नों को रक्षित रक्खें। पर हममें से कितने हैं जो इस बात को समझते हैं? यदि सरकार अपने हाथ में यह कार्य्य न ले लेती तो बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री जिसके आधार पर आज पुरातत्त्व-विद् कार्य्य कर रहे हैं सब दिन के लिये नष्ट हो गई होती। पर सरकार ने अपने ऊपर पूर्ववर्त्तियों के ऋण को स्वीकार किया और इस बात को समझा कि पूर्वकाल के कीर्त्तिचिह्नों को सुरक्षित रखना उसका पहला कर्त्तव्य है। इस महादेश के इतिहास के उद्धार के निमित्त सरकार जो प्राचीन चिह्नों की रक्षा कर रही है और पुरातत्त्वविभाग चला रही है उसके लिये प्रत्येक भारतवासी को कृतज्ञ होना

चाहिये। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस देश के शिक्षित लोग भी पुरातत्त्व की खोज के महत्त्व के नहीं समझते। बहुत से लोग तो इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मुझे दैारे में बहुत से ऐसे लोग मिले हैं जो इस कार्य्य को व्यर्थ समय नष्ट करना समझते हैं। बहुतेरे लोग ऐसे भी मिले जिन्होंने कहा कि यह मुहक़मा तो केवल ख़ज़ाना ढूँढ़ने के लिए जारी किया गया है। इन पिछले लोगों का कहना एक प्रकार से ठीक भी है, क्योंकि पुरातत्त्व विभाग जिस ख़ज़ाने को खोद कर निकालता है वह अमूल्य है। वह विद्या का ख़ज़ाना है, जिससे भारत के इतिहास के अंधकारमग्न अंश प्रकाशित होते हैं। मैं आज इन्हीं रत्नों के ख़ज़ानों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ जिनकी कान्ति से भारत का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ झलक उठा है। मैं यहाँ पर बहुत संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनका पता पुरातत्त्व-विभाग ने इन ५ या ६ वर्षों के बीच लगाया है। इनसे आप लोग समझ सकते हैं इस विभाग ने उन सामग्रियों का कितना बड़ा भाण्डार खोल दिया है जिनके आधार पर भारतीय इतिहास फिर से खड़ा किया जा सकता है।

सबसे पहले तो मैं पेशावर में मिले हुए कनिष्क के स्तूप के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ, जिसके भीतर बुद्ध की धातु (अस्थि आदि) पाई गई है। कोई समय था जब लोग बुद्ध के अस्तित्व में भी शंका करते थे ग्रैार उन्हें एक कल्पित व्यक्ति समझते थे। चैादह वर्ष हुए कि पुरातत्त्व विभाग ने नैपाल की तराई में उनके जन्मस्थान का पता लगाया, जहाँ अब तक महाराज अशोक का स्तम्भ खड़ा है। उस स्तम्भ पर जो लेख मिला उससे उस लुम्मिनी वन का स्थान निश्चय रूप से स्थिर हो गया जहाँ सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। क्योंकि शिलालेख में स्पष्ट लिखा हुआ है—

हिदा बुध जाते साक्यमुनि ति। हिदा भगवन जाते ति लुम्मिनी गामे।

इस लुम्मिनी गाम को आज कल रुम्मिनदेई कहते हैं। इस लेख के प्रमाण ने बुद्ध के अस्तित्व के सम्बन्ध में जितनी शंकाएँ थीं सबको दूर कर दिया। इससे यह अच्छी तरह प्रमाणित हो गया कि बुद्ध-नामधारी वास्तव में एक महापुरुष हुए थे। ईसा से ४८३ वर्ष पहले एक स्थान पर उनकी मृत्यु ग्रैार अग्निक्रिया हुई, जिसे प्राचीनकाल में कुशीनगर वा कुशीनार कहते थे। उनकी धातु के आठ भाग किए गए जो भिन्न भिन्न देश के लोगों को उनके इच्छानुसार बाँटे गए। वे इन धातुग्रों को अपने अपने देशों में ले गए ग्रैार उन्हें स्थापित करके उन्होंने उन पर अपने वित्तानुसार स्तूप उठवाए। स्तूप ग्रैांधे घंटे के आकार के बड़े बड़े ढूह होते हैं जिनके शिखर पर छत्र होता है। पहले तो ये स्तूप बुद्ध वा बोधिसत्त्वों की धातु स्थापित करने के लिये उठाए गए। फिर ये बुद्ध के जीवन के किसी घटना-स्थल पर स्मारक रूप में उठाए जाने लगे। इसके उपरान्त तो ये केवल पुण्य के लिये स्थापित होने लगे ग्रैार लोग छोटे छोटे स्तूप बनवाकर बुद्ध वा बोधिसत्त्वों के नाम पर उत्सर्ग करने लगे।

शक-वंशीय महाराज कनिष्क के आदेश से बुद्ध की कुछ धातु पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) गई ग्रैार एक स्तूप के भीतर स्थापित की गई। बैाद्ध-कला के विषय में सबसे अधिक जानकारी रखनेवाले फ़ाउचर साहब ने इस स्तूप का स्थान आदि पहले ही बतला दिया था जिसे डाकृर स्पूनर ने चार वर्ष हुए खोद कर निकाला। इसकी लंबाई एक छोर से दूसरे छोर तक २८५ फ़ुट है। इतना बड़ा स्तूप अब तक नहीं मिला था। बहुत सा ब्योरा न देकर मैं थोड़े में इसका कुछ वर्णन करता हूँ। २० फ़ुट के नीचे इस स्तूप के एक प्रकोष्ठ में एक धातु का डिब्बा मिला जिसके साथ ही बिल्लैार की डिबिया में बुद्ध की धातु रक्खी मिली। ढक्कन खिले कमल के आकार का था जिसके ऊपर तीन मूर्त्तियाँ स्थापित थीं। बीच में बुद्ध की आसीन मूर्त्ति थी ग्रैार दोनों ग्रोर दो बोधिसत्त्वों की मूर्त्तियाँ थीं। डिब्बे का

और सब वर्णन छोड़ मैं उस पर स्थापित एक मूर्त्ति का उल्लेख करना चाहता हूँ। यह मूर्त्ति स्वयं महाराज कनिष्क की है। महाराज सीधे होकर खड़े हैं और उनके दोनों ओर दो देवता फूल की माला लिये खड़े हैं। इसके अतिरिक्त महाराज की दाहिनी ओर सूर्य्य और बाईं ओर चन्द्रमा हैं। सूर्य्य महाराज कनिष्क का अभिषेक कर रहे हैं। कनिष्क की इस मूर्त्ति का उसकी और मूर्त्तियों से मिलान करने से जो सिक्कों पर मिली हैं तथा उस मूर्त्ति के साथ मिलाने से जो अभी हाल में मथुरा से निकली है, यह निश्चय हो जाता है कि यह कनिष्क ही की मूर्त्ति है। डिब्बे पर जो लेख है उससे भी यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है। यह लेख खरोष्ठी लिपि में है जो इस देश की अत्यन्त प्राचीन लिपियों में से है और जो शारदा, ब्राह्मी, नागरी आदि के विरुद्ध दाहिनी ओर से बाईं ओर को (फ़ारसी की तरह) लिखी जाती थी। ये लेख संख्या में चार हैं और कमलदलों के किनारे किनारे लिखे हुए हैं। इनमें से एक तो पढ़ा नहीं जाता, केवल कनिष्क का नाम भर स्पष्ट पढ़ा जाता है। शेष का सारांश यह है कि यह दान सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के स्वीकारार्थ तथा सब प्राणियों के कल्याण के लिये किया गया। चौथे लेख से पता लगता है कि कनिष्क के विहार और महासेन के संघाराम का शिल्पकार वा निरीक्षक कोई अजिसाल नामी था। यह अजिसाल शब्द तथा उसके लिए जो विशेषण आया है ध्यान देने योग्य है। अजिसाल अजिसेलस या ऐसे ही और किसी यूनानी शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। लेख में दास अजिसाल लिखा है। इससे जान पड़ता है कि वह शिल्पकार कनिष्क का मोल लिया हुआ ग़ुलाम था। इन सब बातों से कनिष्क का संबन्ध स्पष्ट ज्ञात होता है। अंतिम पंक्ति में कनिष्क शब्द के अक्षर इस प्रकार लिखे गए हैं कि आधे तो कनिष्क की मूर्त्ति की एक ओर पड़ते हैं और आधे दूसरी ओर। धातु के डब्बे के भीतर जो डिबिया थी वह स्फटिक की थी और उसमें चार अस्थिखंड रक्खे हुए थे। ह्वेन्सांग नामक चीनी यात्री, जो सातवीं शताब्दी में यहाँ आया था, इन अस्थियों के विषय में कह गया है कि ये गौतम बुद्ध ही की हैं। ये हड्डियाँ किस स्थान से पेशावर गई होंगी, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि कनिष्क ऐसे प्रतापी राजा के लिये, जो बुद्ध के थोड़े ही दिनों के बाद हुआ, बुद्ध की असली धातु का पाना कुछ कठिन बात नहीं थी। यह उसके लिए स्वाभाविक था कि वह अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) की शोभा और पवित्रता के लिये उन्हें वहाँ स्थापित करता। कनिष्क का समय अभी बिलकुल ठीक ठीक निश्चित नहीं हुआ है, पर इतना कहा जा सकता है कि वह ईसा की पहली शताब्दी में हुआ था। ये हड्डियाँ वास्तव में बुद्ध की हैं या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। पर इतना अवश्य पता लगता है कि पहली शताब्दी में वे हड्डियाँ बुद्ध ही की समझी जाती थीं।

पेशावर के इस आविष्कार से कनिष्क के समय के कलाकौशल की अवस्था का भी बहुत कुछ पता लगता है। डिब्बे के देखने से कला की उन्नति का नहीं, अवनति का प्रमाण मिलता है। बहुत से लोगों ने लिखा है *गान्धार-शिल्प* की जो उन्नति हुई वह कनिष्क के कारण हुई। डिब्बे पर जो मूर्त्तियाँ हैं उनसे इस मत का समर्थन नहीं होता; क्योंकि उनकी रचना उतनी सुन्दर नहीं है जितनी अधिकांश गांधार-मूर्त्तियों की है जो (तख़्तेभाई के पास) सहरी बहलोल तथा और कई स्थानों में मिली हैं। आज तक गांधार में जितनी मूर्त्तियाँ मिली हैं उनमें कुबेर और यक्षिणी हारीति की, जिन्हें बुद्ध ने अपने धर्म में दीक्षित किया था सबसे सुन्दर हैं। एक बुद्ध की पद्मासन मूर्त्ति भी बड़ी सुन्दर है।

अब मैं एक और महत्त्व के आविष्कार का कुछ वर्णन करता हूँ, जो १९०८-१९०९ में पुरातत्त्व-विभाग द्वारा किया गया। इससे इतिहास का बड़ा उपकार हुआ। यह पहला लेख है, जिसमें पंजाब के अर्द्ध-यवन (यूनानी) राजाओं का स्पष्ट उल्लेख मिला है।

यह लेख किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका पूरा पूरा ब्योरा रायल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल (१९०९) में निकला है। वहीं पर मिस्टर मारशल ने उस स्तम्भ का वर्णन भी दिया है, जिस पर उन्हें लेख मिला है। यह स्तम्भ ग्वालियर राज्य में भिलसा (प्राचीन विदिशा) के पास बेसनगर के एक पुराने ढूह के पास है। इस पर जो लेख है दो भागों में विभक्त है, सात पंक्तियाँ तो एक ओर हैं और दो पंक्तियाँ दूसरी ओर। लेख से जाना जाता है कि यह गरुड़ध्वज है जिसे महाराज अंतलिकिदस के राजत्वकाल में तक्षशिला-निवासी डियन के पुत्र परमभागवत हेलियोडोरस ने वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् के प्रीत्यर्थ स्थापित किया था। अंतलिकिदस पंजाब का एक यवन (यूनानी) राजा था जो ईसा से १४० वर्ष पहले हुआ था। शिलालेख में एक भागभद्र नामक हिन्दू राजा का भी नाम आया है जिसकी राजधानी कदाचित् उज्जयिनी थी। यदि यह शिलालेख न मिलता तो इस राजा का नाम तक लोगों को न मालूम होता। शिलालेख का अनुवाद डाकृर फ़्लीट ने इस प्रकार किया है—

"त्राता काशिपुत्र भागभद्र के निमित्त उसके राज्य के चौदहवें वर्ष में संकाश्य के राजा चंडदास ने देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज महाराज अंतलिकिदस के यवन-राजदूत दिय (डियन) के पुत्र परम भागवत हेलिओडोरस द्वारा निर्माण कराया।"

लेख के 'त्रातृ' शब्द से यह पता लगता है कि उस समय मध्यभारत में कोई प्रबल हिन्दू राज्य था जिसके अधीन आसपास के बहुत से राजा थे। धर्म की दृष्टि से भी यह लेख बड़े महत्त्व का है, क्योंकि यह वासुदेव सम्प्रदाय का है; जिसका मुख्य सिद्धान्त वासुदेव कृष्ण की भक्ति है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि वैष्णव धर्म बहुत प्राचीन धर्म है, हाल का गढ़ा हुआ नहीं है; जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।

तीसरे आविष्कार से भी इतिहास के एक बहुत अंधकार में पड़े हुए समय की अर्थात् कुशनवंशियों के राजत्वकाल की बात का पता लगा है। प्रायः तीन वर्ष हुए कि मथुरा के सामने ईसापुर गाँव में एक शिलालेख मिला, जिससे भारत के शक-काल के इतिहास में नई बात मालूम हुई। इस लेख से प्रमाणित होता है कि कुशन-वंश में महा प्रतापी कनिष्क के बाद ही हुविष्क नहीं हुआ बल्कि इन दोनों राजाओं के बीच एक वसिष्क नाम का राजा भी हुआ है। यह शिलालेख एक लाल स्तम्भ पर है जो यज्ञ का यूप था। यह बहुत सुन्दर बना हुआ है। यह दोनों छोरों पर कुछ टूट गया है और बाक़ी ज्यों का त्यों है। सबसे ध्यान देने की बात इसके विषय में यह है कि यह हिन्दू-चिह्न है और इस पर का लेख समस्त संस्कृत में है। समस्त संस्कृत में लिखे हुए जितने लेख पाए गए हैं उनमें यह सबसे प्राचीन है। इसमें २४ संवत् दिया हुआ है जो डाकृर फ़्लीट के अनुसार ईसा से ३३-३४ वर्ष पहले पड़ता है। लेख का सारांश यह है। महाराजाधिराज साहि वसिष्क के राजत्वकाल में भरद्वाजगोत्री ब्राह्मण रुद्रिल के पुत्र द्रोणल ने द्वादशाह यज्ञ किया और यूप खड़ा किया। लेख में जो संवत् दिया हुआ है वह कौन संवत् है, यह निश्चित नहीं होता। सम्भव है कि वह राजा कनिष्क का चलाया हुआ संवत हो। पर डाकृर फ़्लीट उसे विक्रम-संवत् मानते हैं।

इस लेख से यह विषय अच्छी तरह से निर्धारित हो जाता है कि ईसा की पहली शताब्दी के लगभग वसिष्क नामक एक राजा हुआ जिसका आधिपत्य मथुरा में था और कदाचित् साँची में भी; जहाँ उसके नाम का एक और शिलालेख पाया गया है। हम लोग अच्छी तरह जानते हैं कि कुशन-वंश का प्रताप कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में ख़ूब बढ़ा चढ़ा था। कनिष्क का राज्य काबुलिस्तान से लेकर मथुरा क्या उसके और आगे तक था। ह्वेन्सांग के अनुसार तो मध्य-भारत का भी बहुत सा भाग उसके राज्य में था।

दूसरा बड़ा काम पुरातत्त्व-विभाग ने यह किया कि उसने प्राचीन श्रावस्ती का पता लगाया।

श्रावस्ती के खंडहर आजकल सहेत महेत के नाम से प्रसिद्ध हैं और गोंडा ज़िले में बलरामपुर के पास हैं। इस स्थान के श्रावस्ती होने का निश्चित प्रमाण लेखों में पाया गया है। एक लेख तो कुशन-समय की एक बुद्ध मूर्त्ति पर है जिसमें उस छत्र-दंड-युक्त मूर्त्ति का श्रावस्ती में कौशाम्बकुटी के भीतर उस स्थान पर स्थापित किया जाना लिखा है जहाँ भगवान् बुद्ध टहला करते थे (भगवतो चंकमे)। दूसरा लेख ताम्रपत्र पर है और कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के समय का है, इसमें विक्रम संवत् ११८६ (सन् ११३०) दिया हुआ है। ये दोनों लेख हमारे प्रान्तीय अजायबघर में सुरक्षित हैं। सब संस्कृत पढ़नेवाले लोग श्रावस्ती के नाम से परिचित होंगे। इसी स्थान पर वह प्रसिद्ध जेतवन आराम था जहाँ बुद्ध रहते थे। श्रावस्ती और जेतवन आराम का ठीक ठीक पता लग जाना पुरातत्त्वविदों ही के मतलब की बात नहीं है, बल्कि करोड़ों बौद्धों के लिए, जो भगवान् बुद्ध के आवास को संसार में अत्यन्त पवित्र स्थान मानते हैं, बड़े महत्त्व की बात है।

इसी प्रकार कुशीनार के विषय में भी समझना चाहिए, जहाँ बुद्ध का निर्वाण हुआ था। इस स्थान के विषय में बहुत झगड़ा था जो अब मेरी पाई हुई वस्तुओं से तै हो गया है। जनरल कनिंहम और उनके सहायक मिस्टर कालहिल बहुत पहले गोरखपुर ज़िले के कसया नामक स्थान को कुशीनार बतला गए थे। पर उनकी बात संदिग्ध समझी गई और कसया पर पुरातत्त्व-विभाग की कई चढ़ाइयाँ हुईं। कुछ मोहरें पाई गईं जिन पर 'महापरिनिर्वाण' वाक्य लिखा हुआ था ये मोहरें यथेष्ट प्रमाण थीं। पर जब मैंने निर्वाणचैत्य के भीतर से एक लेख निकाला तब यह बात अन्तिम रूप से निश्चित हो गई कि कसया ही कुशीनार है। मैंने चैत्य के ऊपर का भाग साफ़ किया और उसके बीचोबीच एक सुरंग खोदी, जिसके सहारे से बहुत से बहुमूल्य प्राचीन लेख मिले जो म्यूज़ियम में रक्खे हैं। इनमें सबसे महत्त्व का एक ताम्रपत्र है। उस पर जो लेख है उसकी अंतिम पंक्ति में "निर्वाण-चैत्य ताम्रपत्र" स्पष्ट लिखा हुआ है। यह लेख पूर्ण-रूप से प्रमाणित करता है कि बुद्ध का निर्वाण कसया में हुआ था।

पाँचवीं वस्तु जो काम की पाई गई वह सारनाथ का अशोक-स्तम्भ है। यह समूचा एक पत्थर का है और इस पर बहुत बढ़िया पालिश (रौग़न) किया हुआ है। यह उस स्थान पर स्थापित किया गया था जहाँ बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करके पहले पहल धर्म-चक्र का प्रचार किया था। यह अब सारनाथ के म्यूज़ियम में रक्खा हुआ है। इसके सिरे पर बड़ी सुन्दर कारीगरी है। जान पड़ता है कि यह स्तम्भ उस समय स्थापित किया गया था जब ईसा से २४९ वर्ष पूर्व महाराज अशोक बौद्ध-तीर्थ-स्थानों की यात्रा के लिए निकले थे। बड़े दुःख की बात है कि कारीगरी का ऐसा सुन्दर चिह्न गिरा कर खंडित कर दिया गया। उसका एक अंश ही अब अपने आधार पर स्थित बच गया है।

दूसरा बड़ा काम जो इस विभाग ने किया वह प्राचीन वैशाली के स्थान का पता लगाना है। यह स्थान मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत बसाढ़ में है और इसे आज-कल राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यद्यपि इसकी खुदाई से कोई विशेष महत्व के चिह्न नहीं मिले हैं पर मिट्टी की मुद्राएँ आदि जो कुछ छोटी मोटी चीज़ें पाई गई हैं वे बड़े काम की हैं। उनसे उस प्राचीन समय की राजनैतिक, धार्मिक तथा कलाकौशल-सम्बन्धी अवस्था का बहुत कुछ पता चलता है। इन बड़ी बड़ी राजमुद्राओं (मुहरों) से उस समय की प्रचलित राज-पद्धति का बहुत कुछ आभास मिलता है। इनमें से एक का, जो ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पहले की है, यहाँ पर मैं विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ। जितनी मुद्राएँ आज तक मिली हैं उनमें यह सबसे पुरानी है। यह चौखूँटी है और बिल्कुल अखंडित है। इस पर तीन प्राचीन संकेत बने हैं और मौर्य्यकाल की लिपि में तीन पंक्तियों का एक लेख भी है। इस मुद्रा के विषय में दो भिन्न मत हैं। डाक्टर स्पूनर का अनुमान है कि यह

वैशाली नगर की पुलिस की प्रधान मुद्रा है जो टकार नामक ग्राम की चौकी पर रक्खी गई थी। पर डाक्टर वीनिस का मत है कि यह लेख उस जाँच से सम्बन्ध रखता है जिसके लिए हर तीसरे वर्ष अशोक की आज्ञा से दौरा होता था। यह दूसरा अनुमान अधिक सम्भव और ठीक जान पड़ता है। यहाँ पर यह बात कह देना आवश्यक है कि ऐसे चिह्न केवल सिद्धान्त स्थिर करने में सहायकमात्र हो सकते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाए जा सकते हैं। इससे केवल उन पर किसी सिद्धान्त का स्थिर करना ठीक नहीं होता। उदाहरण के लिए इन्हीं मुद्राओं के साथ एक जंतर (तावीज़) मिला है जिस पर 'Made in Austria' (आस्ट्रिया का बना) लिखा हुआ है। अब क्या इससे हम यह सिद्धान्त निकालें कि वैशाली में कभी आस्ट्रिया का राज्य था?

दूसरी मुद्रा से, जिस पर लक्ष्मी की एक खड़ी मूर्त्ति बनी है, यह प्रमाणित होता है कि तक्षशिला के समान वैशाली में भी पाटलिपुत्र के राजवंश का एक प्रतिनिधि शासक रहता था। लेख जो मुद्रा पर है वह बहुत स्पष्ट नहीं है पर उसका यह अर्थ लगाया गया है—"वैशाली नामक कुंड के प्रतिनिधि राजकुमार के मंत्री की मुद्रा"। तीसरी मुद्रा यद्यपि छोटी है पर बड़ी कुतूहल-पूर्ण है। इसकी बनावट तथा लेख की अंकनशैली देखने से आज कल की भारतीय सरकार की मुहर का ध्यान होता है।

अब मैं तक्षशिला की खुदाई का कुछ वर्णन करूँगा जो जारी है और जिससे पुरातत्त्वज्ञ लोग बड़े बड़े ऐतिहासिक रहस्यों के खुलने की आशा कर रहे हैं। डाक्टर मार्शल की अध्यक्षता में जो काम गत वर्ष हुआ उससे इतिहास के बहुत से विवाद-ग्रस्त विषयों पर प्रकाश पड़ा है। मैं यहाँ बहुत संक्षेप में उस काम का उल्लेख करूँगा जो वहाँ हुआ।

तक्षशिला रावलपिंडी से दस कोस उत्तर-पश्चिम एक हरे भरे मैदान में है, जहाँ से कश्मीर की हिमावृत पर्वत श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस प्राचीन नगरी की स्थिति एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर थी जहाँ से होकर फ़ारस, तुर्किस्तान आदि से व्यापार करनेवाले व्यापारी आते जाते थे। इस नगरी के खँड़हरों को देखने से जान पड़ता है कि दिल्ली की तरह भिन्न भिन्न राजाओं के अधिकार में पड़कर इसकी बस्ती भी समय समय पर बदलती रही। तक्षशिला की स्थापना अत्यंत प्राचीन काल में हुई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि रामचन्द्र के भाई भरत के पुत्र तक्ष ने यह नगरी बसाई थी। पर ऐसे प्राचीन काल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। एक बात तो निश्चित है कि तक्षशिला उस समय एक प्रधान विद्यापीठ और कलाकौशल का केन्द्र थी। सिकन्दर जब भारत में आया (३२६ वर्ष ईसा से पूर्व) तब पहले पहल तक्षशिला ही के राजा ने अधीन होकर उससे मित्रता की। पर इसके चार वर्ष उपरान्त जब मौर्य्य चन्द्रगुप्त सम्राट् हुआ तब उसने पंजाब से यूनानी सेना को निकाल दिया। अशोक के समय तक तक्षशिला पर मौर्य्यों ही का अधिकार रहा। इसके पीछे उस पर बलख़ के अर्द्ध-यवन (यूनानी) राजाओं का अधिकार हुआ और फिर पारदों (Parthians) का। पारदों के पीछे फिर उस पर कुशन राजाओं का अधिकार हुआ, जिनमें कनिष्क महा प्रतापी हुआ। खँड़हरों में बीर टीला ही मौर्य्यकाल की बस्ती का चिह्न बतलाता है। 'सिरकप' और 'चिर' नामक ढूह और और काल की बस्तियों के चिह्न हैं जिनमें पारदों के समय का ईंटों का काम विशेष ध्यान देने योग्य है। चार सौ वर्षों के बीच इस नगरी पर मगध, यूनान पश्चिमी चीन ऐसे भिन्न भिन्न देशों की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। कुशन वंश की शक्ति के ह्रास और गुप्त वंश के प्रबल प्रताप के उदय के साथ ही इस नगरी की श्री भी लुप्त होने लगी। ईसा की सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएन्सांग भारत में आया था तब तक्षशिला कश्मीर राज्य के अधीन थी और उसके सब स्थान उजड़ गए थे।

तक्षशिला के खँड़हर बारह वर्ग मील के विस्तार में हैं। चार स्थानों पर जो जाँच के लिए खुदाई हुई उनसे यह पता चला कि कुशन वंश की इमारतें पारदों के खँड़हरों के ऊपर बनी थीं। कदफ़िसस, कोज़ौल और वेम्र के सिक्के नीचे की तह में मिले हैं। कनिष्क और हुविष्क के सिक्के उनके ऊपर पाए गए हैं। वासुदेव के सिक्के चतुर्थ काल की इमारतों से सम्बन्ध रखते हैं। डा० मार्शल का कहना है कि ये कोठरियाँ ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में बनी थीं और उनकी मरम्मत और वृद्धि दूसरी शताब्दी में हुई थी। चतुर्थकाल के भवन तीसरी शताब्दी के आरम्भ में उठे थे। इसी अनुमान के अनुसार उन्होंने कदफ़िसस के सिक्कों का काल पहली शताब्दी का अन्तिम भाग वा दूसरी शताब्दी का आरंभ निश्चित किया है और कनिष्क और हुविष्क के सिक्के दूसरी शताब्दी के मध्य और वासुदेव के सिक्के दूसरी शताब्दी के अन्त और तीसरी शताब्दी के प्रारंभ के बतलाए हैं। डा० मार्शल कहते हैं कि ये सिक्के यहाँ गाड़े जाने के पहले प्रचलित रहे होंगे। जो कुछ हो इस खोज से इतना पता तो अवश्य लगता है कि कनिष्क ने दूसरी शताब्दी में राज्य किया था, पहली में नहीं, अतः उसका ईसा से ५७ वर्ष पहले राजसिंहासन पर बैठना सिद्ध नहीं होता।

कनिष्क के काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अतः जब तक कोई प्रामाणिक लेख नहीं मिलता तब तक एकमत नहीं हो सकता। यदि इस विषय में अधिक जानना हो तो डा० मार्शल का व्याख्यान देखिए, जो उन्होंने ४ सितंबर १९१३ को पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी के सामने दिया था।

तक्षशिला की इस खोज से भारत की भवन-निर्माणकला का बहुत कुछ सूत्र मिलता है और भारतीय शिल्प के विकाश के सम्बन्ध में बहुत सी बातें निश्चित हुई हैं। पारदों की शिल्पकला में यूनानी भावों की प्रधानता पाई जाती है। उसके द्वारा भारत में यूनानी भावों का बहुत कुछ प्रचार हुआ होगा।

ऊपर जो बातें लिखी गईं उनसे पुरातत्त्व-विभाग की उपयोगिता प्रकट होती है। प्राचीन-लेखोद्धार जो इसका एक प्रधान अंग है भारत की अनेक अतीत और विस्मृत घटनाओं को निश्चित रूप से जानने का प्रधान द्वार है। यही नहीं, यह अर्वाचीन इतिहास के लिए भी बड़ा उपयोगी है। यहाँ पर मैं मछलीशहर (ज़ि० जौनपुर) में मिले हरिश्चन्द्र के उस ताम्रपत्र का उल्लेख भी कर देना चाहता हूँ जिसे मैंने Epigraphia Indica. में प्रकाशित किया है। कन्नौज के राजवंश में हरिश्चन्द्र का नाम नया मिला है। पुरातत्त्व-विभाग ने हिन्दू बौद्ध और जैनकला के श्लोक-चिह्न खोद निकाले हैं। इनमें से बहुत से तो म्यूज़ियमों में रक्खे हुए हैं।

यहाँ मथुरा की तक्षणकला (संगतराशी, पत्थर की कारीगरी) के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। जैसे कि भारत की और और विद्याओं और कलाओं के सम्बन्ध में वैसे ही तक्षण-कला के सम्बन्ध में भी पहले लोगों की धारणा थी कि उसका विकाश यूनानी संसर्ग के प्रभाव से हुआ। कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान भी लड़ा डाला कि बलख़ के कुछ यवन (यूनानी) शिल्पकारों को मथुरा के धनाढ्य बौद्ध अपने यहाँ ठीक उसी प्रकार नौकर रखते थे जिस प्रकार पिछले खेवे मुग़ल बादशाह यूरोपियन कारीगरों को नौकर रखते थे। पर अब मथुरा की शिल्पकला का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह बात प्रमाणित हो गई कि उसका विकाश भारतीय कारीगरों ही ने किया था। इन कारीगरों को वायव्य से कुछ उत्साह अवश्य मिला, पर इन्होंने गांधार की कारीगरी को बिलकुल भारतीय साँचे में ढाला। मथुरा के शिल्प में भारतीय-भाव सबसे अधिक पत्थर के चित्रित बेड़ों (railings) में लक्षित होता है जो स्तूपों के किनारे

लगे हुए थे। ये वेंड़े उत्तर-पश्चिम में नहीं मिलते। मथुरा के ये वेंड़े भारत के पुराने ढाँचों पर बने हैं यह उनकी बनावट और नक़ाशी से साफ़ झलकता है। इन बेडों पर स्त्री पुरुषों के बड़े सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार के कई खंभे लखनऊ के म्यूज़ियम में रक्खे हैं।

एक बात मुझे और कहनी है। कई जगह ताँबे के अस्त्र और औज़ार मिले हैं जिनमें से कई एक लखनऊ के म्यूज़ियम में हैं। इनके विषय में साधारण लोगों की धारणा है कि ये रामायण और महाभारत के समय के हैं। बिठूर (ज़ि० कानपूर) और परियार (ज़ि० उन्नाव) में जो मिले हैं उनके विषय में जनश्रुति है कि वे लवकुश की लड़ाई के समय के हैं। वे जो कुछ हों, पर वे ऐसे अतीत काल के विलक्षण चिह्न हैं जहाँ तक इतिहास की पहुँच नहीं। इसी प्रकार बहुत से पत्थर के हथियार मिले हैं जो प्रस्तर-युग के अर्थात् ईसा से दो तीन हज़ार वर्ष पहले के हैं। ये सब चिह्न ऐतिहासिक काल के पूर्व के हैं और उन जिज्ञासुओं के बड़े काम के हैं जो सतयुगी बातों को जानना चाहते हैं। अब तक हम लोगों को कोई ऐसे चिह्न नहीं मिले हैं जिनसे वैदिक तथा रामायण वा महाभारत के काल की सभ्यता का कुछ पता चलता हो, पर यह निश्चय है कि यदि उस काल के कोई चिह्न मिलेंगे तो इसी हमारे आर्य्यावर्त्त में मिलेंगे। आशा की जाती है कि इस पुरातत्त्व-विभाग को अभी और न जाने कितने ऐसे चिह्न मिलेंगे जिनके सहारे इतिहासकार भारत का एक शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे।

—:०:—

जम्बू-राजवंश।

(२)

मुलतान और काश्मीर के युद्धों में गुलाबसिंह अफ़ग़ानों से बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे। इसके पुरस्कार-स्वरूप सन् १८२२ में महाराज रणजीतसिंह ने अमरगढ़ से एक परवाना जारी करके, उन्हें जम्बू और रामनगर का राज्य प्रदान किया था। उस परवाने पर स्वयं महाराज रणजीतसिंह के दाहिने पंजे की केसरिया छाप थी। गुलाबसिंह को राजगद्दी देते समय भी, महाराज ने उनके मस्तक पर इसी प्रकार पंजे की छाप लगाई थी, पर यह छाप किसी प्रकार उलटी लग गई थी। एक दरबारी के इस उलटी छाप का कारण पूछने पर महाराज ने कहा भी था कि उन्होंने गुलाब सिंह का वृक्ष, चिरकाल तक बने रहने के लिए, भूमि में लगा दिया है। उक्त परवाने पर चौथी, असाढ़ सं० १८७९ वि० (सन् १८२२) की तिथि दी हुई है। राज्य पाने के कुछ दिनों बाद गुलाबसिंह जम्बू चले और महाराज लाहौर लौट आये। गुलाबसिंह के जम्बू पहुँचने पर प्रजा ने बहुत प्रसन्नता प्रगट की थी; राज्य की ओर से कई दावतें दी गई थीं और प्रत्येक मकान का कर दो रुपये कम कर दिया गया था।

कुछ समय बाद सरदार अज़ीमख़ाँ बाग़ी हो गया और बहुत अधिक उपद्रव करने लग गया। इस पर महाराज रणजीतसिंह ने आठ हज़ार सिपाहियों को राजकुमार शेरसिंह की अधीनता में सरदार की ओर भेजा। उस समय गुलाबसिंह, सरदार हरीसिंह सिन्धानदालिया, और अटारीवाले सरदार भी उनके साथ थे। सेना ने अटक के निकट सिन्धुनद पार किया; वहीं शत्रुओं से उसका कुछ मुक़ाबला भी हुआ। पर जब यह सेना आगे बढ़कर तेहरी नाम की नदी पार कर चुकी, तो वहाँ आस पास के स्थानों से अचानक ४०००० ग़ाज़ी निकल

आये। उनमें से १५००० आदमी तो सरदार अहमद-ख़ाँ की अधीनता में थे और शेष सय्यद अहमद के अनुयायी थे। सय्यद अहमद ने जहाद का झंडा खड़ा किया था और इसी लिए धर्म्म के नाम पर उसे बहुत से आदमी मिल गये थे। जब शत्रुओं की इतनी प्रबलता का समाचार महाराजा रणजीतसिंह को मिला तो वे स्वयं युद्धस्थल पर पहुँच गये। पर वह स्थान युद्ध के लिए उपयुक्त न देख कर महाराज ने तेहरी के क़िले पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। सरदार अहमदख़ाँ ने क़िलेवालों की सहायता करने के अभिप्राय से अपनी सेना को नाव पर चढ़ा कर नदी पार करना चाहा था; पर उसी अवसर पर महाराज की सेना ने उसकी सारी नावें डुबा दीं। सरदार अहमदख़ाँ बड़ी कठिनता से इस दुर्घटना से अपनी जान बचा कर काबुल की ओर भाग गया।

रामनगर के निकट पिंड नामक पहाड़ी इलाक़े में एक क़िला था। उस क़िले और उसके आस पास के स्थान का नाम समरथ था। सन् १८२४ में दीवान अमीरचन्द की सम्मत्ति से गुलाबसिंह ने उस क़िले पर आक्रमण करने का विचार किया, १००० योद्धा साथ लेकर वह क़िला जा घेरा और उसके चारों ओर खाँई खोद डाली। उसी अवसर पर गुलाबसिंह ने क़िले वालों से यह भी कहला दिया कि यदि वे शीघ्र ही आत्मसमर्पण न कर देंगे तो बड़ी विपत्ति में पड़ जायँगे। क़िले वाले भी इतने भयभीत हो गये थे कि उन्होंने कुछ निश्चित धन देना और आत्म-समर्पण करना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि उनका जीवन और उनकी सम्पत्ति नष्ट न हो। गुलाबसिंह ने भी यह शर्त स्वीकार करके क़िले पर अपना अधिकार कर लिया और मियाँ विशन्न को वहाँ का थानेदार नियुक्त करके वह जम्मू लौट आये। जब इस विजय का समाचार रणजीतसिंह को मिला तो उन्होंने दिलारामसिंह को उस क़िले पर अधिकार करने के लिए भेजा; पर पीछे से वह क़िला उन्होंने रामकोट और सानियाँ के अधिकारी सुचेतसिंह को दे दिया।

एक बार महाराज रणजीतसिंह के बहुत बीमार होने का समाचार सुनकर सरदार बुधसिंह सन्धान-वालिया ने गोविन्दगढ़ के क़िले पर अधिकार करना चाहा। रात के समय बुधसिंह इसी अभिप्राय से क़िले के दरवाज़े पर पहुँचा और उसने क़िले वालों से फाटक खोलने के लिए कहा। पर क़िले वालों ने उत्तर दिया कि उन्हें सूर्यास्त से पहले क़िले का दरवाज़ा न खोलने की आज्ञा मिली हुई है; इसलिए विवश होकर बुधसिंह लौट गया। महाराज को समय समय पर बुधसिंह से अच्छी सहायता मिला करती थी, इसलिए उन्होंने उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसे पेशावर जाकर अफ़ग़ानों से युद्ध करने की आज्ञा दी। अफ़ग़ानों का उपद्रव उस समय बहुत बढ़ गया था। पेशावर पहुँच कर बुध-सिंह ने देखा कि बहुत बड़ी अफ़ग़ान सेना उसका सामना करने के लिए उपस्थित है। उस सेना में सय्यद अहमद, यार मुहम्मदख़ाँ, सुलतान मुहम्मद-ख़ाँ और मीर मुहम्मदख़ाँ आदि कई बड़े बड़े सरदार थे, इसलिए बुधसिंह वहीं रुक गया और उसने वहाँ का सब समाचार महाराज के पास लाहौर भेज दिया। महाराज ने उसी समय गुलाबसिंह और दीवान अमीर चंद के पास आज्ञा भेजी कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, वे अपनी सारी सेना लेकर बुधसिंह की सहायता के लिए पेशावर जायँ। इसी बीच में अफ़ग़ान सेना हसन अब्दाल पर अपना अधिकार कर चुकी थी। महाराज की आज्ञा पाकर सुचेतसिंह और अटारी वाले सरदार भी बुधसिंह की सहायता को पहुँच गये थे और अफ़ग़ानों के साथ उनकी कई बार मुठभेड़ भी हो चुकी थी। जब सारी सिख-सेना एकत्र हो गई तो उसने कई छोटे छोटे युद्धों में अफ़ग़ानों को परास्त किया और अन्त में उसने संवत् १८८२ के फागुन की १४वीं तिथि को (सन् १८२५) सैदू के युद्ध में पठानों को वहाँ से हटा कर ही छोड़ा। गुलाबसिंह अपने जीवन में अन्तिम बार इसी युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़े थे।

पिंड दादनखाँ, मेरा, मियानी, कादिराबाद, डुंमी मंडी आदि झेलम के दाहिने किनारे के सभी स्थानों के अधिकारी बड़े अराजक हो गये थे और उन प्रान्तों में कुप्रबन्ध के कारण बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। इसलिए सन् १८३० में महाराज रणजीतसिंह ने गुलाबसिंह को उन सब स्थानों का अधिकारी बना दिया। गुलाबसिंह ने अधिकार पाते ही अनेक डाकुओं और लुटेरों को क़ैद कर लिया और कुछ को मरवा डाला; इस कार्य्य से वहाँ की प्रजा बहुत सुखी और सन्तुष्ट हो गई। इसके सिवा गुलाबसिंह ने बहुत सी परती भूमि के जोतने बोने का भी प्रबन्ध कर दिया। सन् १८३३ में महाराज ने उन्हें झेलम और रोहतास के ज़िले दे दिये और सन् १८३६ में उन्हें गुजरात का अधिकार भी मिल गया।

उन दिनों पेशावर महाराज रणजीतसिंह के अधीन था, और सरदार हरीसिंह वहाँ के अधिकारी थे। सन् १८३४ में महाराज को समाचार मिला कि अफ़ग़ानिस्तान-नरेश दोस्त मुहम्मदख़ाँ पेशावर पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन करने का विचार कर रहा है। उसी समय महाराज ने पेशावर की ओर प्रस्थान किया। जब पेशावर में लोगों को महाराज के आने की ख़बर मिली तो सरदार हरीसिंह, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह आदि मुख्य मुख्य सरदार महाराज के स्वागत के लिए क़िले से निकले। पर शत्रुओं ने बीच में ही किसी प्रकार नदी का जल रोक कर उसका रुख़ बदल दिया था। इसलिए महाराज की सेना को जल के लिए बड़ी कठिनता हुई। बहुत ढूँढने पर अन्त में उन्हें वह स्थान मिल गया जहाँ शत्रुओं ने बाँध बाँधा था। उसी स्थान पर महाराज की छावनी पड़ी; दोस्त मुहम्मदख़ाँ भी निकट ही अपनी सेना सहित ठहरा हुआ था। महाराज ने अपने सरदारों को सेना सहित तुरन्त आकर लश्कर में सम्मिलित होने की आज्ञा दी। महाराज नित्य अपनी और अपने सरदारों की सेना का निरीक्षण किया करते थे और शत्रुओं को सुनाने के लिए रण-वाद्य बजवाया करते थे। जब अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के भाई सुलतान मुहम्मदख़ाँ और पीर मुहम्मदख़ाँ को महाराज की इन तैयारियों का समाचार मिला तो उन्होंने गुलाबसिंह के पास एक दूत भेज कर महाराज से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। सब बातों का निश्चय हो जाने पर सरदार सुलतान मुहम्मदख़ाँ आकर गुलाबसिंह से मिले। गुलाबसिंह ने उनका यथेष्ट आदर सत्कार करके उन्हें महाराज के समक्ष उपस्थित किया। ख़ाँ पर प्रभाव डालने के लिए वे उन्हें उस मार्ग से ले गये थे, जिसके दोनों ओर विशाल सिख सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी हुई थी। पर इस भेंट का फल आशानुरूप न हुआ और महाराज ने कुछ निश्चित वार्षिक कर, घोड़े, तलवारें और फल आदि लेकर ही, अमीर को पेशावर और डेरा गाज़ीख़ाँ का प्रान्त दे देना निश्चय किया। इस निश्चय से सरदार हरीसिंह इतने अधिक असन्तुष्ट थे कि उन्होंने महाराज को उसी समय अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ को बन्दी कर लेने की सम्मति दी; पर गुलाबसिंह ने बीच में ही रोक दिया, क्योंकि वह अमीर को सकुशल वहाँ से लौटा लाने का वचन दे चुके थे। जब अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ ने अपने भाई से महाराज तथा सिख-सेना के सम्बन्ध की सब बातें विस्तृत रूप से सुनीं तो वह तुरन्त क़ाबुल लौट गया। इसके बाद महाराज ने सरदार सुलतान मुहम्मदख़ाँ को अपनी ओर मिलाना चाहा और इस कार्य्य का भार गुलाबसिंह पर सौंपा। सिखों और अफ़ग़ानों में फ़क़ीर अज़ीज़उद्दीन दूतत्व करते थे; गुलाबसिंह ने उन्हीं की सहायता से महाराज की इच्छा पूर्ण कर दी। तदुपरान्त कोहाट, दुआब, पेशावर आदि जागीर की भाँति सुलतान मुहम्मदख़ाँ पीरमुहम्मदख़ाँ और सैयद मुहम्मदख़ाँ को देकर, और वहाँ का पूरा प्रबन्ध करके महाराज लाहौर लौट गये।

सन् १८३७ में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के पुत्र वज़ीर मुहम्मद अकबर ने जमरूद के क़िले पर चढ़ाई की। जमरूद का नाम सिखों ने फ़तहगढ़ रक्खा था।

जब यह समाचार सरदार हरीसिंह को मिला तो वे तुरन्त पेशावर से चल पड़े। जब वह तक्खल नामक स्थान पर पहुँचे तो उनका सामना ५० अफ़ग़ानों से हुआ; शेष अफ़ग़ान उस समय अली मसजिद के निकट एक पहाड़ी के पीछे छिपे हुए थे। हरीसिंह ने अफ़ग़ानों पर आक्रमण किया और अफ़ग़ान अपने शेष साथियों से मिलने के लिये जान बूझकर पीछे हटने लगे। इस युद्ध में सरदार हरीसिंह बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे और अन्त में वे बुरी तरह घायल होकर जमरुद के क़िले में चले गए और वहीं उनका देहान्त हो गया। लेकिन सेनापति महान्सिंह बराबर क़िले की रक्षा करते रहे और सरदार हरीसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाए रखने के लिये दोनों समय उनके लिये बराबर भोजन भेजते रहे। महान्सिंह ने महाराज को सरदार की मृत्यु की सूचना देने के लिये एक दूत भी भेजा, पर दरबार में किसी को ऐसा दुःसंवाद सुनाने का साहस ही न होता था। अन्त में फ़क़ीर अज़ीज़उद्दीन ने महाराज को यह समाचार सुनाया। महाराज को सरदार की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत अधिक दुःख हुआ और उन्होंने राजा ध्यानसिंह और सुचेतसिंह को तुरन्त जमरुद की ओर भेजा। मार्ग में रोहतास के निकट शहजादाराय भी अपनी सेना सहित उनमें आ मिले और सब लोग प्रति दिन ६० कोस का धावा मारते हुए पेशावर की ओर बढ़े। वहाँ जमादार खुशहालसिंह नई सहायक सेना की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। राजा ध्यानसिंह के साथ फ्रांसीसी योद्धा पलार्ड भी था। सिख-सेना की प्रबलता देखकर अफ़ग़ानों को उसका सामना करने का साहस न हुआ और वे लौटकर खैबर घाटी की ओर चले गए। गुलाबसिंह को भी, जो कि उस समय चिनियोट में थे, महाराज की ओर से सेना सहित पेशावर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी। मार्ग में खैराबाद के निकट डाकुओं ने उनके कुछ ऊँट ले लिए थे जो कि गुलाबसिंह ने उनका पीछा करके फिर उनसे छीन लिए। जब उनकी सेना लन्दा नदी पार करके यूसफ़ज़इयों के मध्य में पहुँची तो उनमें से कुछ ने तो गुलाबसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली, पर कुछ लोगों ने उनका विरोध किया। गुलाबसिंह ने युद्ध करके उन सबको भी परास्त और अधीन किया। इसके बाद पुंछ के परगने में भी थोड़ा बहुत उत्पात हुआ और वहाँ के शम्स नामक एक व्यक्ति ने विद्रोह किया था; पर गुलाबसिंह ने उसे भी युद्ध में मार डाला और रजावड़ी की ओर प्रस्थान किया।

सन् १८३८ में महाराज रणजीतसिंह जम्मू गए थे। गुलाबसिंह और ध्यानसिंह ने उस अवसर पर महाराज का बहुत आदर सत्कार किया था और उनके स्वागत, भेंट और भोज आदि में प्रायः सवा-लाख रुपए ख़र्च किए थे। वहीं गुलाबसिंह ने रणबीरसिंह को भी महाराज के समक्ष उपस्थित किया और दरबार में उन्हें महाराज के सामने स्थान दिलाया था। दूसरे दिन महाराज ठाकुरजी के दर्शनों के लिये ठाकुरद्वारे में गए थे; उस दिन उनके साथ केवल गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और मिश्र रामकृष्णजी थे। दो दिन जम्मू में ठहर कर महाराज वहाँ से चले गए। चलते समय गुलाबसिंह ने एक हाथी, एक सुनहला हौदा, कई घोड़े और अन्य अनेक बहुमूल्य पदार्थ महाराज को भेंट किए थे। इसके अतिरिक्त महाराज के दरबारियों को भी उन्होंने बहुत कुछ भेंट किया था। मि० फ्रेडरिक मैकिसन को भी एक ख़िलत मिली थी और फ़क़ीर अज़ीज़उद्दीन द्वारा उन्हें कह दिया गया था कि गुलाबसिंह का लाहौर वाला मकान भी उनकी नज़र था।

दूसरे वर्ष सन् १८३९ में (शुक्रवार, १५ आषाढ़ संवत् १८९६ वि०) महाराज रणजीतसिंह का देहान्त हो गया। जब पेशावर में यह समाचार गुलाबसिंह को मिला वे अत्यन्त दुःखी हुए। महाराज खड़गसिंह ने राज्याधिकार पाकर चेतसिंह को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। चेतसिंह दुश्चरित्र और दुष्ट स्वभाव का आदमी था। स्वयं खड़गसिंह भी अदूरदर्शी थे और उन्होंने छल करके कई सरदारों को मरवा डाला

था। इसलिये एक दिन राजा सुचेतसिंह जमादार ख़ुशहालसिंह लहनासिंह मजीठिया आदि कई बड़े बड़े सरदारों ने राजकुमार नौनिहालसिंह के पास जाकर उन्हें राज्य की दुरवस्था आदि की सूचना दी। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया कि यद्यपि किसी दूषित अंग को काट डालने से शरीर को कुछ वेदना होती है तथापि इससे जीवन की रक्षा अवश्य होती है; इसलिये यद्यपि चेतसिंह के न रहने पर महाराज खड्गसिंह को कुछ कष्ट अवश्य होगा पर तो भी अनेक भारी संकटों से बचने के लिये यदि कल आप लोग सूर्य्योदय से पहले राजमहल में आकर चेतसिंह के प्राण लेलें तो बहुत अच्छा हो। सब लोग इस प्रस्ताव से सहमत हुए और उन्होंने चेतसिंह की हत्या करने की शपथ खाई। सरदार लहनासिंह साधु पुरुष थे, इसलिये उन्होंने हत्या में सम्मिलित होना तो अस्वीकार किया, पर इस बात की शपथ खा ली कि वे यह भेद किसी पर प्रकट न करेंगे। इसी निश्चय के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल सब सरदार राजमहल में राजकुमार नौनिहालसिंह के पास पहुँचे और उन्हें साथ लेकर महाराज खड्गसिंह के शयनागार में घुसे। आहट पाकर पहरेदार भी जाग उठे, पर जब उन्होंने राजकुमार नौनिहालसिंह और राजा ध्यानसिंह को देखा तो वे चुप हो रहे। इस बीच में महाराज भी उठकर ईश्वराराधन कर रहे थे; इतने में गुलाबसिंह ने कान्हसिंह और एक दूसरे फ़र्राश को बन्दूक़ से मार गिराया। इसपर महाराज ने उठकर अपने शयनागार का द्वार अन्दर से बन्द कर लेना चाहा, पर राजकुमार द्वार के आगे अड़कर खड़े हो गए और सब सरदार अन्दर चले गए। महाराज का स्नेह चेतसिंह पर बहुत अधिक था, इसलिये उन्होंने चेतसिंह को अपने गले से लगा लिया। सब सरदार बलपूर्वक चेतसिंह को अपनी ओर खींचने लगे। चेतसिंह वहाँ से छूटकर तहख़ाने की ओर भागे, पर राजा ध्यानसिंह ने उन्हें भागने का अवसर न दिया और वहीं अपने ख़ंजर से उन्हें मार डाला। महाराज बहुत दुःखी होकर सब सरदारों को दुर्वचन सुनाने लगे। अपने पुत्र पर उनका क्रोध बहुत अधिक था, क्योंकि वे समझते थे कि उन्हों ने राजपद पाने के अभिप्राय से यह षड्यन्त्र रचा है। इसीलिये उन्होंने अपने पुत्र से यह भी कह दिया कि यद्यपि तुमने राजपद पाने की अभिलाषा से यह काम किया है, तथापि तुम विश्वास रक्खो, कि मेरी मृत्यु के बाद भी तुम्हें यह राज्य प्राप्त न होगा।

महाराज खड्गसिंह की यह भविष्यद्वाणी भी बहुत ठीक उतरी और सन् १८४० में जब उनका देहान्त हो गया तो उनकी दाह-क्रिया करके लौटते समय राजकुमार नौनिहालसिंह और मियाँ अधमसिंह पर क़िले की छत में से टूट कर एक बड़ा पत्थर आप ही आप गिर पड़ा और वे दोनों वहीं समाप्त हो गये। मृत्यु के समय नौनिहालसिंह की अवस्था २३ वर्ष से कुछ ही अधिक थी। गुलाबसिंह ने रामनगर में जब महाराज की मृत्यु का समाचार सुना तो वे पहले तो जम्बू गए और कुछ दिन वहाँ रह कर लाहौर चले आए। इधर राजा ध्यानसिंह ने नौनिहालसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाने के लिए उनका मृत शरीर हजूरीबाग में भिजवा दिया और यह प्रसिद्ध कर दिया कि राजकुमार को केवल अधिक चोट आई है। उनकी चिकित्सा के लिए बाग़ में चिकित्सक और वैद्य आदि भी भेजे जाते थे। गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर यह समाचार महाराज रणजीतसिंह के पुत्र कुमार शेरसिंह के पास भेजा गया और उन्हें लाहौर बुलाया गया। उन्होंने लाहौर आकर नौनिहालसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया की। पहले तो शेरसिंह को राजपद मिलने की आशा थी और राजा ध्यानसिंह तथा गुलाबसिंह उनके सहायक भी थे; पर जब उन्हें मालूम हुआ कि सन्धानवालिए तथा अन्य बड़े बूढ़े सरदार रानी चन्दकौर (कुँवरि) के पक्ष में हैं और उन्हीं को राज्य दिलाना चाहते हैं तो वे लौट कर कालानूर नामक स्थान पर चले गये। राजा ध्यानसिंह भी उनके साथ ही थे और उन्होंने शेरसिंह को राज्य

दिलवाने के लिये अनेक उपाय भी किए थे। राजा-ध्यानसिंह का खालसा सेना पर पूरा अधिकार था और उनकी आज्ञा पाकर सारी सेना शेरसिंह को राज्य दिलाने में सहायता देने के लिये तैयार होगई थी। सेना के बड़े बड़े सरदारों ने इस बात की भी प्रतिज्ञा करली थी कि शेरसिंह के लाहौर आते ही वे उनकी सलामी उतारेंगे और उनके अधीन हो जायँगे। सब प्रबन्ध ठीक करके राजा ध्यानसिंह जम्बू चले गये और करमसिंह नामक उनके विश्वासनीय सरदार लाहौर पहुँचे। करमसिंह ने लाहौर में सारी व्यवस्था अनुकूल देख कर शेरसिंह को समाचार भेजा और कहला दिया कि खालसा सेना के सरदार आप को निमंत्रण देते हैं और आप के स्वागत के लिए तैयार हैं। शेरसिंह भी यह समाचार पाते ही तुरन्त लाहौर पहुँचे। गुलाबसिंह ने एक नई चाल चली और सेना के सरदारों को एकत्र करके उनसे कहा कि राज्य की वास्तविक अधिकारिणी रानी साहबा हैं, इस लिये आप लोग भी उन्हीं के पक्ष में रहें। सरदारों ने ऊपर से तो यह बात मान ली, पर शेरसिंह के छावनी के समीप पहुँचते ही उन्होंने उनकी सलामी उतारी। यह दशा देख कर गुलाबसिंह क़िले में चले गये और अपनी तथा क़िले की रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। ध्यानसिंह के पुत्र राजा हीरासिंह भी उस समय क़िले में ही थे। गुलाबसिंह ने उनसे कहा कि आप के पिता क़िले के बाहर हैं, इस लिए आप भी यहां से निकल जायँ। पर हीरासिंह ने उत्तर दिया कि आप भी मेरे पिता के तुल्य हैं, इसलिये मैं आप को छोड़ कर क़िले से बाहर नहीं जा सकता।

गुलाबसिंह के पास उस समय केवल एक छोटी सी तोप और दो हज़ार डोगरे सैनिक थे; पर क़िले के बाहरवाली सेना की संख्या पचास हज़ार थी। इसके सिवा उन लोगों के पास तोपें भी ३०० थीं। बाहर की सेना ने हजूरीबाग के सामनेवाले मैदान में मोरचा बाँध कर क़िलेवालों से आत्मसमर्पण कराना चाहा; पर सूबेदार छपाछप ने उत्तर दिया कि बिना गुलाबसिंह की आज्ञा के ऐसा नहीं हो सकता। इस पर बाहरवाली सेना ने क़िले पर धावा करके सूबेदार और उसके सिपाहियों को मार डाला और क़िले का दरवाज़ा तोड़ दिया। पर तो भी गुलाबसिंह की सेना लड़ती और गोलियाँ बरसाती ही रही और शत्रु आगे न बढ़ सके। क़िले में दो पलटनें पहले से ही थीं जो आरम्भ में शेरसिंह के पक्ष में थीं, इसलिए गुलाबसिंह ने उनके अस्त्रागार पर अपना अधिकार करके उन्हें बेकाम कर दिया। खालसा सेना ने बादशाही मसजिद को अपना अस्त्रागार बना रक्खा था। इसलिये तोपख़ाने के अफ़सर गार्डन साहब ने उसे उड़ा देने का विचार किया। यदि गुलाबसिंह यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेते तो शेरसिंह की बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती; पर न जाने क्यों गुलाबसिंह ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। इसी अवसर पर राजा ध्यानसिंह और राजा सुचेतसिंह भी बहुत सी नई सेना एकत्र करके आ पहुँचे। उन लोगों ने गुलाबसिंह से आत्म-समर्पण करने के लिए कहलाया। गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि जब तक खालसा सेना गोलियाँ बरसाना बन्द न करेगी तब तक हमारी सेना आत्म-रक्षा करती ही रहेगी। इसी बीच में रानी चन्दकौर ने भी गुलाबसिंह के पास एक परवाना भेज कर उनसे कहा कि जिस प्रकार हो इस युद्ध की समाप्ति की जाय। इसके बाद ही गुलाबसिंह को एक और परवाना मिला, जिस पर महाराजा शेरसिंह, सरदार विजयसिंह, भाईसिंह, लहनासिंह, श्यामसिंह, अटारीवाले, और वेराटूरा साहब के हस्तक्षर थे। उस परवाने में लिखा था कि यदि क़िले की सेना युद्ध बन्द कर दे तो गुलाबसिंह को खालसा छावनी में प्रतिष्ठा-पूर्वक लाने के लिये बाबा महासिंह भेजे जा सकते हैं। गुलाबसिंह ने यह निमन्त्रण तुरन्त ही न स्वीकार कर लिया और एक पत्र इस आशय का लिख भेजा कि यदि शेरसिंह सात लाख रुपये वार्षिक आय की एक जागीर रानी हसावा को देना स्वीकार करें तो युद्ध बन्द हो

सकता है। अन्त में एक दिन प्रभात के समय गुलाबसिंह क़िले में से निकल कर अपने साज सामान और हाथी घोड़ों सहित रावी नदी के किनारे पर जा ठहरे। उसी स्थान पर राजा ध्यानसिंह, सुचेतसिंह, तथा अन्य कई बड़े बड़े सरदार उनसे मिलने और उनके अनेक साथियों के मारे जाने का समाचार सुनाने के लिए उनके पास आये। कुछ सरदारों ने उनसे महाराज का पक्ष छोड़ कर महारानी की ओर जा मिलने का कारण भी पूछा। इस पर गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि यदि मैं क़िले पर अपना अधिकार न कर लेता तो वहाँ के अनेक बहुमूल्य पदार्थ लूट लिए और नष्ट कर दिए जाते; इसके सिवा राजमहल की स्त्रियों की रक्षा करना भी मेरा अभीष्ट था। महाराज शेरसिंह उनकी इन बातों से सन्तुष्ट हो गये और इसलिए उन्होंने गुलाबसिंह को ख़िलत और मनावर की जागीर देकर जम्बू भेज दिया।

जिस समय खालसा सेना लाहौर के क़िले को चारों ओर से घेर कर पड़ी हुई थी उस समय क़िले के अन्दर वाली सेना के अधिकारी और गुलाबसिंह के चचा दीवान हीराचन्द ने किसी प्रकार रानी चन्दकौर से गढ़ी और गढ़वाली के तालुक़ों को अपने अधीन कर लेने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। इसलिये पहले तो दीवान हीराचन्द ने सराय औरंगाबाद को—जिसे महाराज खड्गसिंह की सेना ने अपने अधीन कर लिया था—अपने अधिकार में किया और उसके बाद सुखचैनपुर का क़िला ले लिया। आगे चल कर उन्होंने कोट और मांगले के क़िले पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

सन् १८४१ में काशमीर के सूबेदार मन्दवानसिंह को कुछ विद्रोहियों ने मार डाला था; इसलिए कुँअर प्रतापसिंह की अधीनता में महाराज शेरसिंह ने एक गोरखा पलटन को उन विद्रोहियों को दमन करने के लिये भेजा। महाराज के आज्ञानुसार गुलाबसिंह भी चार पलटनें, ६०० रुपया और दीवान निहालचन्द को अपने साथ लेकर भिंभर में प्रतापसिंह से जा मिले। उस प्रान्त में रसद की बहुत कमी थी इसलिये गुलाबसिंह ने अपनी आधी सेना को तो वहीं रोक रक्खा और शेष आधी सेना को दीवान निहालचन्द की अधीनता में आगे भेजा। मार्ग में बहुत अधिक वर्षा होने के कारण दीवान निहालचन्द को चार दिन तक शामियान नामक स्थान में ही रुक जाना पड़ा। इसके बाद दूधगंगा पार करने के बाद जब वे नैपुर नामक स्थान पर पहुँचे तो उनका सामना विद्रोहियों की दो पलटनों से हो गया। उसी अवसर पर कुँअर प्रतापसिंह और गुलाबसिंह भी वहीं आ पहुँचे और उन लोगों ने युद्ध करके विद्रोहियों को परास्त कर दिया। इस युद्ध में कुँअर साहब के ६०० सैनिक मारे गये थे। वहाँ से लौट कर गुलाबसिंह नैपुर पहुँचे और वहीं उन्होंने युद्ध में सम्मिलित होने वाली सेना में तैंतालीस हज़ार रुपये बाँटे। वहीं उन्होंने अपने रोगी और आहत सैनिकों की औषधि और सेवा-शुश्रूषा का भी प्रबन्ध किया। इसके बाद वे सेना को दीवान निहालचन्द की अधीनता में वहीं छोड़ कर शेरगढ़ चले गये। शेरगढ़ पहुँचने पर उन्हें और कुँअर प्रतापसिंह को महाराज की ओर से आज्ञा मिली कि वे लोग हाज़ारा ज़िले पर अपना अधिकार कर लें। तदनुसार वे लोग हज़ारा की ओर बढ़े पर पोखली और बागिस्तान तक—जहाँ के निवासी विद्रोही हो गये थे—किसी ने भी उनका विरोध न किया। हज़ारा ज़िले का कुछ अंश तो योंही और कुछ सेना की सहायता से अधिकार में कर लिया गया। इसके बाद कुँअर प्रतापसिंह तो अपने निवास-स्थान कृष्णगढ़ के क़िले में चले गये और गुलाबसिंह ने वहाँ से चार कोस की दूरी पर बाराकोट नामक स्थान में अपना डेरा डाला।

(शेष आगे)

सभा का कार्य-विवरण ।

साधारण सभा ।

शनिवार ता० २६ अक्टूबर १९१३, सन्ध्या के ५ बजे स्थान सभाभवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १९१३) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ७ जुलाई, १२ जुलाई, और ३० अगस्त १९१३ के कार्य्य-विवरण सूचनार्थ पढ़े गए ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए ।

(१) बाबू गोविन्दवल्लभ पन्त, वकील, नैनीताल १॥) (२) बाबू रघुनन्दनप्रसाद गुप्त वैद्य, पो० टीटागढ़, ज़िला २४ पर्गना १॥) (३) बाबू मोहनदास पटेल, बीबी हटिया, काशी १॥) (४) बाबू बसोरेलाल सराफ, पो० सरगावाँ, तहसील सिहोरा रोड, ज़िला जबलपुर १॥) (५) पंडित प्रेमशंकर दवे, मुन्सरिम, डिस्ट्रिक् जजेज़ कोर्ट, भंडारा ३) (६) पंडित सीताराम पन्त शेष, सूत टोला, काशी १॥) (७) बाबू ब्रजराजदास, सिद्ध माता की गली, काशी १॥) (८) बाबू मुकद्दमदास, सोरा का कुवाँ, काशी १॥) (९) पंडित महावीर शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, परसपुर, ज़ि० गोंडा १॥) (१०) बाबू मंगलाप्रसाद खत्री, ठि०भगवानदास गोपीनाथ, कुंजगली, काशी १॥) (११) बाबू भगवानदास चेतनदास डागा, डागों का महल्ला, बीकानेर ५) (१२) बाबू गुलाबचन्द, गणेश दीक्षित का महल्ला, काशी १॥) (१३) पंडित सोमनाथ नायक पालना, भिखारीदास का महल्ला, काशी काशी १॥) (१४) पंडित कृष्णराव नायक मालवतकर, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१५) पंडित हरीराम पाठक कावले, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१६) बाबू लक्ष्मीनारायण, भावसिंह का महल्ला, काशी १॥) (१७) पंडित मन्नू जी जोशी, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१८) बाबू छगनलाल, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१९) बाबू रघुनन्दन प्रसाद बी० ए०, वकील विहार ज़ि० पटना १॥) (२०) बाबू गौरीशंकरसहाय, वकील, खंजरपुर, भागलपुर १॥) (२१) पं० जगन्नाथ प्रसाद पाँड़े, गोविन्दपुरा, काशी १॥) (२२) पं० भवानीशंकर गौर, महल्ला भिखारीदास, काशी १॥) (२३) पं० विश्वनाथशर्म्मा उपाध्याय, ताल महारानी कोठी, बनारस १॥) (२४) बाबू भगवान दास, काशी १॥) (२५) पं० सर्वानन्द शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, परसपुर ज़ि० गोंड़ा १॥) ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए ।

(१) पं० लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री, गवर्नमेंट स्कूल-बाँदा । (२) पं० धूरन दुबे-मुन्सरिम मुन्सफ़ी-आज़मगढ़ । (३) बाबू कमलाप्रसाद गोभिल-वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस । आगरा । (४) पं० विनायक राव केशव-फारेस्ट सटिलमेन्ट आफ़िसर, पिछोर । (५) पं० गणपति लाल चौबे, पेंशनर एजेन्सी इन्स्पेकृर आफ़ स्कूल्स-रायपुर । (६) पं० चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा । (७) बाबू ज्वालाप्रसाद मारवाड़ी, शिवपुर, हावड़ा । (८) बाबू लायकसिंह-डिपटी कलेकृर हरदोई । (९) बाबू सर्यू-सिंह कलना खोर-पो० उसका-ज़ि० बस्ती । (१०) पं० खेतलदास मिश्र-एलायन्स बंक आफ़ शिमला-मसूरी । (११) लाला बाबूलाल-सेवाय होस्टल-मसूरी । (१२) लाला ज़ोरावरसिंह, कामदार महारानी राठौजी साहबा झालावाड़ । (१३) पं० भागवत-प्रसाद दुबे-कटरा-बाँदा । (१४) बाबू सिद्धगोपाल-मास्टर पो० खण्डेह-ज़ि० बाँदा । (१५) पंडित अलोपी कविराज-कालाकाँकर । (१६) बाबू माताप्रसाद निगम-रजिस्ट्रार क़ानूनगो-हमीरपुर । (१७) लाला बासुदेव मल रामस्वरूप-नज़ीबाबाद । (१८) पं० पंचाननशर्म्मा-सुरेमनपुर-बलिया । (१९) बाबू कुन्दनलाल-वकील-मुज़फ़्फ़रनगर । (२०) पं० मानचन्द शर्म्मा-मसूरी । (२१) बाबू राजाराम अग्रवाल ओवरसियर-सतलज सर्वे डिविज़न-लाहौर । (२२) पं० बदरीनारायण मिश्र-डिपटी इन्सपेकृर आफ स्कूल्स-सीतापुर ।

(२३) पं० प्रयागदत्त त्रिपाठी–ज़ि० बहराइच। (२४) पं० दयालाल दुबे–द्वितीयाध्यापक–हिन्दी स्कूल डूंगरपुर। (२५) बाबू श्यामलाल क्लर्क–स्टेशन अस्पताल–रुड़की ज़ि० सहारनपुर। (२६) बाबू जगन्नाथ नायक बोर्धा। (२७) बाबू आनन्दीलाल गुप्त–जुरहरा–भरतपुर। (२८) पं० दत्तात्रय काशीनाथ करमरकर–हेड क्लर्क–राली आफ़िस–धावर। (२९) बाबू महावीरप्रसाद ख़ज़ानची–नानपारा–बहराइच। (३०) बाबू रामलाल–भूपाल। (३१) बाबू पूर्णेन्दु श्रीवास्तव–हेड क्लर्क–डिस्ट्रिक्ट बोर्ड–बहराइच। (३२) ठाकुर दिग्विजयसिंह–कामदार पलसू पो० सहार–ज़ि० मथुरा। (३३) पं० द्वारकाप्रसाद ब्रह्मभट्ट–रोहली पो० सराय पिराग ज़ि० फरुखाबाद। (३४) पं० उदयराम शर्म्मा–बाडिया। (३५) कुं० मोतीलाल जैन, ठि० राय बहादुर सेठ चम्पालालजी–ब्यावर। (३६) बाबू लक्ष्मीनारायण–मुरादाबाद। (३७) बाबू रामनाथराय–ज़ि० बलिया। (३८) पं० सदाशिव पाठक–अध्यापक सागवाड़ा–स्कूल डूँगरपुर। (३९) पं० रामदहिन पाठक–सुमेरपुर–ज़ि० बलिया। (४०) पं० जवाहिरलाल शास्त्री–खुरजा।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि यदि इनके इस्तीफ़े का कोई विशेष कारण न हो तो वे कृपापूर्वक उस पर पुनः विचार कर उसे लैाटा लें।

(५) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी—(१) बाबू सरयूप्रसादनारायणसिंह–सूर्य्यपुर, ज़ि० आज़मगढ़। (२) बाबू कन्हैयालाल बी० ए० माडल हाई स्कूल–जबलपुर। (३) पं० गंगाशरण मिश्र–पुलिस इन्सपेक्टर–हरदोई। (४) ठाकुर सरयूप्रसाद सिंह–सब डिपटी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूलस–फतहपुर। (५) पं० छविनाथ मिश्र बी० ए० असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूलस, अलमोड़ा।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं। कुंवर क्षत्रपतिसिंह जी कालाकाँकर

पञ्चाननपञ्चकम्
ऋतुविलासिका
श्रीरामविलाप
श्रीरमेशाष्टक
पुत्रशोक
ऋतुरसरूपक
फाग नहीं सम्भर

एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल—कलकत्ता
Journal and Proceedings of the Asiatic Society for December, 1912 and January to May, 1913,

पं० बांकेबिहारीलाल—मुग़लसराय
शिवाजी विजय

बाबू पन्नालाल जैन—काशी
सनातन जैनग्रन्थमाला माला १ और २
सनातन जैनधर्म्म
महावीरस्वामी
षट्द्रव्यदिग्दर्शन
पं० बालगंगाधर तिलक का व्याख्यान (जैनधर्म्मपर)
आर्यधर्म्म
जैनतत्व ज्ञान एवं चरित्र
मनुष्येर स्वाभाविक खाद्य कि
जैन धर्म्म

स्वामी प्रकाशानन्दगिरि—काशी
औरङ्गज़ेबनामा भाग २

ठाकुर राधावल्लभ पाठक, मथुरा
स्वयं चिकित्सक

जैनमित्र कार्य्यालय, हीराबाग़—बम्बई
गृहस्थ धर्म्म

पं० रामदीन मिश्र—काव्यतीर्थ, ट्रेनिङ्ग स्कूल, मोतिहारी
भारत का मेटिक्युलेशन हिन्दी इतिहास

पं० जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ, उपदेशक साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
बाबा का व्याह

राय आत्माराम साहब, सिविल इञ्जीनियर, पटियाला
धर्म्मदिवाकर

गोस्वामी तुलसीधर शास्त्री, बैठक गोस्वामी आशानन्द—झंग

पतिव्रताभूषण
दिगम्बरजैनकार्य्यालय—सूरत
पुत्री को माता का सिखापन
श्री महावीर चरित्र
बाबू मथुरादास
प्रश्नोत्तर जड़तत्व विज्ञान भाग १ और २
सारस्वत अरोड़ वंश पुरोहित पंचज्ञाति सभा, अमृतसर
स्वज्ञातिहितपत्र
मन्दराज की गवर्नमेंट
South Indian Inscriptions vol II (New Imperial Series vol X-1.
ख़रीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
ध्यानयोगप्रकाश
महाभारतसार
नारीधर्मविचार भाग १ और २
सीता चरित्र भा० १, ५ और ६
एक अनपढ़ स्त्री की यात्रा
स्त्री ज्ञानमाला भा० १ और २
भारतवर्ष की वीर और विदुषी स्त्रियाँ भा० १ और २
गर्भरक्षाविधान
धर्म्म शिक्षा
भारतवर्ष की सच्ची देवियाँ
जापानी की कहानी
शिवाजी व रोशनआरा
कामकुसुमोद्यान
वनिताहितैषिणी भा० १
बालपंचरत्न
मादकद्रव्यखंडन
द्वैतानन्दतरंगिणी
श्रीमान् हनुमान्‌जी का जीवनचरित्र भा० १ और २
महाराष्ट्रोदय
स्त्रीहितोपदेश
प्रार्थनाविधि
उपदेशमाला प्रथम भाग
शिशुपालन
भारत की प्राचीन झलक, पहिला भाग
संगीतरत्नप्रकाश प्रथम भाग
धर्मशिक्षा दूसरा भाग
ब्रह्मकुलवर्तमानदशादर्प्पण
बालाबोधिनी भा० १. २. ३. ४. और ५
मारवाड़ी और पिशाचिनी
सूरजमुखी
भैरवी अर्थात् वीरकुमारी
आशिकों की कमबख़ती
वीराङ्गना
आफ़त की बुढ़िया
शेक्सपियर के नाटक
आल्हा रामायण लंकाकांड
सतीदहन नाटक
शिवविवाह नाटक
आल्हारामायण आठों काण्ड
एकादशीमाहात्म्य भाषा
धनुषयज्ञलीला नाटक
वीरविनोद अर्थात् कर्ण पर्व
गंगनामा
अश्वविचार अर्थात् शालिहोत्र बड़ा
चोर की तीर्थयात्रा
कल्याणी
प्रेमयोगिनी
नेपाल का प्राचीन इतिहास
Indian Autiquary for August, 1913.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई

—:o:—

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार ता० २९ नवम्बर १९१३ सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ सितम्बर १९१३) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किए गए (क) सभा का वार्षिक अधिवेशन और वार्षिकोत्सव एक ही दिन

हुआ करे और उसमें बाहर के लोग भी निमन्त्रित किए जाया करें। प्रातःकाल सभा का वार्षिक अधिवेशन हो जिसमें वार्षिक रिपोर्ट हिसाब आदि पर विचार हो तथा अधिकारी चुने जाँय। दोपहर को विशेष विषयों पर विचार हो तथा सन्ध्या समय वार्षिकोत्सव किया जाय (ख) सभा के संरक्षकों के पास डेपुटेशन भेज कर कुछ वार्षिक सहायता प्राप्त करने का उद्योग किया जाय (ग) युक्तप्रान्त की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की जो व्यवस्था इस समय वर्तमान है उससे हिन्दी को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना है—अतएव इस विषय पर विचार कर सभा गवर्न्मेंन्ट की सेवा में अपना वक्तव्य उपस्थित करे और यदि आवश्यक हो तो प्रान्त भर में इसके लिये आन्दोलन करे। (घ) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों का कार्य्य इस वर्ष संयुक्त प्रदेश में समाप्त हो जायगा, व १९१४ का समय खाली है—अतएव इस वर्ष हरद्वार, मथुरा, प्रयाग, और काशी आदि स्थानों में पंडों की प्राचीन बहियों की जाँच की जाय और प्रत्येक शताब्दी के लेखों तथा अक्षरों की कई नक़लों का संग्रह किया जाय। इससे हिन्दी गद्य के इतिहास को जानने में सुगमता होगी।

निश्चय हुआ कि (क) यह स्वीकार किया जाय और मंत्री नियमों पर विचार कर आगामी अधिवेशन में सभा को यह सम्मति दें कि इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये क्या प्रबन्ध किया जाय। (ख) संरक्षकों की सेवा में वार्षिक सहायता के लिये प्रार्थनापत्र भेजे जाँय। (ग) इस प्रस्ताव से सभा सहमत है, यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं, सेकेण्डरी शिक्षा तथा प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में गवर्न्मेंन्ट की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजे जाँय और इसे तयार करने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० और पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०। (घ) यह स्वीकार किया जाय और सन् १९१४ में काशी प्रयाग, मथुरा, हरद्वार, नैमिषारण्य, मिश्रिक, चित्रकूट, सूकरक्षेत्र, बिठूर और अयोध्या के पंडों की बहियों की जाँच की जाय और इसकी सूचना गवर्न्मेंन्ट को दी जाय।

(३) बाबू माधवप्रसाद का १८ अक्टूबर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया, जिसमें उन्होंने काशी में न रहने के कारण सभा की प्रबन्धकारिणी समिति से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० समिति के सभ्य चुने जाँय।

(४) भागलपुर के हिन्दी साहित्यसम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा से हिन्दी साहित्य-प्रदर्शिनी के लिये चीज़ें माँगी थीं।

निश्चय हुआ कि उन्हें लिखा जाय कि वे कृपापूर्वक अपने किसी अधिकारी को सभा में भेज दें कि वे यहां से प्रदर्शिनी के लिये उपयुक्त वस्तुओं को ले जायं।

(५) सभा की ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई है उनकी नामावली तथा स्थायी कोश का आज तक का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया।

३१६१०॥≡)।॥	कुलचन्दा आजतक प्राप्त
१०००)	व्याज मद्धे सभा ने अपनी आय में से दिया।
३२६१०॥≡)।॥	
२४८०९)१	सभाभवन
२३७॥-)	फुटकर व्यय
१९२३।=)।	यात्राव्यय
१८३०॥)।॥	असबाब
३४४०।≡)४	व्याज
३१८।-)॥	छपाई
३२५५९॥)११	
५१।=)१०	बचत
३२६१०॥≡)।॥	

निश्चय हुआ कि (क) सभा की आय में से जो १०००) रु० व्याज मद्धे दिया गया है वह स्थायी कोष में जमा कर लिया जाय और व्याज मद्धे उसका व्यय लिख दिया जाय। (ख) ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों ने सहायता दी है उनकी नामावली नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दी जाय। (ग) आगामी अधिवेशन में मंत्री उन सज्जनों की नामावली उपस्थित करें जिनके नाम पत्थर पर खुदवा कर सभा के पूर्व निश्चय के अनुसार लगाये जाने चाहिए।

(६) निश्चय हुआ कि स्थायी कोश की बचत का रुपया पोस्टआफिस के सेविंग बंक में रख दिया जाय और मंत्री को अधिकार दिया जाय कि जब १००) रु० पूरा हो जाय तब वे उसका प्रोमिसरी नोट खरीद लिया करें।

(७) निश्चय हुआ कि सभाभवन के किवाड़े आदि रँगवाने तथा एक दफ्तरी खाने के बनवाने का प्रस्ताव आगामी वर्ष के बजेट के समय विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(८) बिहार और उड़ीसा की गवर्न्मेन्ट के हिन्दी और उर्दू ट्रांसलेटर का २० नवम्बर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने कार्यालय में एक असिस्टेंट की नियुक्ति के लिये किसी ऐसे ग्रेजुएट को चुनने के लिये लिखा था जो अँगरेज़ी और हिन्दी में पूर्ण योग्यता रखता हो और उर्दू भी जानता हो।

निश्चय हुआ कि इसकी सूचना नागरी प्रचारिणी पत्रिका में दे दी जाय और इसके लिये उपयुक्त व्यक्ति मिलने पर उन्हें लिखा जाय।

(९) पूना के भारत-इतिहास संशोधक मंडल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा अपनी प्रकाशित पुस्तकें उनकी पुस्तकों के परिवर्तन में उन्हें दिया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१०) मिर्ज़ापुर के उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने १००) रु० की स्वरचित पुस्तकें सभा को देने के लिये लिखा था और मंत्री ने सूचना दी कि पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री की १०० प्रतियाँ सभा को दी हैं।

निश्चय हुआ कि ये धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाँय।

(११) निश्चय हुआ कि बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा कर भागलपुर में साहित्य सम्मेलन के समय सभा की पुस्तकों की बिक्री का यथोचित प्रबन्ध कर दें।

(१२) बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति साहित्यसम्मेलन के पुस्तकालय के लिये दी जाय और प्रथम सम्मेलन की रिपोर्टों की पचास पचास प्रतियाँ रखकर शेष पुस्तकें सम्मेलन कार्यालय में भेज दी जायँ और जितनी आय इसकी बिक्री से हुई हो वह उनसे माँगी जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

साधारण सभा

शनिवार तारीख़ २९ नवम्बर १९१३—सन्ध्या के ५ बजे स्थान-सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख़ २६ अक्टूबर १९१३) का कार्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—

(१) बाबू माधवप्रसाद, ठठेरीबाज़ार, काशी १॥) (२) कुंवर सुखसिंह पोकरन, सुपरेण्टेण्डेण्ट आफ़ हाकिम्स, जुनूबी डिवीजन, सोतज, मारवाड़ ५) (३) बाबू सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, सेक्रटरी नवग्राम साहित्य-समिति पोष्टाफ़िस हेमनगर, ज़ि० मैमनसिंह ५) (४) बाबू देवीप्रसाद खत्री, भक्तिकुटीर, लकसा,

काशी १॥) (५) बाबू गंगाराम महाजन, स्थान लाल-ग्राम, ज़िला फ़र्रुखाबाद १॥) (६) पण्डित शिवदर्शन-लाल वाजपेयी, औरैया इटावा ३) (७) बाबू नवाब-लाल बी० ए०, वकील, बलिया ५) (८) पण्डित नारायण लाल तिवारी—ए० आर० इन्स्टीटयूट—पूसा १॥) (९) बाबू रामेश्वरदयाल—ए० आर० इन्स्टीट्यूट—पूसा १॥) (१०) बाबू रामदास, महल्ला ख़ालिसहाट—रायबरेली १॥) (११) श्रीयुत पं० हरिशङ्कर दयाशंकर दवे—एग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूसा १॥) (१२) श्रीयुत मिस्टर जहाँगीर सोहराबजी तारापुरवाला—हैडमास्टर सेण्ट्रल हिन्दू कालिजिएट स्कूल काशी ५) (१३) पण्डित जयगोपाल शर्म्मा चटर्जी—जनरल सेक्रेटरी—श्री संस्कृत पुस्तकोन्नतिसभा इटावा ३) (१४) कुंअर दिलीपति सिंह—बरगावा—पो० पिसावा—ज़िला सीतापुर ३) (१५) पण्डित मनसाराम सारस्वत—बोपाराय पर्गना नकोदर—ज़िला जालंधर ३) (१६) श्रीयुत पण्डित शिवदान थानवी—मैनेजर डायमंड जुबिली बुकडिपो—जोधपुर (मारवाड़) १॥) (१७) महाराजकुमार समर्थ सिंहजी—रावटी, जोधपुर ४)

(३) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गएः—

(१) पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा—कानपुर। (२) बाबू रामरत्नलाल—डिपटी कलेक्टर—फ़तहगढ़। (३) ठाकुर शिवलाल शर्म्मा—मेरठ सिटी।

निश्चय हुआ कि इनके इस्तीफ़े स्वीकार किये जाँय।

(४) उपमन्त्री ने कलकत्ते के बाबू रामनारायण खन्ना की मृत्यु की सूचना दी। जिस पर सभा ने शोक प्रगट किया।

(५) निश्चय हुआ कि चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये निम्न लिखित सज्जन सभा की ओर से प्रतिनिधि चुने जायँ—(१) महात्मा मुंशीराम काँगड़ी। (२) पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अजमेर। (३) पण्डित श्याम बिहारी मिश्र एम० ए० छत्रपुर। (४) पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०—अजमेर। (५) आनरेबल पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए०, एल एल० बी० प्रयाग। (६) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल कलकत्ता। (७) पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी—कानपुर। (८) पण्डित सूर्यनारायण दीक्षित एम० ए० वकील—लखीमपुर। (९) बाबू लक्ष्मीनारायणलाल वकील गया। (१०) पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र चम्पारन। (११) पण्डित बालकृष्ण भट्ट, अहियापुर, प्रयाग। (१२) उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी मिर्ज़ापुर। (१३) पण्डित जगदीश्वरप्रसाद ओझा—दरभंगा। (१४) बाबू जोगेश्वरप्रसाद नन्दे, मऊ वाजिदपुर (१५) राय पूरनचन्द—पटना। (१६) पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० बाँकीपुर। (१७) ठाकुर लक्ष्मीपति—दानापुर। (१८) बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा—भागलपुर। (१९) पंडित राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन। (२०) पंडित जगन्नाथप्रसाद पांडेय, वकील मुज़फ्फ़रपुर। (२१) बाबू गोपाललाल खत्री, लखनऊ। (२२) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०—लखनऊ। (२३) राय कृष्णजी काशी। (२४) पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए०, एल० एल० बी० काशी। (२५) बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल एल० बी०, काशी। (२६) बाबू जगन्मोहन वर्म्मा—काशी। (२७) पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय, काशी। (२८) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा—काशी। (३०) पंडित रामचन्द्र शुक्ल काशी। (३१) पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०—काशी। (३२) पंडित भुवनेश्वर मिश्र—वकील—दरभंगा। (३३) पंडित शुकदेव विहारी मिश्र बी० ए०—सीतापुर। (३४) पंडित गणेशविहारी मिश्र—लखनऊ। (३५) बाबू शिवप्रसाद गुप्त—काशी। (३६) बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग। (३७) बाबू जयरामदास—काशी।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

संयुक्त-प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर—

The Sacred Laws of the Aryans.

पं० शंकर गजानन पुरोहित बी० ए० एल एल० बी० सदाशिव पेठ पूना।

श्रीतुलसी रामायण (मराठी भाषान्तर सहित)।

पं० बचन पाँड़े–गवर्नमेंट हाई स्कूल–इटावा
होरेशियस २ प्रति ।

पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० काशी
भारत के प्रसिद्ध पुरुष । सरवरिया ।

बाबू पन्नालाल, मंत्री जैनधर्म्म-प्रचारिणी सभा–काशी
तत्त्वार्थ राजवार्तिक ।

पं० लज्जाराम शर्म्मा–बूँदी
उम्मेदसिंह चरित्र ।

पं० हरिशंकर शर्म्मा, हरदुआगंज–अलीगढ़
अनुरागरत्न ।

पं० राजेन्द्रनाथ, श्यामसवाई मंदिर, डबोई
भारतीयमत-दर्प्पण । सम्राट् शुभागमन ।

पं० इन्दु शर्म्मा भारद्वाज निरुक्तरत्न, महाविद्यालय, ज्वालापुर
अनङ्गराज कर्ण ।

गृहलक्ष्मी कार्य्यालय, कर्नलगंज–इलाहाबाद
कन्याकौमुदी । वनिता-बुद्धि-विलास ।

बाबू गौरीशंकर प्रसाद–वकील—काशी
मेडिकल जूरिसप्रूडेन्स ।

सद्धर्म्मप्रचारक कार्य्यालय–दिल्ली
उपनिषदों की भूमिका ।

बाबू ज्योतिप्रसाद, सम्पादक, जैनप्रचारक, देवबन्द सहारनपुर
ज्योतिप्रसाद भजनमाला । मनोरमा ।
सुन्दर चरित्र ।

बाबू मूलचन्द किशनदास कापड़िया, दिगम्बर जैन कार्य्यालय, कनावाड़ी सूरत
शुं ईश्वर जगत कर्त्ता छे । जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका ।

मुंशी रामध्यानलाल–सुपरवाइज़र कानूनगो–जौनपुर
शतपंच चौपाई रामायण ।

पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–अजमेर
टाड राजस्थान प्रथम खंड । भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री १०१ प्रति ।

बाबू विश्वनाथप्रसाद खत्री–कचौरी गली–काशी
जयन्त । महाराष्ट्र रहस्य ।

बाबू जयशंकरप्रसाद–काशी
काननकुसुम ।

पं० माधवप्रसाद पाठक—काशी
हिन्दी-व्याकरण ।

पं० माधवराव सप्रे—रायपुर
दासबोध ।

पं० देवीदत्त शर्म्मा, भुआली, ज़ि० नैनीताल
तमाकू सिग्रेट निषेध । किन्डरगार्टन बुक नं० १ ।
जपाकुसुम ।

ख़रीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त—
विनय पत्रिका ।
चोर सुल्तान ।
हिन्दी केमिस्ट्री ।
विद्युत्-शास्त्र ।
वनस्पति-शास्त्र ।
बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य ।
महाभारत भा० १ और २ ।
बुद्धदेव का जीवन चरित्र ।
स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान नं० १–८ ।
बादशाह लियर ।
प्रेम वा प्राणसमर्पण ।
नीति-संग्रह ।
शिरोमणि ।
हिन्दी बँगला शिक्षा भाग १ और २
भारत में पोर्चुगीज़ ।
राजसिंह ।
भगवद्गीता ।
राधाकान्त ।
अङ्गरेज़ी शिक्षा भाग १, २, ३, और ४ ।
स्वर्ण-कमल ।

गौरीशंकर प्रसाद ।
मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी

सूचना ।

सभा के नियमानुसार आगामी वार्षिक चुनाव के संबंध में जिन सभासदों को कोई प्रस्ताव करना हो वे कृपाकर २० मई १९१४ तक उसे लिख कर भेजने का कष्ट करें ।

गौरीशंकर प्रसाद,
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा ।
काशी ।